सस्ती-ग्रन्थमालाका सातवाँ पुष्प

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

प्रकाशक—
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली।

प्रथम बार ४०००	वीर नि० सं० २४८६	लागत मात्र
द्वि० बार १०००		मूल्य
तृ० बार २३००	वि० सं० २०१७	तीन रुपया

दो शब्द

पाठकों के करकमलों में सस्ती ग्रन्थमाला के सातवें पुष्प मोक्षमार्ग प्रकाशक की यह तीसरी आवृत्ति पहुँच रही है। पिछली आवृत्तियों में कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं जिनको इस संस्करण में दूर करने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि फिर भी कोई अशुद्धि रह गई हो तो ज्ञानी जन स्वयं सुधार कर लें और उसकी सूचना ग्रंथमाला को भेजने की कृपा करें ताकि आगामी संस्करण में उसकी पूर्ति की जा सके। इस संस्करण में ग्रंथकार पं०टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी भी प्रकाशित की गई है जो बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। पाठकगण इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करके स्वपर स्वरूपका भेद विज्ञान प्रगट करें जिससे भूल भ्रन्तियाँ एवं सर्व मिथ्या कल्पनाओं से रहित होकर शुद्धात्मा की प्राप्ति हो।

श्री शीतलप्रसाद जी (सोनीपत) ने अपना बहुमूल्य समय देकर इस ग्रन्थ का संशोधन किया है। अतएव सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी उनकी अत्यन्त आभारी है।

सुमेरचन्द जैन अराइज नवीस
मन्त्री—
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी, देहली।

प्रस्तावना

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

भारतीय वाङ्मयमें हिन्दी जन साहित्य अपनी खास विशेषता रखता है। इतना ही नहीं; किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय भी प्रायः जैन विद्वानोंको प्राप्त है, क्योंकि हिन्दी भाषाका उद्गम अपभ्रंश भाषासे हुआ है जिसमें जैनियोंका सातवीं शताब्दीसे १७वीं शताब्दी तकका विपुल साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित्र, पुराण, कथा और स्तुति आदि विभिन्न विषयों पर लिखा गया है। यद्यपि उसका अधिकांश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है। तो भी हिन्दी भाषा में जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनों में देखा जाता है। हिन्दी का गद्य साहित्य १७ वीं शताब्दी से पूर्व का मेरे देखनेमें नहीं आया, हो सकता है कि यह इससे भी पूर्व लिखा गया हो परन्तु पद्य साहित्य उससे भी पूर्व का देखनेमें अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमें स्वतन्त्र कृतियोंकी अपेक्षा टीका ग्रन्थोंकी अधिकता पाई जाती है परन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखी-गई कृतियोंमें सबसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ विक्रमकी १९वीं शताब्दी के प्रथम पादकी रचना है तथापि उससे पूर्ववर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एवं महत्ताको नहीं पा सके। उसका खास कारण पं० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है। उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमें अपूर्व

क्षमता थी, जो उन्हें स्वतः प्राप्त थी। उनकी विचारशक्ति आत्मानुभव और पदार्थ विवेचन की अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान पड़ता है। यद्यपि सांगानेर (जयपुर) वासी पं० दीपचन्दजी शाहने सं० १७७९ में चिद्विलास नाम के ग्रन्थ की और अनुभवप्रकाशकी रचना की है और पद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो मनन करने योग्य हैं परन्तु उनकी भाषा पं० टोडरमल जीकी भाषा के समान परिमार्जित नहीं है और न मोक्षमार्ग-प्रकाशक जैसी सरल एवं सरस गम्भीर पदार्थ विवेचनका रहस्य ही देखनेको मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे हैं।

ग्रन्थ नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वयं ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पांच प्रकाशनोंमें ग्रन्थ का नाम 'मोक्षमार्ग प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमार्ग-प्रकाशक नहीं परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वयं ही 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है और उनकी स्वहस्त लिखित 'खरडा' प्रति में प्रत्येक अधिकार की समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पिका में 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' ही लिखा हुआ है और ग्रन्थ के प्रारम्भमें भी उन्होंने 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है। इस कारण ग्रन्थ का नाम मोक्षमार्ग-प्रकाशक रक्खा गया है मोक्षमार्ग प्रकाश नहीं। ग्रन्थ का यह नाम अपने अर्थ को स्वयमेव सूचित कर रहा है। उसमें मोक्षमार्ग के स्वरूप अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोंका विवेचन सरल एवं सुबोध हिन्दी भाषा में किया गया है। साथ ही शंका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरण भी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमें समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोंसे छिपी हुई नहीं है। उसका अध्ययन

स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये ही आवश्यक नहीं किन्तु विद्वानोंके लिये भी अत्यावश्यक है । उससे विद्वानों को विविध प्रकारकी चर्चाओं का—खासकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चार अनुयोगोंका कथन, प्रयोजन, उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका—जो स्पष्टीकरण पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं है। और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोंके अध्ययन, मनन एवं चिन्तवन करनेकी वस्तु है। उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमें विरुद्ध जंचनेवाली कथनशैली-के विरोधका निरसन सहज ही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है। साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है। उससे जहाँ निश्चय व्यवहार रूप नयोंकी कथनशैली, दृष्टि, सापेक्ष, निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है, वहाँ सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूप का अध्ययन एवं चिंतवन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरण का अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारनेमें समर्थ हो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको छोड़कर यथार्थ वस्तु स्थितिके मार्ग पर आजाता है और फिर वहाँ आत्म कल्याण करनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी प्रकरणोंकी विवेचना बड़ी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुबोधशैलीसे की गई है परन्तु अभाग्यवश ग्रन्थ अधूरा ही रह गया है। मल्लजी अपने संकेतोंके अनुसार इसे महाग्रन्थ का रूप देना चाहते थे और उसी दृष्टिसे उन्होंने अधिकार विभाग के साथ विषयका प्रतिपादन किया है। काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नहीं रखता। फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपने आपमें परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमें जगतका कल्याण करनेमें सहायक होगा । इस ग्रन्थके अध्ययन

एवं अध्यापनसे कितनोंका क्या कुछ भला हुआ और कितनोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ़ हुई, इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वयं परिचित हैं।

ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी है। चूंकि जयपुर स्टेट राजपूतानेमें है और जयपुर के आस-पासका देश ढूंढाहड़ देश कहलाता है, इसी से उक्त प्रदेशकी बोल-चालकी भाषा ढूंढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजन में ढूंढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नहीं है, उसे राजस्थानी और व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नहीं कहा जा सकता और यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस पर व्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषा का भी असर रहा हो। व्रजभाषाके प्रभावके बीज तो उसमें निहित ही हैं; क्योंकि उत्तर प्रदेश की भाषा व्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोंमें उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह सम्भावना नहीं की जा सकती है कि ढूंढारी भाषा व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही हो किन्तु उसमें व्रज-भाषाके शब्दोंका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी होते हुए भी उसमें व्रजभाषाकी पुट अंकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही और उसमें मधुरता भी कम नहीं पाई जाती है। पढ़ते समय चित्त में स्फुर्तिको उत्पन्न करती है और बड़ी ही रसीली और आकर्षक जान पड़ती है। साथ ही १६वीं शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोंमें जिस ढूंढारी भाषाका प्रचार था, पं० टोडरमलजीकी भाषा उससे कहीं अधिक परिमार्जितहै। वह आजकलकी भाषाके बहुत निकटवर्ती है और आसानीसे समझमें आसकती है। ढूंढारी भाषा में 'और' 'इसलिये' 'फिर' आदि शब्दोंके स्थान पर 'बहुरि' शब्दका प्रयोग किया गया है

और 'क्योंकि' 'इसलिये' 'इस प्रकार' आदि शब्दोंके स्थान पर 'जातैं' 'तातैं' 'या भांति' जैसे शब्दोंका प्रयोग हुआ है और षष्ठी विभक्तिमें जो रूप देखनेमें आते हैं उनमें बहुवचनमें 'सिद्धोंके' स्थान पर 'सिद्धनिका' जैसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है इसी तरहके और भी प्रयोग हैं पर उनके समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती। हाँ, ग्रन्थमें कतिपय ऐसे शब्दोंका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोंकी समझमें नहीं आता जैसे 'आखता' शब्दका प्रयोग जिसका अर्थ उतावला होता है और इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा मारै है' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलक समयमें जब कि हिन्दी भाषा बहुत कुछ विकाश एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ नौ अधिकारोंमें विभक्त है। उन में अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमें परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम अधिकारमें मंगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रगट करनेके अनन्तर ग्रन्थकी प्रमाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् बांचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई है।

दूसरे अधिकारमें सांसारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए कर्म बन्धन निदान, नूतन बंध विचार, कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिक आत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध, उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद, योग और कषायसे होनेवाले यथायोग्य कर्म बन्धोंका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओं

का यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्था में होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया गया है। साथ ही कर्मों के फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और भावकर्म द्रव्यकर्म का रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमें भी संसार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोंके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है और मोहोत्पन्न विषयोंकी अभिलाषाजनक दुःख तथा मोही जीवके दुःख निवृत्तिके उपायको निस्सार बतलाते हुए दुःख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदयसे होनेवाले दुःख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया है। एकेन्द्रियादिक जीवोंके दुःखोंका उल्लेख करते हुए नरकादि चारों गतियोंके घोर कष्टों और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोंका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारमें संसार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थों का वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पांचवें अधिकारमें आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोंकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मत के प्राचीन ग्रन्थोंके उदाहरणों द्वारा जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओं एवं मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवली के आहार नीहारका प्रतिषेध तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोंके रखनेका निषेध किया है। साथ ही ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा-

धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध और मूर्तिपूजाके प्रतिषेध का निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमें गृहीत मिथ्यात्व के कारण कुगुरु, कुदेव और कुधम का स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवें अधिकार में जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टि का वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टि को न समझनेके कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोंके अभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़ा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण इन पंचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकार को पूरा किया गया है।

आठवें अधिकारमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंके प्रयोजन, स्वरूप विवेचन शैली और उनमें होने वाली दोष कल्पनाओंका प्रतिषेध करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथनशैली का समुल्लेख किया गया है। साथ ही, आगमाभ्यास की प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमें मोक्षमार्गके स्वरूप का निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों में से मोक्षमार्ग के प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नहीं

लिखा जा सका है। खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एवं ग्रन्थको पूरा करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकार में जो भी कथन दिया हुआ है,वह बड़ाही सरल और सुगम है। उसे हृदयंगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहजही समन्वय हो जाता है और उसके भेदोंके स्वरूप का भी सामान्य परिचय मिल जाता है । इस तरह इस ग्रन्थमें चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय ग्रन्थकर्ताके विशाल अध्ययन,अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके संद्योतक हैं ।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गम्भीर एवं दुरुह चर्चाको सरलसे सरल शब्दोंमें अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नहीं बनना पड़ता ।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोंमें पंडित टोडरमल-जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है । आप हिन्दीके गद्य लेखक विद्वानोंमें प्रथमकोटिके विद्वान् हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहंकार तो आपको छूकर भी नहीं गया था । आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। अध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट-सम्बन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके अध्यात्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन,

मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद् हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान् थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था और वस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पंडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनों का कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और अध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं :—

"मैं हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरयो, लग्यो है अनादितैं कलंक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसैं खलको। रागादिक भावनिको पायकें निमित्त पुनि होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसैं ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बनैं तो बनैं यहाँ उपाव निज थलको ॥ ३६ ॥

दोहा—रम्भापति स्तुत गुन जनक, जाको जोगीदास।
सोई मेरो प्रान है, धारैं प्रगट प्रकाश ॥३७॥
मैं आतम अरु पुद्गल खंध, मिलकैं भयो परस्पर बंध।
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥
मात गर्भमें सो पर्याय, करकैं पूरण अङ्ग सुभाय।
बाहर निकसि प्रगट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ॥३९॥
नाम धरचो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहैं सब कोय।
ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥
देश ढुंढाहड़ मांहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।

तामैं ताको रहनो घनो, थोरो रहनो ओढै बनो ॥४१॥
तिस पर्याय विषैं जो कोय, देखन जाननहारो सोय।
मैं हूं जीव द्रव्य गुन भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ॥४२॥
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकौं विनशै मैं शिवराम ॥ ४३ ॥
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया।
ये सब हैं पुद्गल का खेल, इनिमें नांहि हमारो मेल ॥४४॥

इन पद्यों परसे जहाँ पंडितजीके अध्यात्मिक जीवनकी झांकीका दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था। पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम रम्भा देवी था। दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोंसा और बड़जात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वंशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था। इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

आपके गुरुका नाम बन्शीधर* था, इन्हींसे पं० जी ने प्रारम्भिक

---

* यह पं० बन्शीधर वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी रायमल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामें तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग किया है जब वे उदयपुरसे पं० दौलतरामजीके पाससे जयपुर पं० टोडरमलजीसे मिलने आए थे और वे वहाँ नहीं मिले थे, पं० बन्शीधर जी मिले थे यथा—

"पीछे केताइक दिन रहि पं० टोडरमल जयपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेप ज्ञान जानि वासूं मिलनेके अर्थि जयपुर नगरी आये। सो एक बन्शीधर किंचित् संयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी, सौ पचास लड़का पुरुष वायां जासैं व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य, चरचा पढ़ें, तासूं मिले।" वीरवाणी वर्ष अंक २।

शिक्षा प्राप्त की थी; आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे । फलतः कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोड़ेही समयमें जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी ।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने लायक है कि पंडितजीके पूर्वज बीसपंथ आम्नायके माननेवाले थे परन्तु पंडितजीने वस्तु स्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोंका अवलोकन कर तेरह पन्थका अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करनेका भी प्रयत्न किया । परन्तु जब उनमें सुधार होता न देखा किन्तु उलटा विकृत परिणमन एवं कषाय की तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोंको समकरि तेरा पन्थकी शुद्ध प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देते हुए जनतामें सच्ची धार्मिक भावना एवं स्वाध्यायके प्रचारको बढ़ाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने में समर्थ हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियाँ अध्यात्मिक चर्चा के साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके जानकार बन गये । यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नका ही फल था ।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था । हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्रायः अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्व चर्चादि कार्योंमें यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था ।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट

* "तथा तिनके पीछे टोडरमलजीके बड़े पुत्र हरिश्चन्द्रजी तिनतैं छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान् वक्ताके लक्षणकूं धारैं तिनके पास कितनेक रहस्य सुनिकर कुछ जानपना भया ।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति ।

रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग सं० १८३७ में 'गुमान पंथ' की स्थापना की थी *। गुमान-पन्थकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एवं प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसा-दनाओंको बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था। उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था और जनता भोली-भाली थी इसीसे उनमें जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्ग की प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पन्थ'की स्थापनाका कार्य करना आव-श्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है। जयपुरमें दीवान वधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पंथकी स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमें उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमार्ग-प्रकाशक और गोम्मटसारादिकी मिली हैं। अस्तु—

क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पंडित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमें ब्रह्म-चारी रायमलजीने सं०१८२१ की चिट्ठीमें जो पंक्तियाँ लिखी हैं वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य हैं और वे इस प्रकार हैं:—

"सारां ही विषैं भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बनाई

* श्वेताम्बरी मुनि शान्तिविजयजी अपनी मानव धर्म संहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १६७ में लिखते हैं कि—"बीस पन्थ में से फूटकर सम्वत् १७२६ में ये अलग हुए। जयपुरके तेरापन्थियोंमें से पं० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सम्वत् १८३७ में गुमान पंथ निकाला।"

और पांच सात ग्रन्थोंकी टीका बनायवेका उपाय है । सो आयु की अधिकता हुए बनेगी। अर धवल महाधवलादि ग्रन्थोंके खोलवाका उपाय किया वा उहाँ दक्षिण देससूं पाँच सात और ग्रन्थ ताडपत्रांविषैं कर्णाटी लिपि मैं लिख्या इहाँ पधारे हैं। याकूं मल्लजी बांचै हैं, वाका यथार्थ व्याख्यान करै हैं वा कर्णाटी लिपि मैं लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छन्द अलंकारका याकै ज्ञान पाइए है। ऐसे पुरुष महंत बुद्धिका धारक ईं कालविषैं होना दुर्लभ है तातैं वासूं मिलें सर्व सन्देह दूरि होइ हैं।"

इससे पंडितजी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कर्नाटकी लिपिमें लिखना, अर्थ करना उस भाषा के परिज्ञानके बिना नहीं हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य भाषाके ही लेखक नहीं थे, किन्तु आपमें पद्य रचना करनेकी क्षमता थी और हिन्दी भाषाके साथ संस्कृत भाषामें भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे। गोम्मटसार ग्रन्थकी पूजा उन्होंने संस्कृतके पद्योंमें ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्रभंडारमें मौजूद है। इसके सिवाय संदृष्टि अधिकारका आदि अन्त मंगल भी संस्कृत श्लोकोंमें दिया हुआ है और वह इस प्रकार है—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः ॥

यह पद्य द्वयर्थक है। प्रथम अर्थमें क्षपणासारके साथ लब्धिसार की संदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोंकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमें करण लब्धि के परिणामरूप कर्मोंकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्‌के चरणोंकी स्तुतिका उपक्रम किया

गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्य भी तीन अर्थोंको लिये हुये है और उसमें शुद्धात्मा (अरहन्त), अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओंको संदृष्टिकी निर्विघ्न रचनाके लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार है:—

शुद्धात्मनमनेकान्तं सानुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्ध्यर्थं संदृष्टयर्थप्रकाशकम् ॥

हिन्दी भाषाके पद्योंमें भी आपकी कवित्वशक्तिका अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोंकी जानकारीके लिये गोम्मटसारके मंगलाचरण का एक पद्य नीचे दिया जाता है जो चित्रालंकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है। उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेसे चित्रालंकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अलंकारोंके निर्देश भी निहित प्रतीत होते हैं। वह पद्य इस प्रकार है:—

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैंनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ॥

इस पद्यमें बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यानरूपी धनमें लीन रहनेवाले, काम और मान (घमंड) से रहित मेघके समान धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षीण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओंको नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बंधका उदाहरण है। इसमें ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमशः एक-एक अक्षर छोड़नेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोड़नेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। पर इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोंकी उसमें शीघ्र गति नहीं होती किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है।

ग्रन्थाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृष्ठ १६-१७ में जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है:—

"बहुरि हम इस कालविषैं यहाँ अब मनुष्य पर्याय पाया सो इस विषैं हमारै पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीका सहित समय-सार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनि का आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनविषैं हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमें उद्धृत अनेक ग्रन्थोंके उदाहरणोंसे पंडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पंडितजी गृहस्थ थे—घर में रहते थे परन्तु वे सांसारिक विषय-भोगोंमें आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे और संवेग निर्वेद आदि गुणोंसे अलंकृत थे। अध्यात्म-ग्रन्थोंसे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नहीं होते थे। उनकी मधुर वाणी श्रोताजनोंको आकृष्ट करती थी और वे उनकी सरल वाणीको सुन परम सन्तोषका अनुभव करते थे। पंडित टोडरमलजीके घर पर विद्याभिलाषियोंका खासा जमघट सा लगा रहता था। विद्याभ्यास के लिये घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे आप बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही

बन रहा था वहाँ तत्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हें आपके साथ विविध विषयों पर तत्वचर्चा करके तथा अपनी शंकाओंका समाधान सुनकर बड़ा ही सन्तोष होता था और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमें जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमें दीवान रतनचन्दजी*

* दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोंमें प्रमुख थे। वे बड़े ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता वधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० सं० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिंहजीके समयमें दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० सं० १८२६ में जयपुरके राजा पृथ्वीसिंहके समयमें थे और उसके बाद भी कुछ समय रहे हैं। प० दौलतरामजी ने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० स० १८२७ में पं० टोडरमलजीकी पुरुषार्थसिद्धयुपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्योंसे प्रगट है :—

साधर्मिनमें मुख्य हैं रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिंह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसौं साधर्मिनसों प्रीत।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमें महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनको सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु-प्रतापतें कीनों ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्मसौं जिन दासनको दास ॥९॥
तासूं रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरण उर धर धर्म-सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान।
कुशल होय चहुँ संगको लहै जीव निज ज्ञान ॥११॥

अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी*, त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेमचन्दजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। बसवा निवासी श्री पं० देवीदासजी गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्वचर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था॥ । उनका प्रवचन बड़ा ही मार्मिक और सरल होता था और उसमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी।

समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमें प्रसिद्ध शहर है उसे आमेरके राजा सवाई जयसिंहने सं० १७८४ में बसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमें विद्याधर नामके एक जैन विद्वान्ने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थिति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलजीने सम्वत् १८२१ की चिट्ठीमें दिया है। उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरीके रूपमें हो रही थी, वहाँ जैनियोंके सात आठ हजार घर थे; जैनियोंकी इतनी अधिक गृहसंख्या उस समय सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहाँ के अधिकांश जैन राज्यके उच्च पदोंपर आसीन थे और वे राज्यमें सर्वत्र शांति एवं व्यवस्थामें अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचन्दजी

अट्ठारहसै ऊपरै संवत सत्ताबीस।
मंगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस ॥१२॥

* महारामजी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। बड़े ही बुद्धिमान थे और पं० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमें विशेष रस लेते थे।

॥ "सो दिल्ली सूं पढ़कर बसुवा आय पीछैं जयपुरमें थोड़े दिन टोडरमल जी महाबुद्धिमानके पास सुननेका निमित्त मिल्या, फिर बसुवा गये।"
—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

बालचन्दजी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था। वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्यमें सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहाँ कलाल, कसाई और वेश्याएँ नहीं थीं। जनता प्रायः सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोंमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्वचर्चा, सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियाओं में श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गोम्मटसारादि सिद्धांतग्रंथोंकी तत्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओंके सद् अनुष्ठानमें यथेष्ट भाग लेने लगी थीं। पं० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी संख्या सातसौ आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमें कई विद्वान् थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमें जैनियोंकी संख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमें जैनियोंके बढ़ते हुए प्रभुत्व एवं वैभव को सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उससे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करनेकी चिन्तामें संलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय काममें लानेकी गुप्त योजनाएं भी बनाई जाती थीं। उनकी इस असहिष्णुताका कारण यह जान पड़ता है कि जैनियोंके प्रसिद्ध विद्वान् पंडित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमें विजय पाना सम्भव नहीं था, क्योंकि उनकी मार्मिक सरल एवं युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सब पर ही प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता था और जैनी उस समय धन, वैभव,

प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योंमें सबसे आगे बढ़े हुए थे, राज्यमें भी उनका कम गौरव नहीं था और राज्य कार्यमें उनकी बहुमूल्य सेवाओंका मूल्य बराबर आँका जाता था। इन्हीं सब बातोंसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लंघन कर चुकी थी।

सम्वत् १८१७ में श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिंहजी प्रथम पर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमें कर लिया तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेरगर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमें भी कभी कल्पना नहीं की जा सकती थी। राज्यमें पाये जानेवाले लाखों रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमें शिवकी मूर्ति रखदी गई और जिनमूर्तियोंको खंडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया। यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ़ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अंधेरगर्दीका पता चला तब उन्होंने उसका गुरुपद खोंसि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय बाद ही पा लिया*।

---

* सम्वत् अट्ठारहसै जब गए, ऊपर जबै अट्ठारह भये।
तब इक भयो तिवारी श्याम, डिंभी अति पाखंडको धाम॥
तुच्छ अधिक द्विज सबतें घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा बसि कियो, माधवेश नृप गुरु-पद दियो॥
दिन कितेक बीते हैं जबै, महा उपद्रव कीन्हों तबै।
हुक्म भूपको लेके वाह, निसि गिराय देवल दिय ढाह॥
अमल राजाको जैनी जहाँ, नाव न ले जिनमतको तहाँ।
कोऊ आधो कोऊ सारो, बच्यो जहाँ छत्री रखवारो॥
काहू मैं शिव-मूरति धरदी, ऐसैं मची 'श्याम' की गरदी।

चुनांचे सम्वत् १८१९ में मंगसिर बदी दोइज के दिन जयपुर राज्य के ३३ परगनोंके नाम एक ग्राम हुक्म जारी किया गया जिसमें जैन-धर्मको प्राचीन और ज्योंका त्यों स्थापित करनेकी आज्ञा दी गई और तेरापंथ बीसपंथके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजा में किसी प्रकार की रोकटोक न करनेका आदेश दिया गया और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट पाटकर लेली गई थी उसे पुनः वापिस दिलानेकी भी आज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा अंश 'वीरवाणी' के टोडरमल अंकमें प्रकाशित हुआ था, नीचे दिया जाता है:—

"सनद करार मिती मंगसिर बदी २ सं० १८१९ अप्रंच हद सरकारीमें सरावगी वगैरह जैनधर्म साधवा वाला सूं धर्ममें चालवा की तकरार छो सो याको प्राचीन जान ज्यों को त्यों स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्रीहजूरकै लिखा छै—बीस पंथ तेरा पंथ परगनामें देहरा बनाओ व देवगुरुशास्त्र आगै पूजै छा जी भांति पूजो—धर्ममें कोई तरह की अटकाव न राखो अर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरहको आगे जहाँसे पावे छा तिठा सूं भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, अंक १९ से २१।

उसके बाद जयपुर आदि स्थानोंमें पुनः उत्साहसहित जिनमंदिर और मूर्तियोंका निर्माण किया गया और अनेक प्रतिष्ठादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह वहाँ पुनः जिनधर्मका उद्योत हुआ।

अकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दियो दुपहरां देश निकारो।
दुपटा धोति धरें द्विज निकस्यो, तिय जुत पायन लखि जग विगस्यो।
सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण श्याम, जीवत ही पाई कुगति॥

—बुद्धिविलास, आरा प्रति

इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव

सम्वत् १८२१ में जयपुरमें बड़ी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे* ज्ञात होता है कि उसमें चौंसठ गजका लम्बा चौड़ा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारों तरफ बनाये गये। उसकी रचनामें बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोंका उपयोग किया था। सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान संस्कृत भाषा पाठके अनुसार किया गया था। उस चिट्ठीमें अनेक ऐतिहासिक बातोंका उल्लेख किया गयाहै और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिंड, कोरडा जहानाबाद, सिरोंज, वासौदा, इन्दौर, औरंगाबाद, उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान आदि भारतके विभिन्न स्थानोंको भेजी गई थी। इससे उसकी महत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्यकी ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी। दरबारसे यह हुक्म आया था कि "पूजा जीके अर्थ जो वस्तु चाहिए सो ही दरबारसे ले जावो।" इस तरह की सुविधा वि० की १५वीं १६वीं शताब्दीमें ग्वालियरमें राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्य-कालमें जैनियोंको प्राप्त थी और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोंमें राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल

पं० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाएं हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २ गोम्मटसार जीवकांड टीका, ३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड टीका, ४ लब्धिसार क्षपणासार टीका, ५ त्रिलोक-

* देखो, वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

सार टीका, ६ आत्मानुशासन टीका, ७ पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका, ८ अर्थसंदृष्टि अधिकार, ९ मोक्षमार्ग प्रकाशक और १० गोम्मटसारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पंचमीको मुलतानके अध्यात्मरसके रोचक खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवसे ओत-प्रोत है। इसमें अध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर कितने सरल एवं स्पष्ट शब्दोंमें विनयके साथ दिया गया है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पंडितजीकी आन्तरिक भद्रता तथा वात्सल्यताका खासतौरसे द्योतक है—

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिये।"

गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती हैं। जो वीरनन्दि इन्द्रनन्दिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे। और जिनका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाएं रची गई हैं किन्तु वर्तमानमें उपलब्ध टीकाओंमें मंदप्रबोधिका सबसे प्राचीन टीका है जिसके कर्ता अभयचन्द्र सैद्धान्तिक* हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशववर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामें 'जीवतत्व-

* अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है। इसमें ८३ नं०की गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पंजिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोंमें किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भोपपातान्नाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपंजिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक सं०१२८१ (वि०सं०१४१६) में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनड़ी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी संस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनड़ी टीकाकी तरह 'जीवतत्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूल संघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है; क्योंकि इन्होंने वि० सं० १५६० में 'तत्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है। अतः टीका-कार नेमिचन्द्रका भी समय वि० की १६वीं शताब्दी है। इनकी 'जीव तत्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमें लिखी गई है और जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वीं शताब्दीका प्रथम चरण निश्चित किया है✱। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६वीं शताब्दीका प्रथम चरण व विक्रमकी १६वीं शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्रकी इस संस्कृत टीकाके आधारसे ही पं० टोडर-मलजी ने सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका बनाई है। उन्होंने इस संस्कृत टीकाको केशववर्णीकी टीका समझ लिया है जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्तिके निम्न पद्यसे प्रगट है—

केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।
संस्कृतटीका कीनी एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥

पंडितजीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त संस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद

✱ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

विवेचन करती है। पंडित टोडरमलजीने गोम्मटसार—जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार, त्रिलोकसार इन चारों ग्रन्थोंकी टीकाएं यद्यपि भिन्न-भिन्न रूपसे की हैं किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारों ग्रन्थोंकी टीकाओंको एक करके उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' रक्खा है जैसा कि पंडितजीकी लब्धिसार भाषा टीका प्रशस्तिके निम्नपद्यसे स्पष्ट है:—

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रन्थनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकैं।
इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ।
तातैं एक करि दई हम तिनिको मिलायकैं॥
सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धरचो है याका नाम।
सो ही होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकैं॥
कलिकाल रजनीमें अर्थकौ प्रकाश करै।
यातैं निज काज कीने इष्ट भावभायकैं॥३०॥

इस टीकामें उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है और अपनी ओरसे कषायवश कुछ भी नहीं लिखा, यथा:—

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या मांहि।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नांहि॥३३॥

टीकाप्रेरक श्रीरायमलजी और उनकी पत्रिका—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे*। रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामें स्वयं लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने २२ वर्षकी अवस्थामें

* रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक।
सो नाना विध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो।

साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोगसे जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म ग्रन्थोंका पाठी था, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणा, बंध, उदय और सत्ता आदिकी तत्वचर्चाका मर्मज्ञ था, जिसके तीन पुत्र थे जो जैनधर्मके श्रद्धालु थे; उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होंने तीन चीजोंका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्व हरितकायका, रात्रिभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह करनेका। इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तु तत्व का समीक्षण बराबर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश संयमके धारक थे। जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमें संलग्न रहते थे, साथ ही बड़े ही उदार और सरल थे। उनके आचारमें विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोंके विशेष प्रेमी थे और विद्वानोंसे तत्वचर्चा करनेमें बड़ा रस लेते थे। पं० टोडरमलजीकी तत्व-चर्चासे बहुत ही प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—एक कृति ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासंग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओंको लिए हुए है। इनके सिवाय दो पत्रिकायें भी प्राप्त हुई हैं जो 'वीर वाणी' में प्रकाशित हो चुकी हैं*। उनमेंसे प्रथम पत्रिकामें अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका समुल्लेख करते हुए पंडित टोडरमलजीसे गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणा की गई है और वह सिंघाणा नगरमें कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है। पत्रिकाका वह अंश इस प्रकार है:—

"पीछै सेखावटी विषें सिंघाणा नग्र तहाँ टोडरमलजी एक दिल्ली (दिल्ली) का बड़ा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म (कार्य) के अर्थि वहाँ रहै, तहाँ हम गए और टोडरमलजी मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये। ताका उत्तर एक गोम्मटसार नाम ग्रन्थकी साखिसूं देते गए।

* देखो वीरवाणी वर्ष १ अङ्क २, ३।

सो ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वं सुनी थी तासूं विशेष देखी अर टोडरमल जीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछैं उनसूं हम कही— तुम्हारे या ग्रन्थका पंरचै (परिचय) निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषा टीका होय तो घणां जीवोंका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हों (इस) कालके दोषकरि जीवोंकी बुद्धि तुच्छ रही है तो आगे यातैं भी अल्प रहेगी। तातैं ऐसा महान् ग्रन्थ प्राकृत ताकी मूलगाथा पन्द्रहसै १५००❀ ताकी संस्कृत टीका अठारह हजार १८००० ताविषैं अलौकिक चरचाका समूह संदृष्टि वा गणित शास्त्रोंकी आम्नाय संयुक्त लिख्या है ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ति पूर्वं दीर्घकाल पर्यन्त लगाय अब ताईं नाहीं तौ आगें भी याकी प्रवर्त्ती कैसें रहेगी ? तातें तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करो,आयुका भरोसा है नाहीं। पीछैं ऐसैं हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वं भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही,पीछैं हमारे कहनेकरि विशेष मनोरथ भया, तब शुभ दिन मुहूर्तविषैं टीका करनेका प्रारम्भ सिंघाणा नग्रविषैं भया। सो वे तो टीका बनावते गए हम बांचते गये। बरस तीनमें गोम्मटसारग्रन्थकी अड़तीस हजार ३८०००, लब्धिसार—क्षपणासार ग्रन्थकी तेरहहजार १३०००,त्रिलोकसार ग्रन्थकी चौदहहजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रन्थोंकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछैं सवाई जयपुर आये तहाँ गोम्मटसारादि च्यारों ग्रन्थोंकूं सोधि याकी बहुत प्रति उतरवाईं। जहाँ शैली थी तहाँ सुधाइ-सुधाइ पधराईं। ऐसे इन ग्रन्थोंका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान-

❀ रायमलजीने गोम्मटसार की मूल गाथा संख्या पन्द्रहसौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी संख्या सत्तरहसौ पांच १७०५ है, गोम्मटसार कर्म काण्डकी ९७२ और जीवकाण्डकी ७३३ गाथासंख्या मुद्रित प्रतियों में पाई जाती हैं।

चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमें बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पैंसठ हजार के करीब है और संशोधनादि तथा अन्य प्रतियोंके उतरवानेमें प्रायः उतना ही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका सं० १८१८ में समाप्त हुई है। इस टीकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमें पंचपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की। यथा—

आरम्भो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद॥

अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी माङ्गलीक उपकारी हैं।
तिनको स्वरूप जानि रागतैं भई जो भक्ति,
कायकौं नमाय स्तुतिकौं उचारी है॥
धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,
कर जोरि बारम्बार वन्दना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमें गद्यरूप में प्रगट किया है❀। लब्धिसार की यह टीका वि० सं० १८१८ माघशुक्ला पंचमी के दिन पूर्ण हुई है, जैसा कि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्लापंचमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत॥

❀ "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये। वाके प्रसादतैं सर्व आकुलता दूरि होइ हमारै शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

—लब्धिसारटीका प्रशस्ति

लब्धिसार—क्षपणासारकी इस टीकाके अंतमें अर्थसंदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमें दिया हुआ है, जिसमें उक्त ग्रन्थमें आनेवाली अंकसंदृष्टियों और उनकी संज्ञाओं तथा अलौकिक गणितके करणसूत्रों का विवेचन किया गया है। यह संदृष्टि अधिकारसे भिन्न है। जिसमें गोम्मटसार—जीवकाण्ड, कर्मकाण्डकी संस्कृतटीकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रों, संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी संज्ञाओं और अंकसंदृष्टियोंका विवेचन स्वतंत्र ग्रन्थके रूपमें किया गया है और जो 'अर्थसंदृष्टि' के सार्थक नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि टीका ग्रन्थोंके आदिमें पाई जाने वाली पीठिकामें ग्रंथगत संज्ञाओं एवं विशेषताका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठक जन उस ग्रन्थ के विषयसे परिचित हो सकें। फिर भी उनका स्पष्टीकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोंकी रचना की गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे संदृष्टि-विषयक सभी बातोंका बोध हो जाता है। हिन्दी भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओंसे ही दिगम्बर समाजमें कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढ़ा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं। इस सबका श्रेय पं० टोडरमलजीको ही प्राप्त है।

त्रिलोकसार टीका—

त्रिलोकसार टीका यद्यपि सं० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी परन्तु उसका संशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबंध वगैरह बादको लिखे गये है। मल्लजीने इस टीकाका दूसरा कोई नाम नहीं दिया। इससे यह मालूम होता है कि उसे भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके अन्तर्गत समझा जाय।

मोक्षमार्ग प्रकाशक—

इस ग्रन्थका परिचय पहले दिया जा चुका है और इसकी रचना

का प्रारम्भ समय भी सम्वत् १८२१ के पूर्वका है । भले ही बाद में उसका संशोधन परिवर्धन हुआ हो ।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका—

यह उनकी अन्तिम कृति जान पड़ती है । यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गई । यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे उसे अवश्य पूरी करते । बादको यह टीका श्री रतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणासे पंडित दौलतरामजीने सं० १८२७ में पूरी की है परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नहीं हो सका है । फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है ।

उक्त कृतियोंका रचनाकाल सं०१८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है । फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी सं० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा ज़रूर है । पं० टोडरमलजीकी ये सब रचनाएं जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमके राज्यकालमें रची गई हैं । जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमका राज्य वि० सं० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है*। पं० दौलतरामजीने जब सं० १८२७ में पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमें राजा पृथ्वीसिंहका राज्य था । अतएव सम्वत् १८२७ से पहले ही माधवसिंहका राज्य करना सुनिश्चित है ।

गोम्मटसार पूजा—

यह संस्कृत भाषामें पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है । जिसमें गोम्मटसारके गुणोंकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एवं श्रद्धा व्यक्त की गई है ।

* देखो 'भारतके प्राचीन राजवंश' भाग ३ पृ०२३६,२४० ।

मृत्युकी दुखद घटना—

पंडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई ? यह विषय अर्सेसे एक पहेली सा बना हुआ है । जैन समाजमें इस सम्बन्धमें कई प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं; परन्तु उनमें हाथीके पैर तले दबवाकर मरवानेकी घटना का बहुत प्रचार है। यह घटना कोरी कल्पना ही नहीं है, किन्तु उसमें उनकी मृत्युका रहस्य निहित है। पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकार अकल्पित घटना पं० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वान्के साथ नहीं घट सकती । परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफ़ी विचार करनेके बाद मेरी धारणा अब दृढ़ हो गई है कि उपरोक्त किम्वदन्ती असत्य नहीं है किन्तु वह किसी तथ्यको लिए हुए अवश्य है । जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पंडितजीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओर ध्यान देते हैं; जो कभी स्वप्नमें भी पीड़ा देनेका भाव नहीं रखते थे,तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्व के साथ घोर ईर्षा रखने वाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एवं अशक्य अपराधके द्वारा अन्ध श्रद्धावश विना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड़ पड़ा हो और राजाने पंडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकार से मृत्युदण्ड का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि जब हम उस समय की भारतीय रियासती परि-स्थितियों पर ध्यान देते हैं तो उस समयके भारतीय नरेशों द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोंका अवलोकन होता है तब उससे हमें आश्चर्यको कोई स्थान नहीं रहता। यही कारण है कि उस समय के विद्वानोंने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछ भी नहीं लिखा और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है । क्योंकि उस समय सर्वत्र रियासतों

में खासतौरसे मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनाएँ घटती रहती थीं और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता था। हाँ आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं और अब प्रायः इस प्रकारकी घटनाएँ कहीं सुनने में नहीं आतीं।

पंडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दुखद घटनाका उल्लेख पं० बख़तराम शाहके 'बुद्धि विलास' में पाया जाता है और वह इस प्रकार है :—

"तब ब्राह्मणनु मतौ यह कियो, शिव उठानको टौना दियो।
तामैं सबै श्रावगी कैद, करिके दंड किये नृप फैद॥
गुरु तेरह-पंथिनुको भ्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
ताहि भूप मारचो पल माहि, गाड्यो मद्धि गंदगी ताहि॥

—आरा भवन प्रति

इसमें स्पष्ट रूपसे यह बतलाया गया है कि सं० १८१८ के बाद जब जयपुरमें जैनधर्मका पुनः विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब कार्य सम्प्रदाय विद्वेषी ब्राह्मणोंको सह्य नहीं हुआ और उन्होंने मिल कर एक गुप्त 'षडयंत्र' रचा—जिसमें ऐसी कोई असह्य घटना घटा कर जैनियोंपर उसका आरोप किया जा सके और इच्छित कार्यकी पूर्ति हो सके। तब सबने एक स्वरसे शिवपिंडीको उखड़वानेकी बात स्वीकार की और उसका अपराध जैनियों पर बिना किसी जाँचके लगाये जानेका निश्चय किया गया। अनन्तर तदनुसार घटना घटवा और राजाको जैनियोंकी ओरसे विद्वेषकी तरह तरहकी बातें सुनाकर राजाको भड़काया और क्रोध उपजाया गया। इधर जनियोंने किसी धर्मके सम्बन्धमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नहीं दिया और न उसमें भाग ही लिया; हाँ अपने पर घटाई जानेवाली असह्य घटनाओं को विषके घूंटसमान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनांचे राजाने घटना सुनते ही बिना किसी जांच पड़तालके क्रोधवश

सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमलजी को पकड़कर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया। हुक्म होते ही उन्हें हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शव को शहरकी गन्दगीमें गड़वाया गया।

सुना जाता है कि जब पंडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथीको अंकुश ताड़नाके साथ उनके शरीरपर चढ़ने के लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिंघाड़ के साथ उन्हें देखकर सहम गया और अंकुश के दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमें अक्षम रहा और तीसरा अंकुश पड़ना ही चाहता था कि पंडित जीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नहीं; जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जांच नहीं की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तू क्यों व्यर्थ अंकुशका वार सह रहा है, संकोच छोड़ और अपना कार्य कर। इन वाक्योंको सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

चुनांचे किसी ऐसे असह्य घटनाके आरोपका संकेत केशरीसिंह पाटणी सांगाकोंके एक पुराने गुटकेमें भी पाया जाता है—

"मिती कार्तिक सुदी ५ ने (को) महादेवकी पिंडि सहैरमाहीं कछु अमारगी उपाड़ि नाखि तीह परि राजा दोष करि सुरावग धरम्या परि दंड नाख्यौं।" —वीर वाणी वर्ष १ पृष्ठ २८५।

इन सब उल्लेखोंसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोंकी विद्वेषपूर्ण परिस्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असम्भव नहीं कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोंके हृदयमें जो पीड़ा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मैं पाठकोंको दु:खी नहीं करना चाहता पर यह निसंकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नहीं भुला सकता। अस्तु—

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षडयंत्रके रहस्यका ठीक पता चला तब वे बहुत दुःखी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादमें जैनियोंके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार हो गया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना सं० १८२४ में जान पड़ती है। चूंकि पं० देवीदासजी जयपुरसे बसवा गए और उससे वापिस लौटने पर पुनः पं० टोडरमलजी नहीं मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पंडित गुमानीरामजीके पास ही तत्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया। यह उल्लेख सं० १८२४ के बादका है और उसके अनन्तर देवीदासजी जयपुरमें सं० १८३८ तक रहे हैं।

परमानन्द जैन शास्त्री



विषय-सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

पांचवाँ अधिकार

छठा अधिकार

सातवाँ अधिकार

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१५	लाए	लोए
१४	१८	श्रत	श्रुत
१६	७	चाल	चालै
२३	८	कसा	कैसा
५१	१०	नका	इनका
५४	१४	क्षमोपशम	क्षयोपशम
७४	१८	दशन	दर्शन
७४	२२	कर	करें
७६	१८	वेहुरि	वहुरि
९५	६	लोहा	लोह
१२४	—	२४	१२४
१७०	१७	सुखो	सुखी
२२७	१४	धम	धर्म
२३५	१६	प्रतिज्ञा	प्रतिमा
२७६	१५वीं लाइनके नीचे शीर्षक		कुधर्म सेवाका प्रतिषेध
२८३	१८	अपक्षा ता	अपेक्षा तो
२८५	१०	एस	एसैं
२८८	१२	बताव	बतावैं
३०१	९	शुभोपयोग	शुद्धोपयोग
३०१	१०	बध कारण	बन्ध कारण
३०२	१२	शुभोपयोग	शुद्धोपयोग
३०३	८	है,	है, सो
३०८	७	बध	बन्ध
३१५	१३	निश्च	निश्चय
३८६	१७	अनंत	अनन्त

॥ श्री सर्वज्ञजिनवाणी नमस्तस्यै ॥

शास्त्र–स्वाध्यायका प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय, नमोस्तु ! नमोस्तु !! नमोस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

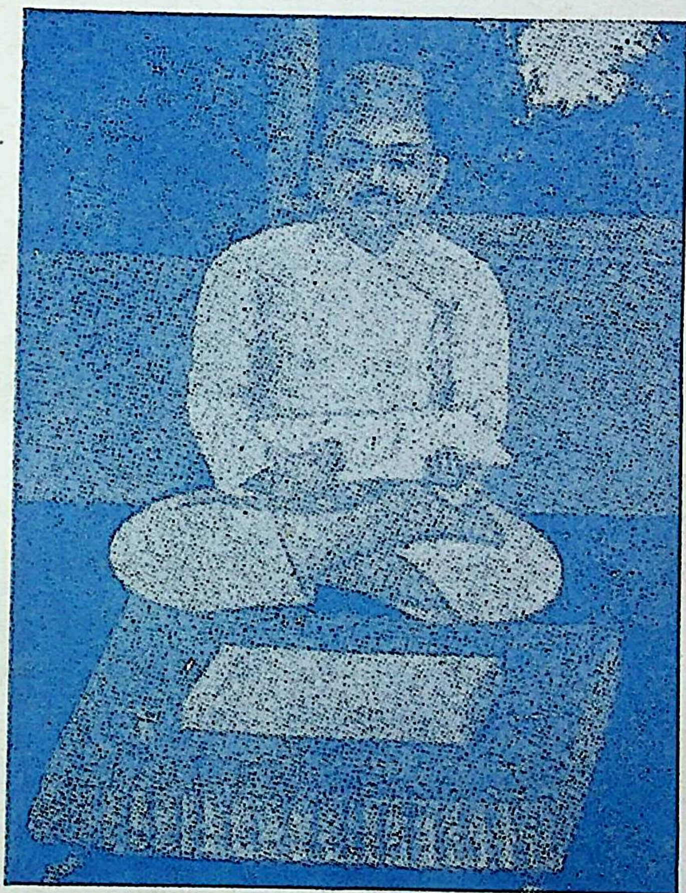
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवेनमः ।

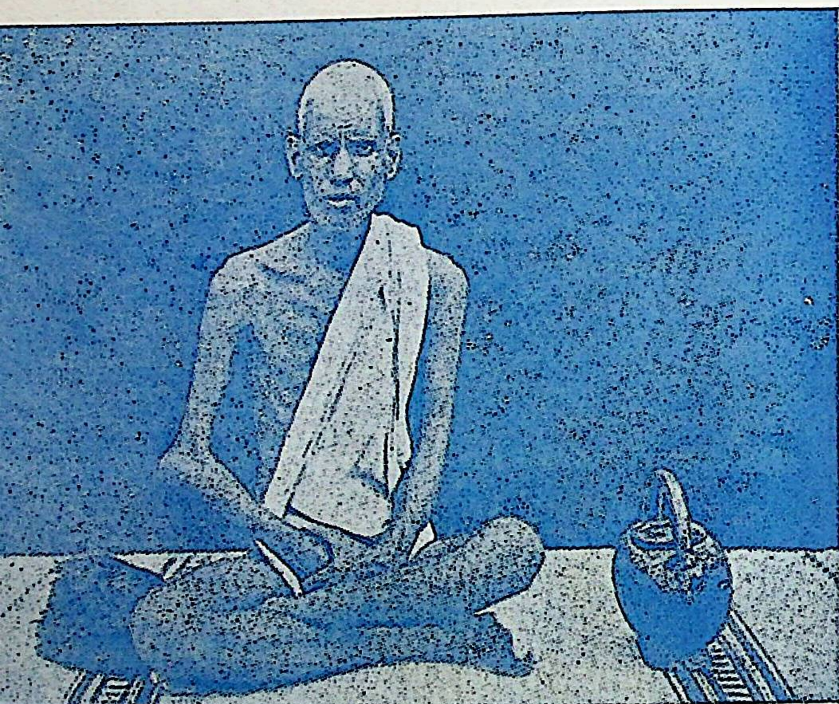
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, तस्य मूलग्रंथकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं ।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥



श्रीमान् पं० प्रवर टोडरमलजी



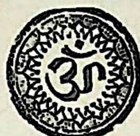
श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज

श्रीः

ॐनमः सिद्धं॥ अथमोक्षमार्गप्रकाशकनामशास्त्र लिख्यते॥ दोहा॥ मंगलमयमंगलकरण॥ वीतराग
विज्ञान॥ नमौं ताहि जातैं भए॥ अरहंतादि महान॥१॥ करि मंगल करिहौं महा॥ ग्रंथकरनको काज
जातैं मिलै समाज सब॥ पावै निजपदराज॥२॥ अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है॥ तहां मंग
लकरिए है॥ णमो अरहंताणं॥ णमो सिद्धाणं॥ णमो आयरियाणं॥ णमो उवज्झायाणं॥ णमो लोए
सव्वसाहूणं॥ यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमंत्र है सो महामंगलस्वरूप है॥ बहुरि याका संस्कृत ऐ
सा होइ है॥ नमोऽर्हद्भ्यः॥ नमः सिद्धेभ्यः॥ नमः आचार्येभ्यः॥ नमः उपाध्यायेभ्यः॥ नमो लोके सर्वसाधुभ्यः॥ बहु
रि याका अर्थ ऐसा है॥ नमस्कार अरहंतनिकै अर्थि॥ नमस्कार सिद्धनिकै अर्थि॥ नमस्कार आचार्यनि
कै अर्थि॥ नमस्कार उपाध्यायनिकै अर्थि॥ नमस्कार लोकविषै समस्त साधुनिकै अर्थि॥ ऐसैं याविषै नमस्का
र कीया तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है॥ अब इहां जिनकौं नमस्कार कीया तिनिका स्वरूप चिंत
वन कीजिए है॥ तहां प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिए है॥ जे गृहस्थपनौं त्यागि मुनिधर्म अंगीकार
करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिकौं खिपाय अनंतचतुष्टय विराजमान भए॥ तहां अ
नंतज्ञानकरि तौ अपने अनंत गुणपर्यायसहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकौं युगपत विशेषपनैं करि
प्रत्यक्ष जानै है॥ अनंतदर्शनकरि तिनिकौं सामान्यपनैं अवलोकै है॥ अनंतवीर्यकरि ऐसी सामर्थ्यकौं
धारै है॥ अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकौं अनुभवै है॥ बहुरि सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभाव
निकरि रहित होय शांतरसरूप परिणए है॥ बहुरि क्षुधा तृषादि समस्त दोषनितैं मुक्त होइ देवाधिदेव

पं० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ का आदि पत्र

पं० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ का अन्तिम पत्र



ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

पहला अधिकार

मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान् ॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज ।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है । तहां मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है । बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है ।

नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः । नमः उपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि,

नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषैं सर्वसाधुनिके अर्थि, ऐसें या विषैं नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है। अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातें स्वरूप जानें बिना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं कौनकों नमस्कार करूँ तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसें होय। *)

अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिये हैं—जे गृहस्थपनों त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिया कर्मनि-कों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये। तहाँ अनंतज्ञानकरि तौ अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपनेंकरि प्रत्यक्ष जानै हैं। अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपनैं अवलोकै हैं। अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यकों धारै हैं। अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवै हैं। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए हैं। बहुरि क्षुधा-तृषा आदि समस्तदोषनितैं मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिन्ह तिनकरि रहित जिनका परम औदा-रिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोक विषैं धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि जिनके लौकिक

* यह पंक्ति खण्डा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है. इसीसे इसे मूल में दिया गया है।

जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नानाप्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है। बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इंद्रादिक उत्तम जीव सेवैं हैं। ऐसैं सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

सिद्धोंका स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये हैं—जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछें च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतें परमऔदारिक शरीरकों भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं लोकका अग्रभागविषैं जाय विराजमान भये। तहाँ जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनैतैं मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई, बहुरि जिनकै चरमशरीरतैं किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातैं समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावकों प्राप्त भये हैं, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातैं समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रगट भये हैं। बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातैं निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है। बहुरि जिनकै ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरितिनि सिद्धनिकै समान आप होनैंका साधन हो है। तातैं साधनैंयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेकों प्रतिबिंब समान हैं। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातैं ऐसैं ही अनंत कालपर्यंत रहैं हैं ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनको

हमारा नमस्कार होहु।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये हैं —

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहकों त्यागि शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरंगविषैं तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपकों आप अनुभवै हैं परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाहीं धारै हैं। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीकों अपने मानै हैं। परभावनिविषैं ममत्व न करैं हैं। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषैं प्रतिभासैं हैं तिनकों जानै तो हैं परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषैं रागद्वेष नाहीं करै हैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो हैं, बाह्य नाना निमित्त बनैं हैं परन्तु तहाँ किछू भी सुखदुःख मानते नाहीं। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनैं है तैसे बनैं है, खैंचिकरि तिनिकों करते नाहीं। बहुरि अपने उपयोगकों बहुत नाहीं भ्रमावैं हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्ति कों धारै हैं। बहुरि कदाचित् मंदरागके उदयतैं शुभोपयोग भी हो है. तिसकरि जे शुद्धोपयोगके बाह्य साधन हैं तिनिविषैं अनुराग करैं हैं। परन्तु तिस रागभावकों हेय जानिकरि दूरि किया चाहै हैं, बहुरि तीव्र कषायके उदयका अभावतैं हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व ही रह्या नाहीं। बहुरि ऐसी अंतरंग(अवस्था)होतैं बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका संवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखंडादिविषै बसैं हैं। अठाईस मूलगुणनिकों अखंडित पालैं हैं। बाईस परीसहनिकों सहैं हैं। बारह प्रकार तपनिकों आदरैं हैं। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो हैं। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषैं प्रवर्तैं हैं। कदाचित् मुनिधर्मका सहकारी

शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रियानिविषैं साव-धान हो हैं। ऐसे जैन मुनि हैं तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

आचार्यका स्वरूप

तिनिविषैं जे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदकों पाय सङ्घविषैं नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपनैं तौ निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषैं ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिकों देखि रागअंशके उदयतैं करुणाबुद्धि होय तो तिनिकों धर्मोपदेश देते हैं। जे दीक्षाग्राहक हैं तिनिकों दीक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करैं हैं तिनिकों प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करैंहैं। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषैं पठन-पाठनके अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपकों ध्यावैं हैं। अर जो कदाचित् कषाय अंश उदयतैं तहाँ उपयोग नाहीं थंभै है तौ तिन शास्त्रनिकों आप पढ़ै हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिकों पढ़ावैं हैं। ऐसैं समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

साधु का स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवीधारक विना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक हैं बहुरि जे आत्मस्वभावकों साधैं हैं। जैसैं अपना उपयोग परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्टपनौं मानि फंसै नाहीं वा भागै नाहीं तैसैं

उपयोगकों सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषें प्रवर्तें हैं वा कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषें प्रवर्तें हैं। ऐसें आत्मस्वभावके साधकसाधु हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

पूज्यत्वका कारण

ऐसें इन अरहंतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय है। तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं जातैं जीवतत्वकरि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनताकरि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनिकै तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होनें करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकैं एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातैं ते अरहंतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहंतादि पद हैं तिन विषैं ऐसा जानना जो मुख्यपनैं तौ तीर्थंकरका अर गौरणपनैं सर्वकेवलीका ग्रहण है यहु पदका प्राकृत-भाषाविषें अरहंत अर संस्कृतविषें अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदहवाँ गुणस्थानकै अनंतर समयतैं लगाय सिद्ध नाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते संघविषैं रहौ वा एकाकी, आत्मध्यान करौ वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताकों पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तौ अन्यमुनि भी करै हैं, परन्तु जिनकै आचार्यनिकरि

दिया उपाध्याय पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतैं भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहाँ ऐसा नियम नाहीं है जो पंचाचारनिकरि आचार्यपद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातैं ए तौ क्रिया सर्वमुनिनकै साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसैं करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसैं शब्द नयकरि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परन्तु समभिरूढ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसैं ही यहाँ समझना।

इहां सिद्धनिकै पहिलै अरहंतनिकों नमस्कार किया सौ कौन कारण? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान—

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातैं पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहंतादिकनिका स्वरूप चिंतवन किया। जातैं स्वरूप चिंतवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिको पंचपरमेष्ठी कहिये है। जातैं जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पंच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्ठी जानना। बहुरि रिषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषैं वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषैं इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै हैं तिनको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, वृषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चंद्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक बीसतीर्थंकर पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषैं अवार केवनज्ञानसहित विराजमान हैं तिनकों हमारा नस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पदविषैं इनका गर्भितपना है तथा विद्यमान कालविषै इनकों विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

बहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं, मध्यलोकविषैं विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिंब विराजै हैं जिनिके दर्शनादिकतैं (स्वपरभेद विज्ञान होय है, कषाय मंद होय शान्तभाव हो है वा) एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसें तीर्थंकर केवलीके दर्शनादिकतैं होय तैसे ही हो है, तिन जिनबिंबनिकों हमारा नमस्कार होहु। बहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनकै अनुसरि अन्य आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक हैं ऐसें ये सर्व जिनवचन हैं, स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य हैं, न्यायमार्गतें अविरुद्ध हैं तातैं प्रमाणीक हैं, जीवनिकौं तत्वज्ञान के कारण हैं तातैं उपकारी हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

बहुरि चैत्यालय, आर्यका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य, अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र, अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकों नमस्कार करौं

हौं। अर जे किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनका यथा योग्य विनय करौं हौं। ऐसैं अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ए अरहंतादिक इष्ट कैसैं हैं सो विचार करिए हैं—

जाकरि सुख उपजै वा दुःखविनशै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषैं वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है जातैं याकरि निराकुल सांचे सुख की प्राप्ति हो है। अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहंतादिकनिकरि हो है। कैसैं सो विचारिए है—

अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकार हैं, संक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध, तहाँ तीव्र कषायरूप संक्लेश हैं, मंदकषायरूप विशुद्ध हैं, कषाय रहित शुद्ध हैं। तहाँ वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो हैं ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका संक्लेश परिणाम करि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मंदबंध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वैं जो तीव्रबंध भया था ताकों भी मंद करै है। अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है। केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहंतादिविषैं स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिये हो है तातैं विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषायभाव मिटावनैका साधन हैं, तातैं शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतैं सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय

तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है । ऐसैं अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है । अथवा अरहंतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना वा तिनकै अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिकों हीन करै है । जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानकों उपजावै है तातैं ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धि ऐसैं हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै दुःख विनशै ऐसे भी प्रयोजनकी सिद्धि इनि करि हो है कि नाहीं । ताका समाधान—

जो अरहंतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बंध हो है । बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तौ पूर्वें असाताआदि पापप्रकृति बंधी थीं तिनकों भी मंद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है । बहुरि तिस पुण्यका उदय होतैं स्वयमेव इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्री मिलै है। अर पापका उदय दूर होतैं स्वयमेव दुःख कों कारणभूत सामग्री दूर हो है । ऐसैं इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनिकरि हो है । अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक हैं ते तिस भक्तपुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्रीनिका संयोग करावै हैं । दुःखकों कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै हैं । ऐसैं भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिनि अरहंतादिकनि करि हो है । परन्तु इस प्रयोजनतैं किछू अपना भी हित होता नाहीं तातैं यहु आत्मा

कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनौं मानि आप ही सुखदुःखकी कल्पना करै है । बिना कषाय बाह्य सामग्री किछू सुख-दुःखकी दाता नाहीं। बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातैं-इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दुःखतैं डरना सो यह भ्रम है । बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहंतादिककी भक्ति किएं भी तीव्रकषाय होनिकरि पापबन्ध ही हो है तातैं आपकों इस प्रयोजनका अर्थी होना योग्य नाहीं। जातैं अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

ऐसैं अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं । बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषैं भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मंग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'मं' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धि हो है। तातैं तिनकै परममंगलपना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहाँ कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषैं ही मंगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर—

जो सुखस्यौं ग्रन्थकी समाप्ति होइ पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतैं यहाँ प्रथम मंगल किया है।

इहाँ तर्क--जो अन्यमती ऐसैं मंगल नाहीं करै हैं तिनकै भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होना देखिये हैं तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान—

जो अन्यमती ग्रन्थ करै हैं तिसविषैं मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व

कषाय भावनिकौं पौषते विपरीत अर्थनिकों धरै हैं तातैं ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसें मंगल किये बिना ही होइ। जो ऐसे मंगलनिकरि मोह मंद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसें बनें? बहुरि हम यहु ग्रन्थ करैं हैं तिस विषैं मोहकी मंदता करि वीतराग तत्वज्ञानकों पौषते अर्थनिकों धरैंगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसें मंगल कियें ही होय। जो ऐसें मंगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनें? बहुरि वह कहै जो ऐसें तौ मानेंगे, परन्तु कोऊ ऐसा मंगल न करै ताकै भी सुख देखिए है पापका उदय न देखिये है। अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है पापका उदय देखिये है तातैं पूर्वोक्त मंगलपना कैसें बनै? ताकों कहिये है—

जो जीवनिकै संक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके हैं तिनि-करि अनेक कालनिविषैं पूर्वें बंधे कर्म एक कालविषैं उदय आवै हैं। तातैं जैसें जाकै पूर्वें बहुत धनका संचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए अर देणा न देखिये है। अर जाके पूर्वें ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतें भी देणा देखिये है धन न देखिए है परन्तु विचार किएतें कुमावना धन होनेंहीका कारण है ऋणका कारण नाहीं। तैसें ही जाकै पूर्वें बहुत पुण्य बंध्या होइ ताकै इहां ऐसा मंगल विना किए भी सुख देखिए है। पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वें बहुत पाप बंध्या होय ताकै इहाँ ऐसा मंगल किये भी सुख न देखिए है पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतें ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है पाप उदयका कारण नाहीं। ऐसें पूर्वोक्त

मंगलका मंगलपना बनै है।

वहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक हैं तिनिनें तिस मंगल करनेवालेकी सहायता न करी अर मंगल न करनेवालेको दंड न दिया सो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीकै अनुसारि बाह्य निमित्त बनै हैं तातैं जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै है। अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है । यहु निमित्त कैसैं न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक हैं ते क्षयोपशम ज्ञानतैं सर्वकों युगपत् जानि सकते नाहीं, तातैं मंगल करनेवाले, न करनेवाले का जानपना किसी देवादिककै काहू कालविषैं हो है तातैं जो तिनिका जानपना न होइ तौ कैसैं सहाय करै वा दंड दे। अर जानपना होय तब आपकै जो अति मंदकषाय होइ तौ सहाय करनेके वा दंड देनेके परिणाम ही न होंइ। अर तीव्रकषाय होइ तौ धर्मानुराग होइ सकै नाहीं । बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तौ कहा करै ऐसैं सहाय करने वा दंड देनैका निमित्त नाहीं बनै है,जो अपनी शक्ति होय अर आपकै धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतैं तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकी सहाय करै वा किसी अधर्मीकौं दंड दे हैं । ऐसैं कार्य होनैका किछू नियम तौ है नाहीं,

ऐसें समाधान कीया। इहाँ इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होनेकी, सहाय करावनेकी, दुख द्यावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषैं वा आगामी काल विषैं दुखदायक है। तातैं ऐसी इच्छाकूं छोरि हम तौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंता-दिककों नमस्कारादिरूप मंगल किया है। ऐसैं मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्गप्रकाशकनाम ग्रन्थका उद्योत करें हैं। तहाँ यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है—

ग्रन्थकी प्रामाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर हैं ते अनादिनिधन हैं, काहूके किए नाहीं इनिका आकार लिखना तौ अपनी इच्छाके अनुसारि अनेक प्रकार है परन्तु बोलनेमें आवै हैं ते अक्षर तौ सर्वत्र सर्वदा ऐसैंही प्रवर्तें हैं सोई कह्या है— 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयंसिद्ध है। बहुरि तिनि अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थके प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसैं 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जना-वनहारा है। ऐसैं अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसैं मोती तौ स्वयंसिद्ध है तिन विषैं कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिकों, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै हैं। तैसैं पद तौ स्वयंसिद्ध हैं तिन विषैं कोऊ थोरे पदनिकों, कोऊ घने पदनिकों, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै हैं यहाँ मैं भी तिनि सत्यार्थ पद-

निकों मेरी बुद्धि अनुसारि गूंथि* ग्रन्थ बनावूँ हूँ सो मैं मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषैं नाहीं गूंथूं हौं। तातैं यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहाँ प्रश्न—जो तिनि पदनिकी परम्पराय इस ग्रन्थ पर्यंत कैसैं प्रवर्तै है? ताका समाधान—

अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिकै सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिनि पदनिका वा तिनिके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिनि तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकै पदनिका अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथैं हैं। बहुरि तिनकै अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिककी रचना करैं हैं। तिनिकों केई अभ्यासैं हैं केई कहैं हैं केई सुनैं हैं ऐसैं परम्पराय मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषैं वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिसविषैं चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषैं श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकों दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिकों भी जानि धर्मानुरागके वशतैं अंगप्रकीर्णकनिकी रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहाँ पीछैं इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बूस्वामी ३, तहाँ पीछैं कालदोषतैं केवलज्ञानी होनेका तौ अभाव भया।

* जोड़कर या लिखकरि।

बहुरि केतेक काल तांई द्वादशाँग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछैं तिनिका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालतांई थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्यत् कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातैं ग्रन्थ रचना आरम्भ करी और द्वादशांगानुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे। ※) पीछैं तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषैं भी काल दोषतैं दुष्टनिकरि कितेक ग्रन्थनिकी व्युच्छित्ति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेंतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए हैं तिनिका बुद्धिकी मंदतातैं अभ्यास होता नाहीं। जैसैं दक्षिणमैं गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषैं धवल महाधवल जयधवल पाइए है परन्तु दर्शन-मात्र ही हैं। बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए हैं। तिनि विषैं भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसैं इस निकृष्ट काल विषैं उत्कृष्ट जैनमतका घटना तौ भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषैं सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

बहुरि हम इस काल विषैं यहाँ अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषैं हमारे पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं

※ यह पंक्तियाँ खरडा प्रति में नहीं हैं अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहां दे दी गई हैं।

अभ्यास करनेका उद्यम होता भया । तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रंथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुस्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनि विषैं हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है। तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषैं हम सारिखे मंद बुद्धीनितैं भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए हैं । तिनिकौं तिनि पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावैं हैं सो इस विषैं भी अर्थसहित तिनिही पदनिका प्रकाशन हो है । इतना तौ विशेष है जैसैं प्राकृत संस्कृत शास्त्रनिविषैं प्राकृत संस्कृत पद लिखिए हैं तैसैं इहाँ अपभ्रंश लिएं वा यथार्थपनाकों लिएं देशभाषारूप पद लिखिए हैं परन्तु अर्थविषैं व्यभिचार किछू नाहीं है। ऐसैं इस ग्रंथपर्यन्त तिनि सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्तै है।

इहां कोऊ पूछै कि परम्परा तौ हम ऐसैं जानी परन्तु इस परम्पराविषैं सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमकों कैसैं होय। ताका समाधान—

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए विना बनै नाहीं

जातैं जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपकौं ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन करना होइ सो ऐसा महाविपरीत कार्य तौ क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषैं तौ ऐसा कषायवान् होता नाहीं। प्रथम मूल उपदेशदाता तौ तीर्थंकर केवली भये सो तौ सर्वथा मोहके नाशतैं सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकों त्यागि महा मंदकषायी भए हैं, तिनिकै तिस मंदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाहीं है जो वाकै तीव्रकषाय होय तौ सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसैं होइ अथवा जो मोहके उदयतैं अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै है तौ पोषौ परन्तु जिनआज्ञा भंगकरि अपनी कषाय पोषै तौ जैनीपना रहता नाहीं, ऐसैं जिनधर्म्मविषैं ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाहीं जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषैं बुरा करै।

इहाँ प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जैन शास्त्रनिविषैं मिलावै, पीछैं ताकी परम्परा चली जाय तौ कहा करिये ?

ताका समाधान—जैसैं कोऊ सांचे मोतिनिके गहनेविषैं झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाहीं तातैं परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चलै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ झूठे मोतिनिका निषेध

करै है। तैसैं कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषैं असत्यार्थ पद मिलावै, परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषें तौ कषाय मिटावनेका वा लौकिककार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीनै जे असत्यार्थ पद मिलाए हैं तिनि विषैं कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है ऐसैं प्रयोजन मिलता नाहीं, तातैं परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि, ठिगावै है बहुरि ताकी परंपरा भी चाल नाहीं, शीघ्र ही कोऊ तिनि असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषैं हो हैं,उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत हैं तिस विषैं तौ ऐसे होते नाहीं। तातैं जैन शास्त्रनि विषैं असत्यार्थ पदनिकी परंपरा चालै नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परंतु ग्रंथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातैं कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तौ परंपरा चलै ?

ताका समाधान—

मूल ग्रंथकर्त्ता तौ गणधरदेव हैं ते आप च्यारिज्ञानके धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनैं हैं ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसारि ग्रन्थ बनावैं हैं। सो उन ग्रन्थनिविषैं तौ असत्यार्थ पद कैसैं गूंथे जांय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावैं हैं ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञान के धारक हैं। बहुरि ते तिनि मूलग्रन्थनिका परंपराकरि ग्रन्थ बनावै हैं। बहुरि जिन पदनिका आपकौं ज्ञान न होइ तिनकी तौ आप रचना करैं नाहीं अर जिन पद-

निका ज्ञान होइ तिनिकों सम्यग्ज्ञान प्रमाणतें ठीक करि गूंथै हैं सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषैं असत्यार्थ पद गूंथे जाय नाहीं, अर कदाचित् आपकौं पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामें भी तैसैं ही आय जाय तौ याका किछू सारा ❀ नाहीं। परन्तु ऐसैं कोईकौं भासै सबहीकौं तौ न भासै। तातैं जिनकौं सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परंपरा चलने देते नाहीं। बहुरि इतना जानना, जिनकौं अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिकौं तौ श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाहीं इनिका तौ जैनशास्त्रनिविषैं प्रसिद्ध कथन है अर जिनिकौं भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतें जीवका बुरा न होइ ऐसें कोई सूक्ष्म अर्थ है तिनि विषैं किसीकौं कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामैं ल्यावै तौ भी ताका विशेष दोष नाहीं सो गोमट्टसारविषैं कह्या है—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं हवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकौं श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोगतैं असत्यकौं भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाहीं है अर जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय है परन्तु इसही विचारके बलतैं ग्रन्थ करनेका साहस करते हैं सो इस ग्रंथ विषैं जैसैं पूर्व ग्रन्थनिमें वर्णन है तैसैं ही वर्णन करैंगे। अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थनिविषैं सामान्य गूढ़

❀ वश नहीं।

वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करैंगे। सो ऐसैं वर्णन करनेविषैं मैं तौ बहुत सावधानी राखोंगा, अर सावधानी करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तौ विशेष बुद्धिमान होइ सो संवारिकरि शुद्ध करियौ, यह मेरी प्रार्थना है। ऐसैं शास्त्र करनेका निश्चय किया है। अब इहाँ कैसे शास्त्र वाँचने सुनने योग्य हैं अर तिनि शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है।

वांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करैं तेई शास्त्र वांचने सुनने योग्य हैं। जातैं जीव संसारविषैं नाना दुःखनिकरि पीड़ित हैं, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गकों पावैं तौ उस मार्गविषैं आप गमनकरि उन दुःखनितैं मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है, तातैं जिन शास्त्रनिविषैं काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीत-रागभावका प्रयोजन प्रगट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित है। बहुरि जिन शास्त्रनिविषैं शृङ्गार भोग कोतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। जातैं जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुखी भया तिनकी वासना जीवकै बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया, भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित नाहीं है। इहाँ वांचना सुनना जैसैं कह्या तैसैं ही जोड़ना सीखना सिखावना लिखना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें। ऐसें साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावकौं पोषैं ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करने योग्य है।

वक्ताका स्वरूप

अब इनिके वक्ताका स्वरूप कहिये है। प्रथमतौ वक्ता कैसा होना चाहिए जो जैन श्रद्धानविषैं दृढ़ होय जातैं जो आप अश्रद्धानी होय तौ औरकौं श्रद्धानी कैसें करै? श्रोता तौ आपहीतैं हीनबुद्धिके धारक हैं तिनकौं कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसें करै? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै विद्याभ्यास करनेतें शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय जातैं ऐसी शक्ति बिना वक्ता-पनेका अधिकारी कैसें होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय जातैं जो ऐसा न होय तौ कहीं अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकं जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय होय। जातैं जो ऐसा न होय तौ कोई अभिप्राय विचारि सूत्रविरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है—

बहु गुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तौ छोड़ने योग्य ही है। जैसें उत्कृष्टमणिसंयुक्त है तौ भी सर्प है सो लोकविषैं विघ्नका ही करण-हारा है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वांचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय। जातैं जो आशावान् होइ तौ यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसारि व्याख्यानकरि अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितैं वक्ता का पद ऊँचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तौ वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै तीव्र क्रोध मान न होय जातैं तीव्र क्रोधी मानी की निंदा होय, श्रोता तिसतैं डरते रहैं, तब तिसतैं अपना हित कैसे करैं। बहुरि वक्ता कसा चाहिए जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करैं तौ मिष्टवचननिकरि, जैसैं उनका सन्देह दूरि होय तैसैं समाधान करै। जो आपकै उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तौ या कहै, याका मोकों ज्ञान नाहीं, किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दूंगा, अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसौं मिलै तौ पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं हू बताय देना। जातैं ऐसा न होय तौ अभिमानके वशतैं अपनी पण्डिताई जनावनेकौं प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातैं श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेत बुरा होय, जैनधर्मकी निंदा होय। जातैं जो ऐसा न होइ तौ श्रोताओंका संदेह दूर न होई तब कल्याण कैसैं होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिकी प्रवृत्ति न होय, जातैं लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय, तब ताका वचन कौन प्रमाण करै, जिनधर्मको लजावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन

होय, प्रभुत्व होय तातें लोकविषैं मान्य होय जातें, जो ऐसा न होय तौ ताकौं वक्तापनाकी महंतता शोभै नाहीं। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषैं ये गुण तौ अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषैं कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपनैं प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दा रहितपना करि परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय. स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभाका नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े-बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तौ विशेषपनै ताकौं वक्तापनौं सोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिनधर्मका मर्म जानै नाहीं, पद्धतिहीकरि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय सांचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसें प्रगट किया जाय, तातें आत्मज्ञानी होई तौ सांचा वक्तापनों होई, जातें प्रवचनसार विषैं ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनौं आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं। बहुरि दोहापाहुडविषैं ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छांडि वितुस कंडिया ।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ।।१।।

याका अर्थ—हे पांडे हे पांडे हे पांडे तैं कणछोडि तुस ही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषैं सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है तातैं मूर्ख ही है ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषैं भी पहलै अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्म्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं वा अवधि-मनःपर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जाननें। ऐसें वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ता-का संयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतैं तौ शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लोभकरि श्रद्धानादि गुणरहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाहीं। उक्तं च—

तं जिण आणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि ।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्स कहगाओ ।।१।।

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषैं सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीकै निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतैं धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है। अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है,ऐसा जानना। ऐसें वक्ताका

स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं हैं —

श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूँ ? मेरा कहा स्वरूप है? (अर कहाँतैं आकर यहाँ जन्म धारचा है और मरकर कहाँ जाऊँगा? ※) यह चरित्र कैसैं बनि रह्या है ? ए मेरै भाव हो हैं तिनका कहा फल लागैगा, जीव दुखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका कहा उपाय है, मुझकों इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतैं उद्यमवंत भया है । बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतैं होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थकों अपने अंतरंगविषैं बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतैं सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तौ नवीन श्रोताका स्वरूप जानना । बहुरि जे जैनधर्म्म के गाढ़े श्रद्धानी हैं अरं नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीकै जानि जिस अर्थकौं सुनै हैं ताकौं यथावत् निश्चय जानि अवधारैं हैं । बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै हैं अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करैं हैं, शास्त्राभ्यास विषैं अति आसक्त हैं, धर्म्मबुद्धिकरि निंद्यकार्यनिके त्यागी भए हैं, ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए । बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे हैं । जाकैं किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तौ श्रोतापनौं विशेष सोभै है । बहुरि

※ यह पंक्तियाँ खरडा प्रति में नहीं हैं अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहां दे दी गई हैं।

ऐसा भी श्रोता है अर वाकै आत्मज्ञान न भया होय तौ उपदेशका मरम समझि सकै नाहीं तातैं आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्मके रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधिमनःपर्ययकरि संयुक्त होय तौ वह महान् श्रोता जानना। ऐसैं श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि शास्त्र सुननेतैं हमारा भला होगा, ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै हैं परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझैं नाहीं तिनिके पुण्यबन्ध हो है। कार्य सिद्ध होता नाहीं। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तौ हैं परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकै परिणाम अनुसारि कदाचित् पुण्यबन्ध हो है कदाचित् पापबंध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनें हैं वा तर्क करनैंहीका जिनिका अभिप्राय है, बहुरि जे महंतताकै अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनै हैं, बहुरि जो शास्त्र तौ सुनै हैं परन्तु सुहावता नाहीं, ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसें ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनिकै पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र कौं उचित वक्ता होय वांचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषैं समस्त जीव हैं ते कर्म्मनिमित्ततैं निपजे

जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे हैं। बहुरि तहाँ मिथ्या अंधकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँतैं मुक्त होनेका मार्ग पावते नाहीं तड़फि तड़फि तहाँ ही दुःखकौं सहैं हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकौं कारण तीर्थंकर केवली भगवान्, सो ही भया सूर्य, ताका भया उदय, ताकी दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि, तहाँतैं मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया जैसैं सूर्यकै ऐसी इच्छा नाहीं जो मैं मार्ग प्रकाशूँ, परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलै हैं ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसैं ही केवली वीतराग है तातैं ताकै ऐसी इच्छा नाहीं जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करैं परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनिका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गकौं कैसैं पावैं अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुख सहैंगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक, तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसैं दीपक करि दीपक जोवनेतैं दीपकनिकी परम्परा प्रवर्तै तैसैं आचार्यादिकनिकरि तिन ग्रन्थनितैं अन्य ग्रंथ बनाए। बहुरि तिनिहूतैं किनिहू अन्य ग्रन्थ बनाए ऐसे ग्रंथनितैं ग्रन्थहोनेतैं ग्रन्थनिकी परम्परा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितैं इस ग्रन्थकों बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसैं सूर्य वा सर्व दीपक हैं ते मार्गकौं एकरूपही प्रकाशै हैं तैसैं दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ हैं ते मोक्षमार्गकौं एकरूप ही प्रकाशै हैं। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गकौं प्रकाशै है। बहुरि जैसैं प्रकाशै भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष हैं तिनिकूं मार्ग सूझता नाहीं तौ दीपककै तौ

मार्गप्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं, तैसें प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित हैं तिनिकूं मोक्षमार्ग सूझता नाहीं, तौ ग्रन्थकै तौ मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसें इस ग्रन्थका मोक्षमार्गप्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहाँ प्रश्न—जो मोक्षमार्गके प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे कौं बनावो हौ ?

ताका समाधान—जैसें बड़े दीपकनिका तौ उद्योत बहुत तैलादिकका साधनतें रहै है, जिनकैं बहुत तैलादिककी शक्ति न होइ तिनिकौं स्तोक दीपक जोइ दीजिये तौ वै उसका साधन राखि ताके उद्योततैं अपना कार्य करैं तैसैं बड़े ग्रन्थनिका तौ प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतें रहै है, जिनकै बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाहीं तिनिकूं स्तोक ग्रन्थे बनाय दीजिये तौ वै वाका साधन राखि ताके प्रकाशतैं अपना कार्य करैं। तातैं यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहाँ जो मैं यहु ग्रन्थ बनाऊँ हूँ सो कषायनितें अपना मान बधावनेकौं वा लोभ साधनेकौं वा यश होनेकौं वा अपनी पद्धति राखनेकौं नाहीं बनाऊँ हूँ। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिकका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाहीं तातैं तिनिकै बड़े ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाहीं। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तौ भी यथार्थ अर्थ भासै नाहीं। ऐसें इस समयविषैं मंदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये है तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितें यह भाषा मय ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसै बड़े दरिद्रीकौं अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसें कोढीकूं अमृत पान करावै

अर वह न करै तैसैं संसारपीड़ित जीवकौं सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तौ वाके अभाग्यकी महिमा हमतैं तौ होइ सकै नाहीं। वाका होनहारहीकौं विचारै अपने समता आवै। उक्तं च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुड़ें भी जे जीव धर्म्म वचननिकौं नाहीं सुनैं हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसार भयतैं तीर्थंकरादिक डरे तिस संसार भयकरि रहित हैं, ते बड़े सुभट हैं। बहुरि प्रवचनसारविषैं भी मोक्षमार्गका अधिकार किया, तहाँ प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या, सो इस जीवका तौ मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याकों होतैं तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए संयमभाव हो है अर तिस आगमतैं आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म्मके अनेक अंग हैं तिनिविषैं एक ध्यान बिना यातैं ऊँचा और धर्म्मका अंग नाहीं है तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथका तौ वाँचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातैं अवश्य याका अभ्यासविषैं प्रवर्तौ, तुम्हारा कल्याण होयगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै पीठबन्ध-
प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥



दूसरा अधिकार

संसार अवस्था का स्वरूप

दोहा

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव।
सो जयवंत रहौ सदा, यह ही मोक्ष उपाय ॥१॥

अब इस शास्त्रविषैं मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहाँ बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है। सो इस आत्माकै कर्म्मंका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुखी होय रह्या है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु साँचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाहीं अर दुःख सहा भी जाता नाहीं तातैं यहु जीव व्याकुल होय रह्या है ऐसे जीवकौं समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सो ही कर्तव्य है तातैं इसहीका याकौं उपदेश दीजिए है तहाँ जैसे वैद्य है सौ रोगसहितमनुष्यकौं प्रथम तौ रोगका निदान बतावैं, ऐसैं यहु रोग भया है। बहुरि उस रोगके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै ताकरि वाकै निश्चय होय जो मेरै ऐसैं ही रोग है। बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताकौं प्रतीति अनावै। इतना तौ वैद्यका बतावना है बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तौ रोग तैं मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसैं ही इहाँ कर्म बन्धनयुक्त जीवकौं प्रथम तौ कर्मबन्धनका निदान बताइए है ऐसैं यहु कर्मबन्धन भया है। बहुरि उस कर्मबंधनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती है सो सो बताइए है। ताकरि जीवकै

निश्चय होय जो मेरे ऐसें ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याकौ प्रतीति अनाइये है इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करं तौ कर्मबन्धनतैं मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है,सो इहाँ प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताइये है।

कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमण-पनौं पाइए है,एक रूप रहनौं न हो है तातैं कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषैं अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित हैं। ऐसा नाहीं है जो पहलैं जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछैं इनिका संयोग भया। तौ कैसें है— जैसैं मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषैं अनंते पुद्गल-परमाणु अनादितैं एक बन्धनरूप हैं, पीछैं तिनमैं केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलैं हैं। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसैं इस संसार विषैं एक जीव द्रव्य अर अनंते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनि-का अनादितैं एक बन्धनरूप है पीछैं तिनिमैं केई कर्म परमाणु भिन्न हो हैं, केई नये मिलैं हैं। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो पुद्गलपरमाणु तौ रागादिकके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं, अनादि कर्मरूप कैसें हैं ?

ताका समाधान—निमित्त तौ नवीन कार्य होय तिसविषै ही सम्भवै है। अनादि अवस्थाविषैं निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसें नवीन पुद्गल-परमाणूनिका बंधान तौ स्निग्ध रूक्ष गुणके अंशन ही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषैं अनादि पुद्गलपरमाणूनिका बन्धान है तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? तैसें नवीन परमाणूनिका कर्म्मरूप होना तौ रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्गलपरमाणूनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है । तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जो अनादिविषैंभी निमित्त मानिए तौ अनादिपना रहै नाहीं । तातैं कर्मका बन्ध अनादि मानना । सो तत्वप्रदीपिका प्रवचनसार शास्त्रकी व्याख्या विषैं जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहाँ कह्या है । रागादिकका कारण तौ द्रव्यकर्म है, अर द्रव्यकर्म्मका कारण रागादिक है । तब उहां तर्क करी जो ऐसैं इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाकै आश्रय, वह वाकै आश्रय, कहीं थंभाव नाहीं है, तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात् । ❀

याका अर्थ—ऐसैं इतरेतराश्रय दोष नाहीं है । जातैं अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्मका संबंध है ताका तहाँ कारणपनाकरि ग्रहण किया है । ऐसैं आगममैं कह्या है । बहुरि युक्तितैं भी ऐसैं ही संभवै है जो कर्म्मनिमित्त विना पहले जीवकै रागादिक कहिए तौ रागादिक जीवका निज स्वभाव होय जाय जातैं परनिमित्त बिना होइ ताहीका नाम स्वभाव है । तातैं कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना ।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितैं तिनिका सम्बन्ध, ऐसैं कैसैं सम्भवै ?

❀ नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात् । प्रवचनसार टीका, २।२९

ताका समाधान—जैसें ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तैल तिलका सम्बन्ध देखिए है नवीन इनिका मिलाप भया नाहीं तैसें अनादिहीसौं जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसें संभवै ? अनादितें जैसें केई जुदे द्रव्य हैं तैसें केई मिले द्रव्य हैं इस संभवनेंविषै किछू विरोध तौ भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो संबंध वा संयोग कहना तौ तब संभवै जब पहले जुदे होइ पीछै मिलैं। इहाँ अनादि मिले जीव कर्म्मनिका संबंध कैसें कह्या है।

ताका समाधान—अनादितें तौ मिले थे परन्तु पीछैं जुदे भए तब जान्या जुदे थे तौ जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसें अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासैं हैं। तिसकरि तिनिका बन्धान होतें भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनिका सम्बन्ध वा संयोग कह्या है जातैं नए मिलौ वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसें ही कहना संभवै है। ऐसें इन जीव-निका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है।

तहाँ जीवद्रव्य तौ देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिकौं लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनंत पुद्गल परमाणूनिका पिंड है तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसें ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनिका अनादि सम्बन्ध है तौ भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परमाणु

जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणकौं धरें जुदे जुदेही रहैं हैं। जैसें सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिकौं धरैं सोना जुदा रहै है स्वेतादि गुणनिकौं धरें रूपा जुदा रहै है, तैसें जुदे जानने।

इहां प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तौ बन्धान होना बनै, अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका बन्धान कैसें बनै ?

ताका समाधान—जैसें अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्मपुद्गल, अर व्यक्त इन्द्रियगम्य हैं ऐसे स्थूलपुद्गल, तिनका बन्धान होना मानिए है, तैसें इन्द्रियगम्य होने योग्य नाहीं ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनिका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषैं कोऊ किसीकौं करै तौ है नाहीं। यावत् बन्धान रहै तावत् साथि रहै, विछुरै नाहीं अर कारणकार्यपना तिनिकै बन्या रहै, इतना ही यहाँ बंधान जानना। सो मूर्तीक अमूर्तीककै ऐसें बंधान होने विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसें एक जीवकै अनादि-कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसें ही जुदा जुदा अनंत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततैं तो जीवके स्वभावका घात हो है तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तौ जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनिकी व्यक्तता नाहीं हो है तिनि कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरिजीवके स्वभाव नाहीं, ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा कोध मान माया लोभादिक कषाय तिनिकी व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेकी समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है ताका क्षयोपशमकै अनुसारि

किंचित् शक्ति हो है ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्ततैं जीवके स्वभावका घात अनादिहीतैं भया है। ऐसैं नाहीं जो पहलैं तौ स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछैं कर्म्मनिमित्ततैं स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहाँ तर्क—जो घात नाम तौ अभावका है सो जाका पहलै सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनैं। इहाँ स्वभावका तौ सद्भाव है ही नाहीं, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषै अनादिहीतैं ऐसी शक्ति पाइए है जो कर्म्मका निमित्त न होइ तौ केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्तै परन्तु अनादिहीतैं कर्म्मका सम्बन्ध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देने-की अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यारि अघातिया कर्म्म हैं तिनिके नितित्ततैं इस आत्माकै बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनै है तहाँ वेदनीयकरि तौ शरीरविषैं वा शरी-रतैं बाह्य नानाप्रकार सुखदुःखकौं कारण परद्रव्यनिका संयोग जुरै है। अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यंत पाया शरीरका सम्बन्ध नाहीं छूटि सकै है। अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजैं हैं। अर गोत्रकरि ऊँचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है ऐसैं अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहके उदयका सहकारण होतैं जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतैं जीवकै अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थकौं नाहीं करैं हैं। जैसैं कोऊ शरीरकौं पकरै तौ आत्माभी पकरचा जाय। बहुरि यावत् कर्म्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसैं ही बनी रहे अन्यथा न होय सकै, ऐसा इनि अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहाँ कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तौ जड़ हैं किछू बलवान नाहीं, तिनिकरि जीवके स्वभावका घात होना वा बाह्यसामग्रीका मिलना कैसै सम्भवै ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावकौं घातै, बाह्य सामग्रीकौं मलावै तब कर्म्मकै चेतनपनौं भी चाहिए अर बलवानपनौं भी चाहिए सो तौ है नाहीं, सहजही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस काल-विषैं आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य हैं ते तैसैं ही सम्बन्धरूप होय परिणमैं। जैसैं काहू पुरुषकै सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहाँ उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बावलापना भी न था अर बावला-पना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तौ निमित्त है अर पुरुष आप ही बावला हुआ परिणमै है,ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसैं सूर्यका उदयका कालविषैं चकवा चकवी-निका संयोग होय तहाँ रात्रिविषै किसीनै द्वेषबुद्धितैं ल्यायकरि मिलाए नाहीं,सूर्यउदयका निमित्त पाय आप ही मिलै हैं अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही विछुरैं हैं। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक बनि रह्या है। तैसैं ही कर्म्मका भी निमित्त नैमित्तिकभाव जानना। ऐसैं कर्म्मका उदयकरि अवस्था होय है बहुरि तहाँ नवीन बन्ध कैसैं हो है सो कहिए है—

नूतन बंध विचार

जैसैं सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतैं जितना व्यक्त नाहीं तितनेका तौ तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मंदपनातैं जेता

प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अंश है,मेघपटलजनित नाहीं है। तैसें जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततें जितने व्यक्त नहीं तितनैका तौ तिसकालविषैं अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतें जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगट है सो तिस जीवके स्वभावका अंश ही है,कर्म्मजनित उपाधिक भाव नाहीं है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितें लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिकौं धरें वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका बंध नाहीं है जातें निज स्वभाव ही बन्धका कारन होय तौ बन्धका छूटना कैसें होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतें जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरिभी बन्ध नाहीं है जातें आपहीका अभाव होतें अन्यकों कारण कैसें होय। तातैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततें निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारण नाहीं।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तौ मिथ्यात्वभावहो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय होय हैं। ते यद्यपि जीव के अस्तित्वमय हैं, जीवतें जुदे नाहीं,जीवही इनिका कर्ता है,जीवके परिणामनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनिका होना मोहकर्म्मके निमित्ततें ही है,कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनिका अभाव हो है तातें ए जीवके निजस्वभाव नाहीं उपाधिकभाव हैं। बहुरि इनि भावनिकरि नवीनबन्ध हो है तातैं मोहके उदयतें निपजे भाव बन्धके कारन हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतें बाह्य सामग्री मिलै है तिनिविषै शरीरादिक तौ जीवके

प्रदेशनिसौं एक क्षेत्रावगाही होय एकबन्धानरूप ही हो हैं। अर धन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारन नाहीं हैं जातैं परद्रव्य बंधका कारन न होय। इनिविषै आत्माकै ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादिभाव हो हैं सोई बंधका कारन जानना।

योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्म्मके उदयतैं शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततैं आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना हो है। ताकरि आत्माके पुद्गलवर्ग्गणासौं एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततैं समय समय प्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनंत परमाणूनिका ग्रहण हो है। तहाँ अल्पयोग होय तौ थोरे परमाणूनिका ग्रहण होय, बहुत योग होय तौ घने परमाणूनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषैं जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनिविषैं ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनिकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसैं सिद्धांत-विषैं कह्या है तसैं बटवारा हो है। तिस बटवारा माफिक परमाणु तिनि प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै है। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है—शुभयोग, अशुभयोग। तहाँ धर्मके अंगनिविषैं मनवचनकाय की प्रवृत्ति भए तौ शुभयोग हो है अर अधर्म अंगनिविषैं तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु, सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तौ सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बंध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाहीं। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषैं, रति अरति युगलविषैं, तीनौं वेदनविषैं एकैं काल एक एक ही प्रकृतिनिका

बन्ध हो है । बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषें शुभोपयोग होतें साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतें असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतें केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त तैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणूनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया, अर तिनिविषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध

बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हों हैं, तिनि सबनिका नाम सामान्यपनै कषाय है। ताकरि तिनिकर्मप्रकृतिनिकी स्थितिबन्धै है सो जितनी स्थिति बँधे तिसविषैं अबाधाकाल छोड़ि तहाँ पीछैं यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिस प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यंचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होतें थोरा स्थिति-बन्ध होय,बहुत कषाय होतें घना स्थितिबन्ध होय। इनि तीन आयूनि-का अल्पकषायतें बहुत अर बहुत कषायतें अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहीकरि तिनि कर्मप्रकृतिनिविषैं अनुभागशक्तिका विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बंधै तैसा ही उदयकालविषै तिनि प्रकृतिनिका घना थोरा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिकी सब प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषें तौ अल्पकषाय होतें थोरा अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें घना अनुभाग बंधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषैं अल्पकषाय होतैं घना अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतैं थोरा अनुभाग बंधै हैं। ऐसैं कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिकै स्थिति अनुभागका विशेष भया तातैं कषायनिकरि स्थितिबंध अनुभागबंधका होना जानना। इहाँ जैसैं बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा हीनपनाकौं प्राप्त है। वहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा अधिकपनाकों प्राप्त है। तैसैं घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनिविषै थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तौ ते कर्मप्रकृति हीनताकौं प्राप्त हैं। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनिविषैं बहुत कालपर्यंत बहुत फल देने की शक्ति है तौ वे कर्मप्रकृति अधिकपनाकौं प्राप्त हैं तातैं योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबंध बलवान नाहीं। कषायनिकरि किया स्थितिबंध अनुभागबंध ही बलवान है तातैं मुख्यपनैं कषाय ही बंध का कारण जानना। जिनिकौं बंध न करना होय ते कषाय मति करौ।

जड़ पुद्गल परमाणुओंका यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तौ जड़ हैं उनकै किछू ज्ञान नाहीं, कैसैं यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमैं हैं?

ताका समाधान— जैसैं भूख होतैं मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मांस शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमैं है। बहुरि तिस भोजनके परमाणूनिविषैं यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनिविषैं केई परमाणुनिका

सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिनि परमाणू-निविषै केई तौ अपने कार्य निपजावनैंकी बहुत शक्तिकौं धरैं हैं, केई स्तोकशक्तिकौं धरै हैं। सो ऐसैं होनेविषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तौ नाहीं है जो मैं ऐसैं परिणमौं अर और भी कोऊ परिणमा-वनहारा नाहीं है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है ताकरि तैसैं ही परिणमन पाइए है। तैसैं ही कषाय होतैं योग द्वारि-करि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंड सो ज्ञानावरणादि प्रकृति-रूप परिणमै है। बहुरि तिनि कर्मपरमाणूनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे, कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनि विषै केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिनि परमाणूनिविषै कोऊ तौ अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै हैं, कोऊ थोरी शक्ति धरै हैं सो ऐसैं होनेंविषै कोऊ कर्म-वर्गणारूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तौ नाहीं है जो मैं ऐसैं परिणमौं अर और भी कोई परिणमावन हारा है नाहीं, ऐसा ही निमित नैमित्तिक-भाव बनि रह्या है ताकरि तैंसैं ही परिणमन पाइये है। सो ऐसैं तौ लोकविषैं निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसैं मंत्रनिमित्त-करि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा काँकरी आदिविषै सर्पादि रोकनेकी शक्तिहो है तैसैं ही जीव भावके निमित्त-करि पुद्गल परमाणूनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहाँ विचारकरि अपने उद्यमतैं कार्य करै तौ ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसैं परिणमन होय तौ तहाँ ज्ञानका किछू प्रयोजन नाहीं, या प्रकार नवीनबंध होनेका विधान जानना।

भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसौं एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान रहै है। तहाँ जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणू थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जाँय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसैं पूर्वँ बंधे परमाणुनिकी भी जीवभावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनैं तौ न पलटै, जैसेके तैसे रहैं। ऐसैं सत्तारूप कर्म रहै हैं।

कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिनि प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसारि कार्य बनैं। कर्म्म तिनिका कार्यनिकौं निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समय फल निपज्या तिसका अनंतर समयविषैं तिनि कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतैं कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसैं समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरै हैं। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषै रहौ वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहाँ इतना जानना - इस जीवकै समय समय प्रति अनंतपरमाणु बंधै हैं तहाँ एक समयविषै बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ि अपनी स्थितिके जेते समय होंहि तिनि विषै क्रमतैं उदय आवै हैं । बहुरि बहुत समयनिविषै बंधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य हैं ते एकट्ठे होय उदय आवै हैं । तिनि सब परमाणूनिका अनुभाग मिलें जेता अनुभाग होय तितना फल तिस काल विषै निपजै है । बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतैं लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप अस्तित्वकौं धरैं जीवसों सम्बन्धरूप रहैं हैं । ऐसैं कर्मनिकी बंध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी । तहाँ समयसमय प्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बंधै हैं, एक समयप्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं । ड्योढगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै हैं । सो इनि सबनिका विशेष आगैं कर्मअधिकारविषै लिखैंगे तहाँ जानना ।

द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसैं यह कर्म है सो परमाणुरूप अनंत पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम द्रव्यकर्म है । बहुरि मोहके निमित्ततैं मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भाव कर्म है । सो द्रव्यकर्म के निमित्ततैं भावकर्म होय अर भावकर्म के मिमित्ततैं द्रव्यकर्मका बंध होय । बहुरि द्रव्यकर्मतैं भावकर्म, भावकर्मतैं द्रव्यकर्म, ऐसैं ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषैं परिभ्रमण हो है । इतना विशेष जानना — तीव्र मन्द बन्ध होनेतैं वा संक्रमणादि होनेतैं वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषैं बंधे एककाल-विषै उदय आवनेतैं काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषैं मंद उदय आवै तब मंद कषाय होय तब मंद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिनि तीव्र-मंदकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय तौ होय। या प्रकार अनादितैं लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतं शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दुःखकौं कारण है। तातैं शरीरकौं नोकर्म कहिए हैं। इहां नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीरके अंग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिंड जानने। सो ऐसैं शरीरकै अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवकै एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान हो है सो शरीर-का जन्म समयतैं लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनंतर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म-उदयके निमित्ततैं नवीन शरीर धरै है तहाँ भी अपने आयुपर्यन्त तैसैं ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससौं सम्बन्ध छूटै है। ऐसैं ही पूर्व शरीरका छोड़ना नवीन शरीरका ग्रहण करन। अनुक्रमतैं हुआ करै है। बहुरि यहु आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितैं शरीरप्रमाण ही रहै है, विशेष इतना—समुद्घात

होतैं शरीरतैं बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनिके सहायतैं जीवकै जान-पना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाकै अनुसारि मोहके उदयतैं सुखी दुखी हो है। बहुरि कबहूँ तौ जीवकी इच्छाकै अनुसारि शरीर प्रवर्तै है कबहूँ शरीरकी अवस्थाकै अनुसार जीव प्रवर्तै हैं। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है, ऐसैं इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहाँ अनादितैं लगाय प्रथम तौ इस जीवकै नित्यनिगोदरूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहाँ नित्यनिगोदशरीरकौं धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरकौं धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकौं धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितैं तहाँ ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहाँतैं छै महीना अर आठ समयविषै छस्सै आठ जीव निकसै हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकों धारै हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक-वनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं बहुरि तहाँ कितेककाल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायकौं पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहाँ कितेककाल रहै तहाँ तैं निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं। तहाँ परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है।

अर द्वींद्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषैं साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनंतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावरपर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसैं एकेंद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अंतर्मुहूर्त काल है। ऐसैं घना तौ एकेन्द्रियपर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तौ काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततैं जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तौ इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकौं प्रतिभासे है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है, विशेषस्वरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकौं प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्मा-विषैं शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरण-का सम्वन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं। तिनि कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षु-दर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसैं है सो दिखाइए है।

सो प्रथम तौ मतिज्ञान है सो शरीरके अंगभूत जे जीभ, नासिका,

नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थानविषैं आठ पाँखड़ीका फूल्या कमलकै आकारि द्रव्यमन तिनिके सहायहीतैं जानै है। जैसैं जाकी दृष्टि मंद होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चसमा दीए ही देखै। बिना चसमैके देखि सकै नाहीं। तैसैं आत्माका ज्ञान मंद है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानैं तिनि बिना जानि सकै नाहीं। बहुरि जैसैं नेत्र तौ जैसाका तैसा है अर चसमाविषैं किछू दोष भया होय तौ देखि सकै नाहीं, अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसैं अपना क्षयोपशम तौ जैसा का तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमें होंय तौ जानि सकै नाहीं, अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातैं द्रव्य इन्द्रिय वा मनरूप परमाणूनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनकै अनुसारि ज्ञानका परिणमन होय है। ताका उदाहरण—जैसैं मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। बहुरि जैसैं शीत वायु आदिके निमित्ततैं स्पर्शनादिइन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होंय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय। बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है ताका उदाहरण—जैसैं नेत्रइंद्रियकै अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आय जाएँ तौ देखि न सकै। बहुरि लाल काँच आड़ा आवै तौ सब लाल ही दीसै, हरित काँच आड़ा आवै तौ हरितही दीसै, ऐसैं अन्यथा जानना होय। बहुरि दूरबीन

चसमा इत्यादि आड़ा आवै तौ बहुत दीसने लगि जाय । प्रकाश जल हिलव्वी काच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवैं तौ भी जैसाका तैसा दीखै । ऐसैं अन्य इन्द्रिय वा मनकै भी यथासम्भव—निमित्तनैमित्तिकपना जानना । बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतैं वा मदिरा पानादिकतैं वा भूतादिकके निमित्ततैं न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है । ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यकै भी आधीन जानना । बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरितैं कैसा ही जानै, समीपतैं कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानैं, जानतैं बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै । काहूकौं संशय लिए जानै, काहूकौं अन्यथा जानै, काहूकौं किंचित् जानैं, इत्यादि रूपकरि निर्मल जानना होय सकै नाहीं । ऐसैं यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इंद्रिय मन द्वारकरि प्रवर्तै है । तहाँ इन्द्रियनिकरि तौ जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होय तिनहीकौं जानै । तिनिविषैं भी जुदे जुदे इन्द्रियनिकरि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है । बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूरि क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनिकौं अत्यन्त अस्पष्टपनै जानै है सो भी इंद्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीकौं जानि सकै है । बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाही करि असत्कौं जानै है । जैसैं सुपनेविषै वा जागतैं भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चिंतवै वा जैसैं नाहीं तैसैं मानै । ऐसैं मन करि जानना होय है सो यहु

इंद्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहाँ पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेंन्द्रियनिकै स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि बेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतंगादिक चौइंद्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं तिनिकै स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई संज्ञी हैं केई असंज्ञी हैं। तहाँ संज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असंज्ञीनिकै नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी संज्ञी ही हैं तिनि सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसैं मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतैं अन्य अर्थकौं जाकरि जानियें सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहाँ जैसैं 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तौ मतिज्ञान भया तिंनिके सम्बन्धतैं घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसैं अन्य भी जानना। सो यहु तौ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि जैसैं स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तौ मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतैं यह हितकारी नाहीं यातै भागि जाना इत्यादरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसैं अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तौ अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष संज्ञी पंचेन्दियकै दोऊ हैं। सो यहु श्रुतज्ञान है, सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताकैं भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिकै आधीन है, तातैं महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाकै अनुसारि क्षेत्रकालका प्रमाण लिएं रूपी पदार्थनिकौं स्पष्टपनैं जाकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यहु देव नारकीनिकै तौ सर्वकै पाइए है अर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असंज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यहु होता ही नाहीं। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिकैं आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद हैं। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थकौं जाननहारा देशावधि है सो ही कोई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै हैं। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातैं इस अनादि संसार अवस्था विषैं नका सद्भाव ही नाहीं है, ऐसैं तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनके स्पर्शादिक विषय तिनिका सम्बन्ध होतैं प्रथम कालविषैं मतिज्ञानकै पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहाँ नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तौ चक्षुदर्शन है सो तौ चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञानके पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनेरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनिकैं अवधिज्ञान सम्भवै तिनिहीकै यहु हो है। जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहाँ सद्भाव ही नाहीं। ऐसैं

दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमकें अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं शक्ति तौ ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषैं कै तौ ज्ञानोपयोग हो है, कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसैं मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषैं ही प्रवृत्ति हो है। जैसैं स्पर्शकौं जानै तब रसादिककौं न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अंग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसैं उष्णस्पर्शकौं जानै तब रूक्षादिककौं न जानै। ऐसें एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसें ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्ठता भी पदार्थ न दीसै, ऐसै ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है, सो युगपत् होता नाहीं, क्रम हीं करि हो है, संस्कारबलतैं तिनिका साधन रहै है। जैसैं कागलेकै नेत्र के दोय गोलक हैं, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै हैं तैसैं ही इस जीवकै द्वार तौ अनेक हैं अर उपयोग एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहाँ प्रश्न—जो एक कालविषं एक विषयका जानना वा देखना हो

हैं तौ इतना ही क्षयोपशम भया कहौ, बहुत काहेकूं कहौ ? बहुरि तुम कहो हौ, क्षयोपशमतें शक्ति हो है तौ शक्ति तौ आत्माविषै केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है।

ताका समाधान—जैसें काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताकौं काहूनै रोक्या अर यहु कह्या, पाँच ग्रामनि-विषै जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामकौं जावो। तहाँ उस पुरुष कै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तौ द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषैं सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं है परन्तु वर्तमान पाँच ग्राम-नितें अधिक ग्रामनिविषैं गमन करि सकै नाहीं। बहुरि पाँच ग्रामनि विषैं जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनि-विषैं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषैं एक ग्रामकौं गमन करनेहीकी पाइए है। तैसें इस जीवकैं सर्वकौं देखनेकी, जाननेकी शक्ति है। बहुरि याकों कर्मनै रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिकौं जानौ वा देखौ परन्तु एक काल विषै एकहीकौं जानौ वा देखौ। तहाँ इस जीव सर्वके देखने जाननेकी शक्ति तौ द्रव्यअपेक्षा पाइए है, अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं, जातें अपने योग्य विषयनितें अधिक विषयनिकौं देखि जानि सकै नाहीं। बहुरि अपने योग्य विषयनिकौं देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातें इनिकौं देखि जानि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीकौं देखनेकी वा जाननेकी पाइए है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो ऐसें तौं जान्या परन्तु क्षमोपशम तौ पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भए देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसैं कर्महीका निमित्त तौ न रह्या?

ताका समाधान—जैसैं रोकनहारानैं यहु कह्या जो पाँच ग्रामनि-विषै एक ग्रामकौं एक दिनविषैं जावो परन्तु इन किंकरनिकौं साथ लेकैं जावो तहाँ वे किंकर अन्यथा परिणमैं तौ जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय तैसैं कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयकौं एक कालविषै देखौ वा जानौ परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भए देखौ वा जानौ। तहाँ वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तौ देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय। ऐसें यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातें कर्महीका निमित्त जानना। जैसें काहूकै अंधकारके परमाणु आड़े आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकै तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसें जैसें क्षयोपशम होय तैसें तैसेंही देखना जानना होय। ऐसें इस जीवकै क्षमोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषैं अवधि मनःपर्यय हो हैं ते भी क्षयोपशमज्ञान ही हैं तिनिकी भी ऐसें ही एक कालविषै एककौं प्रतिभासना वा परद्रव्य-का आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततें बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतें थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं तहाँ दर्शनमोहके उदयतें तौ मिथ्यात्वभाव हो हैं ताकरि यह जीव

अन्यथा प्रतीतरूप अतत्त्वश्रद्धान करै है। जैसें है तैसें तौ न मानै है अर जैसैं नाहीं है तैसें मानै है। अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुञ्ज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल-द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीनसंयोग भया, ऐसें शरीरादिक पुद्गल पर है। इनिका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय ही हैं, तिस पर्यायनिविषैं अहंबुद्धि धारै है, स्व-परका भेद नाहीं करि सकै है। जो पर्याय पावै तिसहीकौं आपा मानै है। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तौ आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततें उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाहीं हैं,शरीरादिक पुद्गलके गुण हैं अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणूनिकी नाना प्रकार पलटनि हो हैं सो पुद्-गलकी अवस्था है सो इन सबनिहीकौं अपनों स्वरूप जानै है,स्वभाव पर भावका विवेक नाहीं होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषें कुटुम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतें भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाहीं परिणमैं हैं तथापि तिनि विषैं ममकार करै है। ए मेरे हैं वे काहू प्रकार भी अपने होते नाहीं, यह ही अपनी मानि तैं अपने मानै है। बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तौ प्रतीति करै है अर यथार्थस्वरूप जसैं है तैसें प्रतीति न करै है। ऐसें दर्शनमोहके उदयकरि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो हैं। जहाँ तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतैं घना विपरीत श्रद्धान होय है। जब मंद उदय होय है तब सत्यश्रद्धानतें थोरा विपरीतश्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं इस जीवकै कषायभाव हो हैं तब यह देखता जानता संता परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनौ मानि क्रोधादिक करै है। तहाँ क्रोधका उदय होतैं पदार्थनिविषै अनिष्टपनौ वा ताका बुरा होना चाहै। कोऊ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकौं वध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय,ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपकौं सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तौ होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि मानका उदय होतैं पदार्थविषैं अनिष्टपनौ मानि ताकौं नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मल धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनिकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकौं नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनिकी हीनता,आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसें ऊँचा दीसै तैसें शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकौं हीन दिखाय,आप ऊँचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतैं ऊँचा कार्य करै ताकौं कोई उपाय करि नीचा दिखावै और आप कार्य करै ताकूं ऊँचा दिखावै, या प्रकार मानकरि अपनी महंतताकी इच्छा तौ होय, महंतता होनी भवितव्य आधीन है।

बहुरि मायाका उदय होतैं कोई पदार्थकौं इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताकी सिद्धि किया चाहै। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदा-

र्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै। परको ठिगनैके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपनाअभिप्राय सिद्ध किया चाहै। या प्रकार मायाकरि इष्ट-सिद्धिके अर्थि छल तौ करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि लोभका उदय होतैं पदार्थनिकौं इष्ट मानि तिनिकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय। बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनिकौं तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै। या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तौ होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसैं क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमैहै,तहाँ एक एक कषायका च्यारि च्यारि प्रकार है। अनंतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्या-नावरण ३, संज्वलन ४। तहाँ (जिनका उदयतैं आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनंतानुबंधीकषाय हैं।*) जिनिका उदय होतैं देशचारित्र न होय तातैं किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनिका उदय होतैं सकलचारित्र न होय तातैं सर्वका त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्याना-वरण कषाय हैं। बहुरि जिनिका उदय होतैं सकलचारित्रकों दोष उपज्या करै तातैं यथाख्यातचारित्र न होय सकै,ते संज्वलन कषाय हैं। सो अनादि संसार अवस्थाविषैं इनि च्यार्यों ही कषायनिका निरंतर

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

उदय पाइए है। परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहाँ भी अर शुक्ललेश्यारूप मंदकषाय होय तहाँ भी निरन्तर च्यारचौंहीका उदय रहै है। जातैं तीव्रमन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाहीं हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद हैं। इनिही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होतैं तीव्र क्रोधादिक हो हैं, मन्द अनुभाग उदय होतैं मन्द उदय हो हैं। बहुरि मोक्षमार्ग भए इनि च्यारौं विषैं तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछै च्यारचौंका अभाव हो है। बहुरि कोधादिक च्यारचौं कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इनि कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनौं है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातैं काहूकाल भिन्नता भासै, काहूकाल न भासै है। ऐसैं कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्रमोहहीके उदयतैं नोकषाय होयहै तहाँ हास्यका उदयकरि कहीं इष्टपनौं मानि प्रफुल्लित हो है, हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदय करि काहूकौं इष्ट मानि प्रीति करै है तहाँ आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदय करि काहूकौं अनिष्ट मानि अप्रीति करै है तहाँ उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोकका उदयकरि कहीं अनिष्टपनौं मानि दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीकौं अनिष्ट मानि तिसतैं डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहू पदार्थकौं अनिष्ट मानि ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है। ऐसैं ए हास्यादिक छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतैं याकै काम परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसौं रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसों रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सकवेदके उदयकरि

युगपत् दोऊनिसौं रमनेकी इच्छा हो है, ऐसैं ए नव तौ नोकषाय हैं। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाहीं तातैं इनिकों ईषत्कषाय कहैं हैं। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनिका उदय तिनि क्रोधादिकनिकी साथि यथासम्भव हो है। ऐसैं मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए कारण संसारके मूल ही हैं। इनिही करि वर्तमान काल विषैं जीव दुखी हैं अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही हैं। बहुरि इनिहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहाँ मिथ्यात्वका नाम मोह है जातैं तहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातैं तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातैं तहाँ अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपनैं सबही का नाम मोह है। तातैं इनि विषैं सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अंतरायके उदयतैं जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिकौं प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसैं अंतरायके उदयतैं चाह्या चाहै सो होय नाहीं। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतैं किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तौ बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु थोड़ा ही*) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ाही लाभ

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है किन्तु अन्य सब प्रतियों में है, इस कारण आवश्यक जान यहां दे दी गई है।

हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिएं। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतैं जीवकै अवस्था हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषैं वेदनीयके उदयकरि शरीरविषै बाह्य सुख दुःखका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपनौ रोगीपनौ शक्तिवानपनौ दुर्बलपनौ इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीड़ा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो हैं। बहुरि बाह्यविषैं सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक, असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बंधनादिक सुख दुखकौं कारन हो हैं। ए बाह्यकारण कहै तिनि विषै केई कारण तौ ऐसे हैं जिनिके निमित्तस्यौं शरीरकी अवस्था ही सुख दुःखको कारण हो है अर वे ही सुख दुःखकौं कारन न हों हैं। बहुरि केई कारण ऐसे हैं जे आप ही सुख दुःखकौं कारण हो हैं। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयतैं हो है। तहाँ सातावेदनीयतैं सुखके कारण मिलैं अर असातावेदनीयतैं दुःखके कारण मिलैं। सो इहाँ ऐसा जानना, ए कारणही तौ सुखदुःखकौं उपजावै नाहीं, आत्मा मोहकर्म का उदयतैं आप सुखदुःख मानै है। तहाँ वेदनीय कर्मका उदयकैं अर मोहकर्मका उदयकैं ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तौ सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारन मिलैं तब दुःख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारन काहूकौं सुखका, काहूकौं दुःखका कारण हो है। जैसैं काहूकै सातावेदनीयका उदय होतैं मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है, तैसा ही वस्त्र काहूकौं असाता

वेदनीयका उदय होतैं मिल्या सो दुःखका कारण हो है। तातैं बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्तमात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके निमित्ततैं हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारन मिलैं तौ भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारन मिलै वा बिनाकारन मिलै भी अपने संकल्प हीतें सुखदुःख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीकै जिस कारनकों मिले तीव्र सुखःदुख होय तिसही कारनकौं मिलैं मंदमोहीकै मंद सुखदुःख होय। तातैं सुख-दुःखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु हैं सो बलवान कारन नाहीं। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवकै परिणा-मनिके निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीकौं सुखदुःखका कारन मानै है। ऐसैं वेदनीयकरि सुखदुःखका कारन निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादिपर्यायिनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारन मिलौ, शरीरस्यौं सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किएँ भी शरीरस्यौं सम्बन्ध रहै नाहीं, तिसहीकाल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषैं जन्म, जीवन, मरनका कारन आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारनतें जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतें मरन हा है। सहज ही ऐसा आयु-कर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा, क्षपावनहारा, रक्षाकरनेहारा है नाहीं, ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसैं नवीन वस्त्र पहरै

कितेक काल पहरे रहै पीछै ताकूं छोड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसें जीव नवीन शरीर धरै, कितेक काल धरे रहै, पीछै ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव जन्मादि रहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्यायसम्बन्धी कार्यनिविषे ही तत्पर होय रह्या है। ऐसैं आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यह जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहाँ त्रस स्थावरादि विशेष निपजै हैं। बहुरि तहाँ एकेंद्रियादि जातिकौं धारै है। इस जाति कर्मका उदयकै अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमकै निमित्तनैत्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशय होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहाँ शरीरका परमाणु अर आत्माका प्रदेशोंका एक बन्धन हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्य स्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसन आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजैं हैं वा हृदयस्थानविषै आठ पांखड़ीका फूल्याकमलकै आकार द्रव्यमन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिकका विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै हैं सो ए शरीररूप परणए परमाणु ऐसें परिणमैं हैं। बहुरि श्वासोच्छ्वास वा स्वर निपजै हैं सो ए भी पुद्गलके पिंड हैं अर शरीरस्यौं एक बंधानरूप हैं। इनविषै भी आत्माके प्रदेशव्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्वास तौ पवन है सो जैसें आहारकौं ग्रहैं नीहारकौं निकासै तब ही जीवनो

होय तैसैं बाह्यपवनकौं ग्रहै अर अभ्यंतरपवनकौ निकासै नब ही जीवितव्य रहै। तातैं श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारन है। इस शरीरविषै जैसैं हाड़ माँसादिक हैं तैसैं ही पवन जानना। बहुरि जैसैं हस्तादिकसौं कार्य करिए तैसैं ही पवनतैं कार्य करिए है। मुखमैं ग्रास धर्‍या ताकौं पवनतैं निगलिए है, मलादिक पवनतैं ही बाहर काढिए है, तैसैं ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अंग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसैं वीणाकी तांतिकौं हलाए भाषारूपहोने योग्य पुद्गलस्कंध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमैं हैं तैसैं तालवा होठ इत्यादि अंगनिकौं हलाएं भाषापर्याप्तिविषै ग्रहे पुद्गलस्कंध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो हैं। इहाँ ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदंडी बेड़ी है तहाँ एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तौ गमनादि होय सकै, दोऊनिविषैं एक बैठि रहै तौ गमनादि होय सकै नाहीं अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तौ दूसरेकौं भी घसीट ले जाय. तैसैं आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बंधान है तहाँ आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्गलविषै शक्ति पाइए है अर आत्माकी इच्छा न होय तौ हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इनि विषै पुद्गल बलवान होय हालै चालै तौ ताकी साथि बिना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसैं हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै हैं। ऐसैं ए कार्य निपजै हैं, तिनिकरि

मोहके अनुसारि आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतैं स्वमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है और कोई करनहारा नाहीं है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहाँ है ही नाहीं। बहुरि गोत्रकर्मकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजना हो है तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके निमित्ततैं तिन करि आत्मा सुखी दुखी भी हो है। ऐसैं अघाति कर्मनिका निमित्त तैं अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयकै अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य अपने अन्तरंगविषै विचारि देखि, ऐसैं ही है कि नाहीं। सो ऐसा विचार किए ऐसैं ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसै है तौ तू यह मान कि 'मेरै अनादि संसार रोग पाइए है ताके नाशका मोकौं उपाय करना,' इस विचारतैं तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार अवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥



तीसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनौं करो प्रकाश।
जो बहुविधि भवदुखनिकौ, करि है सत्तानाश ॥१॥

अब इस संसार अवस्थाविषै नानाप्रकार दुःख हैं तिनिका वर्णन करिए है—जातैं जो संसारविषैं भी सुख होय तौ संसारतैं मुक्त होने का उपाय काहेकौं करिए। इस संसारविषैं अनेक दुःख हैं, तिसहीतैं संसारतैं मुक्त होनेका उपाय कीजिए है। बहुरि जैसैं वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीकौं संसार रोगका निश्चय कराय पीछैं तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तैसैं यहाँ संसारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीकौं संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनिका उपाय करनेकी रुचि कराईए है। जैसैं रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानैं नाहीं, साँचा उपाय जानैं नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपकों भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूरि होय नाहीं। तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिनि दुःखनिकौं सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं। याकौं वैद्य दुःखका मूलकारण बतावै, दुःखका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं झूठे दिखावै तब सांचे उपाय करनेंकी रुचि होय। तैसैंही यह संसारी संसारतैं दुःखी होय रह्या है

परन्तु ताका मूल कारण जानैं नाहीं अर साँचा उपाय जानैं नाहीं अर दुख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपकौं भासै सो ही उपाय करै तातैं दुख दूरि होय नाहीं। तब तड़फि-तड़फि परवश हुवा तिनि दुःखनिकौं सहै है।

दुःखोंका मूल कारण

याकौं यहाँ दुःखका मूलकारण बताइए है, दुःखका स्वरूप बताइए है अर तिनि उपायनिकूं झूंठे दिखाइए तौ साँचे उपाय करनेकी रुचि होय तातैं यह वर्णन इहाँ करिये है। तहाँ सब दुःखनिका मूल-कारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असंयम है। जो दर्शनमोहके उदयतैं भया अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है नाकरि वस्तुस्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्या-दर्शनहीके निमित्ततैं क्षयोपक्षमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं भया कषायभाव ताका नाम असंयम है ताकरि जैसैं वस्तुका स्वरूप है तैसा नाहीं प्रवर्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसैं ये मिथ्यादर्शनादिक हैं तेई सब दुःखनिका मूलकारन हैं। कैसैं? सो दिखाइये है:—

मिथ्यात्वका प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाहीं होइ सकै है एक आप आत्मा अर अनंत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनिका संयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीकौं आपो मानै है। बहुरि

आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भए क्रोधादिकभाव तिनिरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृषादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो हैं। इन सबनिकौं अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारै हो है तातैं यहु मानै है, ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग हैं। इनिकरि मैं देखौं जानौं हौं ऐसी मानितातैं इन्द्रियनिविषैं प्रीति पाइए है।

मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतैं तिनि इन्द्रियनिकै द्वारा विषय ग्रहण करने की इच्छा हो है। बहुरि तिनिविषै इनिका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतैं निराकुल हो है तब आनन्द मानै है। जैसैं कूकरा हाड़ चाबै ताकरि अपना लोही निकसैं ताका स्वाद लेय ऐसैं मानैं,यहु हाड़निका स्वाद है। तैसैं यहु जीव विषयनिकौं जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तै ताका स्वाद लेय ऐसैं मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमैं तौ स्वाद है नाहीं। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या, परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा निःकेवलज्ञानका तौ अनुभव है नाहीं। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्शा,स्वाद जान्या तथा मौकौं यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसैं इस जीवकै मोहके निमित्ततैं विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तो त्रिकालवर्त्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वकौं स्पर्शों, सर्वकौं स्वादौं, सर्व को सूंघौं, सर्वकौं देखौं, सर्वकौं सुनौं, सर्वकौं जानौं सो इच्छा तौ इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिकै सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनिविषै काहूकौं किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतैं मनकरि किछू जानै सो भी वाह्य अनेक कारन मिलें सिद्धि होय। तातैं इच्छा कबहूँ पूर्ण होय नाहीं। ऐसी इच्छा तौ केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तौ इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातैं मोहके निमित्ततैं इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिवो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनको भी नाहीं गिनै है। जैसैं हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकै लाग्या माँस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तौ भी मरनकौं गिनै नाहीं, विषयनिका ग्रहण करै जातैं मरण होनेतैं इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इनि इन्द्रियनिकी पीड़ाकरि सर्व जीव पीड़ितरूप निर्विचार होय जैसैं कोऊ दुखी पर्वततैं गिरि पड़ै तैसैं विषयनिविषैं झंपापात ले हैं। नानाकष्टकरि धनकौं उपजावैं ताकौं विषयके अर्थि खोवैं। बहुरि विषयनिके अर्थि जहाँ मरन होता जानैं तहाँ भी जाँय, नरकादिकौं कारन जे हिंसादिक कार्य तिनिकौं करैं वा क्रोधादि कषायनिकौं उपजावैं सो कहा करै, इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातैं अन्य विचार किछू आवत

नाहीं। इस पीड़ाहीकरि पाड़ित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषैं अति आसक्त हो रहे हैं। जैसैं खाजि रोगकरि पीड़ित हुवा पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीड़ा न होय तो काहेकौं खुजावै, तैसैं इन्द्रिय रोगकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करैं हैं। पीड़ा न होय तौ काहेकौं विषय सेवन करैं? ऐसैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतैं भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिके निमित्ततैं इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब इस दुःख दूरि होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए है—इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तौ नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिकौं प्रबल करै है अर ऐसैं ही जानैं है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहाँ अनेक बाह्यकारण चाहिए हैं तिनिका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयकौं सन्मुख भए ग्रहैं तातैं अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछैं मन द्वारैं स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातैं तिनि विषयनिकौं अपने आधीन राखनेका उपाय करैं अर शीघ्र शीघ्र तिनिका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिकैं

तौ एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै तातैं आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयकौं छोड़ि औरकौं ग्रहै। बहुरि वाकौं छोड़ि औरकौं ग्रहै, ऐसै हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याकौं भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातैं प्रथम तो इन सबनिका ऐसैं ही होना अपने आधीन नाहीं, महा-कठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसारि ऐसैं ही विधि मिलै तौ इन्द्रियनिकौं प्रबल किए किछू विषयग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तौ ज्ञानदर्शन बधे+ बधै ‡। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूकै शरीर दुर्बल है ताकै अधिक देखिए है। तातैं भोजनादिककरि इन्द्रिय-पुष्ट किए किछू सिद्धि है नाहीं। कषायादि घटनेंतैं कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञाननर्शन बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनि-का संयोग मिलावै सो बहुतकालताईं रहता नाहीं अथवा सर्व विषयनि का संयोग मिलता ही नाहीं। तातैं यह आकुलता रहिवो ही करै। बहुरि तिनि विषयनिकौं अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तौ जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमै हैं वा कर्मोदयके आवीन हैं। सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछै उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करतैं भी कर्मका निमित्त बिना सामग्री मिलै नाहीं। बहुरि एक विषय कौं छोड़ि अन्यका ग्रहणकौं ऐसै हापटा मारै है, सो कहा सिद्ध हो है। जैसैं मणकी भूख वालेकौं कण मिल्या तौभूख कहा मिटै ? तैसैं सर्व

* उतावला, + बढ़नेपर, ‡ बढ़ै।

का ग्रहणकी जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसैं मिटै ? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातैं यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतैं केई जीव सुखी होते देखिए हैं, सर्वथा झूठ कैसैं कहो हौ ?

ताका समाधान—सुखी तौ न हो हैं, भ्रमतैं सुख मानै है। जो सुखी भया तौ अन्य विषयनिकी इच्छा कैसैं रहैगी। जैसैं रोग मिटे अन्य औषध काहेकौ चाहै तैसैं दुःख मिटे अन्य विषयकौं काहेकौं चाहै। तातैं विषयका ग्रहणकरि इच्छा थंभि जाय तौ हम सुख मानै। सो तौ यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तौ तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय ताका सग्रह भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तौ यह सुख मानना कैसैं है। जैसैं कोऊ महा क्षुधावान् रंक ताकौं एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसैं यह महातृष्णावान् याकौं एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतैं सुख है नाहीं।

कोऊ कहै जैसैं कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसैं एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तौ दोष कहा ?

ताका समाधान—जो कण भेले होंय तौ ऐसैं ही मानै। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कणका निर्गमन होय जाय तौ कैसैं भूख मिटै ? तैसैं ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाहीं तौ कैसैं इच्छा पूरन होय ? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटे

बिना सुख कैसें कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्यादर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातैं आगामी अनेक दुखका कारन कर्म बंधै है। जातैं यह वर्त्तमानविषैं सुख नाहीं,आगामी सुखका कारन नाहीं, तातैं दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है—

"सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव बद्धाधा* ॥१॥

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है,बंधका कारण है,विषम है,सो ऐसा सुख तैसा दुःखही है। ऐसैं इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तौ साँचा उपाय कहा?

दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तौ दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुख मिटै। सो इच्छा तौ मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भए होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसैं तौ मोहके निमित्ततैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहाँ कोऊ कहै, ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतैं जानना न भया ताकूं दुःखका कारण कहौ, क्षयोपशमकौं काहेकौं कहो?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारण होय तौ पुद्गलकै भी दुःख ठहरै। तातैं दुःखका मूलकारण तौ इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतैं हो है, तातैं क्षयोपशमकौं दुःखका कारण कह्या है, परमार्थतैं क्षयोपशम भी दुःखका कारन नाहीं। जो मोहतैं विषय-

* प्रवचनसार १-७६ में 'तहा' पाठ दिया है।

ग्रहणकी इच्छा है सोई दु:खका कारण जानना। बहुरिं मोहका उदय है सो दु:खरूप ही है। कैसें सो कहिए है—

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तौ दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसें याकै श्रद्धान है तैसें तौ पदार्थ है नाहीं, जैसें पदार्थ है तैसें यह मानै नाहीं, तातैं याकै आकुलता ही रहै। जैसें बाउलाकौं काहूनै वस्त्र पहराया, वहं बाउला तिस वस्त्रकों अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरकौं एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेकै आधीन है, सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खौंसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चरित्र करै। वह बाउला तिसकौं अपनें आधीन मानैं, वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न होय। तैसें इस जीवकौं कर्मोदयनै शरीर सम्बन्ध कराया। वह जीव तिस शरीरकौं अपना अंग जानि आपकौं अर शरीरकौं एक मानैं, सो शरीर कर्मके आधीन, कबहू कृष होय, कबहू स्थूल होय, कबहू नष्ट होय, कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसकौं आपके आधीन जानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसें जहाँ बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहींतैं आनि उतरैं, वह बाउला तिनकौं अपने जानैं, वे तौ उनहीकै आधीन, कोऊ आवैं, कोऊ जावैं, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमैं। यह बाउला तिनकौं अपने आधीन मानैं, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसें यह जीव जहाँ पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतैं आनि प्राप्त भए, यह जीव तिनिकौं अपने जानैं सो वे तौ उनहीकै आधीन, कोऊ आवैं, कोऊ जावैं, कोऊ अनेक अवस्थारूप

परिणमैं। यह जीव तिनकौं अपने आधीन मानै,उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहाँ कोऊ कहै,काहूकालविषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीवकै आधीन भी तौ क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान—शरीरादिककी, भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसें वह चाहै तैसें परिणमैं तातें काहू कालविषै वाहीका विचार होतें सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तौ सर्व प्रकार यह चाहै तैसें न परिणमैं। तातें अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहवो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसारि परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहंकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनिके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिंताकरि निरंतर व्याकुल रहै है। नानाप्रकार कष्ट सहकरि भी तिनिका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है,कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनौं मानै है, उपाय अन्यथा करै है, साँचा उपायकौं न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इनि सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइजाय तातें सब दुःखनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है। बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानकौं सत्यश्रद्धान मानै, उपाय काहेकौं करै। बहुरि संज्ञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्वनिश्चय करनेका उपाय विचारै तहाँ अभाग्यतें कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तौ अतत्त्वश्रद्धान पुष्ट होइ जाय। यह तौ जानै, इनतें मेरा भला होगा, वे ऐसा उपाय करैं जाकरि यह अचेत

होय जाय। वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषैं दृढ होइ जाय। तब विषयकषायकी वासना बधनेतें अधिक दुःखी होइ। बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहाँ तिनिका निश्चय उपदेशकौं तौ श्रद्धहै नाहीं, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्त्वश्रद्धानी ही रहै। तहाँ मंदकषाय वा विषय इच्छा घटै तौ थोरा दुखी होय, पीछै बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय। तातैं यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय। बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपकै जैसा श्रद्धान है तैसैं पदार्थनिकौं परिणमाया चाहै सो वै परिणमैं तौ याका साँचा श्रद्धान होइ जाय। परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है। कोऊ कोऊकै आधीन नाहीं। कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाहीं। तिनिकौं परिणमाया चाहै सो उपाय नाहीं। यह तौ मिथ्यादर्शन ही है। तौ साँचा उपाय कहा है? जैसैं पदार्थनिका स्वरूप है तैसैं श्रद्धान होइ तौ सर्व दुःख दूरि होइ जाय। जैसैं कोऊ मोहित होय मुरदाकौं जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दुःखी हौ है। बहुरि वाकौं मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवैगा नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूरि होनेका उपाय है। तैसैं मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिकौं अन्यथा मानैं, अन्यथा परिणमाया चाहै तौ आप ही दुखी हो है। बहुरि उनकौं यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैंगे नाहीं ऐसा मानना सोही तिस दुःखके दूरि होनेका उपाय है। भ्रमजनित दुःखका उपाय भ्रम दूरि करना ही है। सो भ्रम दूरि होनेतैं सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना।

चारित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नौ-कषायरूप जीवके भाव हो हैं। तब यह जीव क्लेशवान् होय दुःखी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषैं प्रवर्तैं है। सोई दिखाइए है— जब याकै क्रोध कषाय उपजै, तब अन्यका बुरा करनेकी इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनि-करि बुरा होता जानै तौ औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तौ अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तौ भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होतैं कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनकौं भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तौ अपने अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादिकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होतैं हो है। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिकौं नीचा वा आपकौं ऊँचा दिखा-वनेकी इच्छा होइ। बेहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताकौं विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चै। मूए पीछैं हमारा जस रहैगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकैं भी

अपनी महिमा बधावै। जो अपना सन्मानादि न करै ताकों भय आदिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सन्मान करावै। बहुरि मान होतैं कोई पूज्य बड़े होहिं तिनका भी सन्मान न करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीसैं तौ अपने अंतरंगविषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होतैं होय हैं। बहुरि जब याकै माया-कषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नानाप्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीरकी अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिकौं अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन-विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै। बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होइ, मरनादिक होइ तिनिकौं भी न गिनै। बहुरि माया होतैं कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनैं तौ उनस्यौं भी छल करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि छलकरि कार्यसिद्धि न होइ तौ आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै, वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होतैं हो है। बहुरि जब याकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदाथका लाभकी इच्छा होय ताकै अर्थि अनेक उपाय विचारै। ताके साधनरूप वचन बोलै। शरीरकी अनेक चेष्टा करै। बहुत कष्ट सहै, सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जानै सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होतैं पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहाँ भी अपना प्रयोजन साधै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि जिस इष्टवस्तु की प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करै है। बहुरि इष्ट वस्तुकी

प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तौ आप बहुत सन्तापवान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था लोभ होतैं हो है। ऐसैं कषायनिकरि पीड़ित हुवा इन अवस्थानिविषैं प्रवर्तै है।

बहुरि इनि कषायनिकी साथि नोकषाय हो हैं। जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना, नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हंसने लगि जाय है। ऐसैं ही यह जीव अनेक पीड़ा-सहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावताकार्य मानि हर्ष मानैं है। परमार्थतैं दुखी ही है। सुखी तो कषायरोग मिटैं होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अतिआसक्त हो है। जैसैं बिल्ली मूंसाकौं पकरि आसक्त हो है, कोऊ मारै तौ भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातैं दुःखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका संयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका संयोग भया सो आपकूं सुहावता नाहीं। सो यह पीड़ा सही न जाय तातैं ताका वियोग करनेकों तड़फड़ै है सो यह दुःख ही है। बहुरि जब शोक उपजै है तव इष्टका वियोग वा अनिष्टका संयोग होतैं अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय, अपना अंग-घात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाहीं तौ भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसंयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकानै प्राप्त होय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही

है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुकौं घृणा करै । ताका तौ संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होइ कैं वाकूं दूरि किया चाहै, महादुःखकौं पावै है । बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यौं रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है। आताप उपजै है। निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसकौं न गिनै है। परम्परा दुख होइ वा दंडादिक होय ताकौं न गिनै है। काम पीड़ातैं बाउला हो है । मरि जाय है। सो रसग्रंथनिविषैं कामकी दश दशा कही हैं । तहाँ बाउला होना, मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमें ज्वरके भेदनिविषैं कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिए है। कामांधक किछू विचार रहता नाहीं । पिता, पुत्री वा मनुष्य तिर्यंचणी इत्यादितैं रमने लगि जाय है । ऐसी कामकी पीड़ा महा-दुःखरूप है । या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहाँ ऐसा विचार आवै है जो इनि अवस्थानिविषै न प्रवर्तै तौ क्रोधा-दिक पीड़ैं अर अवस्थानिविषै प्रवर्तै तौ मरण पर्यंत कष्ट होइ । तहाँ मरण पर्यंत कष्ट तौ कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है । तातैं यह निश्चय भया जो मरणादिकतैं भी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलैं तौ उनके आश्रय कषाय करै। न मिलैं तौ आप कारण बनावै। जैसैं व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तौ जूआ खेलना वा अन्य

क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनावै है । बहुरि काम क्रोधादि पीड़ैं शरीरविषै तिनिरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ तौ औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै । बहुरि कोई कारण बनै नाहीं तौ अपने उपयोग विषै कषायनिकौं कारणभूत पदार्थनिका चिंतवनिकरि आप ही कषायरूप परिणमैं। ऐसैं यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुवा महान् दुःखी हो है। बहुरि जिस प्रयोजनकौं लिये कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुख दूरि होय अर मोकूं सुख होय, ऐसैं विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनैकै अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होनेका उपाय मानै है । सो इहाँ कषायभावनितैं जो दुःख हो है सो तो साँचा ही है । प्रत्यक्ष आप ही दुखी हो है । बहुरि यह उपाय करै है सो झूंठा है। काहेतैं सो कहिए है—क्रोधविषै तौ अन्यका बुरा करना, मानविषैं औरनिकूं नीचा करि आप ऊँचा होना, मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारण बन्या रहना,रतिविषै इष्टसंयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूरि होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारण दूरि होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यों रमना, नपुंसकवेदविषै दोऊनिस्यों रमना, ऐसैं प्रयोजन पाइए है। सो इनिकी सिद्धि होय तौ कषाय उपशमनेतैं दुःख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनिकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है । जातैं अनेक उपाय करतें देखिये है अर सिद्धि न

हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं,भवितव्यके आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्यकी सिद्धि भी होय जाय, तौ तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाहीं। यावत् कार्यसिद्ध न भया तावत् तौ तिस कार्यसम्बन्धी कषाय थी। जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्बन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्रभी निराकुल रहै नाहीं। जैसैं कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्यस्यौं क्रोधकरि वाका बुरा चाहनैं लाग्या, अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसैं ही मानमायालोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होइ चुक्या तब अन्य विषैं मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्यकी सिद्धि करनेका अभिलाषी भया। कषायनिविषं कार्यका प्रमाण होइ ती तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषैं कह्या है—

"आशागर्तः प्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है। अनंता-

नंत जीव हैं तिनि सबनिकै ही आशा पाइए है । बहुरि वह आशा-रूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़े विषै समस्तलोक अणुसमान है। अर लोक एक ही, सो अब इहाँ कौन कौनकै कितना कितना बट-वारै‡ आवै। तुम्हारै यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है। इच्छा पूर्ण तौ होती ही नाहीं। तातैं कोई कार्यसिद्ध भए भी दुःख दूरि न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय। जैसे काहूकौं मारनेवाले बहुत होंय, जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जाय। तैसें जीवकों दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाय। ऐसें कषायका सद्भाव रह्या ही करै। कोई एक समय भी कषाय रहित होय नाहीं। तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसें होइ ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्व-कषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ। सो तो कदाचित होइ सकै नाहीं। तातैं अभिप्रायविषै शाश्वत दुःखी ही रहै है। तातैं कषायनिका प्रयोजनकौं साधि दुःख दूरि करि सुखी भया चाहै है, सो यह उपाय झूंठा ही है तौ सांचा उपाय कहा है ? सम्यग्-दर्शनज्ञानतैं यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ, तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै। बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होइ। ऐसैं होते कषायनिका अभाव होइ, तब तिनिकी पीड़ा दूरि होय तब प्रयो-जन भी किछू रहै नाहीं। निराकुल होनेतैं महासुखी होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय है। बहुरि अन्त-

‡ बांटमें—हिस्सेमें।

रायका उदयतैं जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्तिका उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाहीं । तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही । याका उपाय यह करै है, जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनिके दूरि करनेका उद्यम करै सो यह झूंठा उपाय है। उपाय किये भी अन्तरायका उदय होतैं विघ्न होता देखिए है । अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्यविषै विघ्न न हो है। तातैं विघ्न का मूलकारण अंतराय है। बहुरि जैसैं कूकराकै पुरुषकरि बाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यौं वृथा ही द्वेष करै है। तैसैं जीवकै अंतरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया, यह जीव तिनि बाह्य द्रव्यनिस्यौं वृथा खेद करै है । अन्य द्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ । बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातैं जानिए है,अन्य द्रव्यका किछू वश नाहीं, जिनका वश नाहीं तिनिस्यौं काहेकौं लरिये । तातैं यह उपाय झूंठा है। सौ सांचा उपाय कहा है ? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूरि होय। अर सम्यग्दर्शनादिकही करि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तौ मिटि जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दुःख दूरि होइ निराकुल सुख उपजै । तातैं सम्यग्दर्शना-दिक ही सांचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतैं दुःख सुखके कारण का संयोग हो है। तहां केई तौ शरीर विषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीरकी अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य संयोग हो हैं । केई बाह्य ही वस्तूनिका संयोग हो है । तहाँ असाताके उदयकरि शरीरविषै तो क्षुधा, तृषा, उछ्वास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी अनिष्ट

अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका संयोग हो है। सो मोहकरि इनिविषै अनिष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनि में महाव्याकुल होइ इनिकौं दूरि किया चाहै। यावत् ए दूरि न होंय तावत् दुःखी हो है सो इनिकौं होतें तौ सर्व ही दुःख मानै हैं। बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनौ बलवानपनौ इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका संयोग हो है सो मोहकरि इनिविषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमें चैन मानै। इनिकी रक्षा चाहै। यावत् रहै तावत् सुख मानै। सो यहु सुख मानना ऐसा है जैसें कोऊ घनें रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताकै कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशाँतता भई तब वह पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौं सुखी कहै, परमार्थतें सुख है नाहीं। तैसें यहु जीव घनें दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होइ रह्या था ताकैं कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखकी कितेककाल किछू उपशांतता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौं सुखी कहै है, परमार्थतें सुख है नाहीं। बहुरि याकौं असाताका उदय होतें जो होय ताकरि तौ दुःख भासै है तातें ताके दूरि करनेका उपाय करै है। अर साताका उदय होतें जो होय ताकरि सुख भासै है तातें ताकौं होनेका उपाय करै है।

सो यहु उपाय झूठा है । प्रथम तौ याका उपाय याकै आधीन नाहीं। वेदनीयकर्मका उदयकै आधीन है । असाताके मेटनेकै अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थि तौ सर्वहीकै यत्न रहै है परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके वहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय,तातैं जानिए है याका उपाय याकैं आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तौ थोरै काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतैं तिनिकौं भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुकौं भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् तौ वाकी इच्छाकरि आकुलित होइ। अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यकौं भोगनेंकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसैं काहूकौं स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी वाका आस्वाद जिस समय भया तिस ही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुकौं पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ। जैसैं स्त्रीको देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसैं भोग भोगतैं भी तिनिके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है तौ तिनिकौं छोरि अन्य उपाय करनकौं लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखौ एक धनका उपाय करनेमैं व्यापारादिक करतैं बहुरि वाकी रक्षा करनेमैं सावधानी करतैं केती आकुलता हो है । बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका

उदय आया ही करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सौ काहेका सुख है। यह तौ रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहैं तावत् तिनिकौं मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होइ, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी आकुलता होइ बहुरि क्षुधादिक होइ तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसें याकै उपाय करतें कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै, तातें दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसें भी रहना तौ होता नाहीं, आपकौं उपाय करतैं करतैं ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछू उपाय बनि सकै नाहीं। अर ताकी पीड़ा बहुत होय,सही जाय नाहीं। तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसारमें साताका उदय तौ कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाईए है, घनें जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातें उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतें सुख दुःख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होतें मोहका निमित्ततें हो है। सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकें सहस्र धनका व्यय भया तब वह दुःखी हो है। अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है। बाह्यसामग्री तौ वाकै यातें निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तौ यहु सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिलें कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसें काहूकौं मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूकौं सुखकारी होइ। बहुरि शरीरविषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टका वियोग,अनिष्टका संयोग भए काहूकै बहुत दुःख होइ,काहूकै थोरा होइ,

काहूकै न होइ। तातैं सामग्रीकै आधीन सुख दुःख नाहीं। साताअसाता का उदय होतें मोहपरिणामनके निमित्ततैं ही सुख दुःख मानिए है।

इहाँ प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी तौ तुम कहौ हो तैसें ही है, परन्तु शरीरविषै तौ पीड़ा भए दुःखी होइ ही होइ अर पीड़ा न भए सुखी होई सो यह तौ शरीरअवस्था ही कै आधीन सुख दुःख भासै है।

ताका समाधान—आत्माका तौ ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अंग है। सो यामैं जो अवस्था वीतै ताका जाननैरूप ज्ञान परिणमैं ताकी साथि ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दुःख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्रधनादिकस्यौं अधिक मोह होइ तौ अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दुःख मानै, उनकौं दुःख भए वा संयोग मिटैं बहुत दुःख मानै। अर मुनि हैं सो शरीरकौं पीड़ा होतैं भी किछू दुःख मानते नाहीं। तातैं सुख दुःख मानना तौ मोहहीकै आधीन है। मोहकै अर वेदनीयकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, तातैं साता असाताका उदयतैं सुख दुःखका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतैं हो है, केतीक असाताके उदयतैं हो है तातैं सामग्रीनिकरि सुखदुःख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतैं सुख दुःखका मानना हो है औरनिकरि सुख दुःख होनेका नियम नाहीं। केवलीकै साता असाताका उदय भी है अर सुख दुखकौं कारण सामग्रीका संयोग भी है। परन्तु मोहका अभावतैं किंचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं। तातैं सुख दुःख मोहजनित ही मानना। तातैं तूं सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दुःख मेट्या चाहै, सुखी भया चाहै। सो यह उपाय झूठा है, तो साँचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतैं भ्रम दूरि होई तब सामग्रीतैं सुख दुःख भासै नाहीं, अपने परिणामहीतैं भासै। बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसैं सामग्रीके निमित्ततैं सुखी दुःखी न होइ तैसैं साधन करै। सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतैं मोह मंद होइ जाइ तब ऐसी दशा होइ जाइ जो अनेक कारण मिलौ आपकों सुख दुःख होई नाहीं। जब एक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचा सुखकौं अनुभवै तब सर्व दुःख मिटे सुखी होइ, यहु साँचा उपाय है। बहुरि आयुकर्मके निमित्ततैं पर्यायका धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन है। बहुरि यहु जीव मिथ्यादर्शनादिकतैं पर्यायहीकौं आपो अनुभवै है। तातैं जीवितव्य रहै अपना अस्तित्व मानै है। मरन भये अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतैं सदाकाल याके मरनका भय रहै है। तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है। जिनकौं मरनका कारन जानै तिनिस्यौं बहुत डरै। कदाचित् उनका संयोग बनै तौ महाविह्वल होइ जाय। ऐसैं महा दुःखी रहै है। ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारननिकौं दूर राखै है वा उनस्यौं आप भागै है। बहुरि औषधादिकका साधन करै है, गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातैं आयु पूर्ण भए तौ अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तौ भी मरन होइ ही होइ। एक समयमात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारन मिलौ, सर्वथा मरन न होइ। तातैं उपाय किए मरन मिटता नाहीं। बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातैं मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तौ सांचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतैं पर्यायविषै अहंबुद्धि छूटै, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्यायकौं स्वांग समान जानै तब मरणका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतैं सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतैं गति जाति शरीरादिक निपजै हैं तिनि-विषैं पुण्यके उदयतैं जे हो हैं ते तो सुखके कारण हो हैं। पापके उदयतैं हो हैं ते दुःखके कारण हो हैं। सो इहाँ सुख मानना भ्रम है। बहुरि यहु दुःखके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै सो झूठा है। साँचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसें वेदनीयका कथन करतैं निरूपण किया तैसें इहाँ भी जानना। वेदनीय अर नामकै सुख दुःखका कारणपनाकी समानतातैं निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतैं नीच ऊँच कुलविषै उपजै है। तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजै आपकौं ऊँचा मानैं है अर नीचा कुलविषै उपजै आपकौं नीचा मानै है सो कुल पलटनेका उपाय तौ याकौं भासै नाहीं तातैं जैसा कुल पाया तिस ही कुलविषैं आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपकौं ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तौ वह नीचा होइ जाय। अर नीचा कुलविषैं कोई श्लाघ्य कार्य करै तौ वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतैं नीच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै? पर्याय छूटें कुलकी पलटनि होइ जाय। तातैं ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा नीचा मानें। ऊँचाकुल वालेकौं नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेकौं पाए हुए नीचापनै का दुःख ही है। तो याका साँचा उपाय कहा है? सो कहिए है,सम्यग्दर्शं-

नादिकतैं ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानैं । बहुरि तिनिहीतैं जाकी बहुरि पलटनि न होइ ऐसा सर्वतैं ऊँचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःख मिटै,सुखी होइ (तातैं सम्यग्दर्शनादिक दुःख मेटने अरु सुख करने का सांचा उपाय है)* या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततैं संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है ताका वर्णन किया।

अब इसही दुःखकौं पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है ।

एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख

इस संसारविषैं बहुत काल तौ एकेन्द्रिय पर्यायही विषैं बीतै है। तातैं अनादिहीतैं तौ नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहाँतैं निकसना ऐसैं जैसैं भारभूनतैं चणाका उछटि जाना सो तहांतैं निकसि अन्य पर्याय धरै तौ त्रसविषैं तो बहुत थोरे ही काल रहै। एकेंद्रीहीविषैं बहुत काल व्यतीत करैं है। तहाँ इतरनिगोदविषैं बहुत रहना होइ । अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषैं रहना होय । नित्य निगोदतैं निकसे पीछें त्रसविषै तौ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है। अर एकेन्द्रियविषैं उत्कृष्ट रहनेका काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनंतवाँ भागविषैं भी अनंते सागर हो हैं। तातैं इस संसारीकै मुख्यपनैं एकेन्द्रिय पर्यायविषैंही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तौ किंचिन्मात्र ही रहै है । एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततैं भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततैं भया श्रुतज्ञान, अर स्पर्शनइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिककों किंचित् जानै देखै है।

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है ।

ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है। अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महादुःखी हैं। बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीकों आपो श्रद्धै है। अन्यविचार करनेकी शक्ति ही नाहीं। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमैं हैं जातैं उनकै केवली भगवान्ने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्या ही कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होतैं ही हो हैं, सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दुःखी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाहीं।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तौ किंचिन्मात्र ही रह्या है, वै कहा कषाय करैं?

ताका समाधान—जो ऐसा तौ नियम है नाहीं जेता ज्ञान होइ तेता ही कषाय होय। ज्ञान तौ क्षयोपशम जेता होय तेता हो है। सो जैसैं कोऊ आँधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होतैं भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसैं एकेन्द्रियकै ज्ञान थोरा होतैं भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायकै अनुसारि किछू उपाय करै। सो वै शक्तिहीन हैं तातें उपाय करि सकतें नाहीं। तातैं उनकी कषाय प्रगट नाहीं हो है। जैसैं कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताकै कोई कारणतैं तीव्र कषाय होइ, परन्तु किछू करि सकते नाहीं। तात वाका कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है, यूं ही अति दुःखी होइ। तैसैं एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनिकैं कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाहीं, तातैं उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है, वै आप ही दुःखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहाँ घना दुःख हो है बहुरि जैसैं कषायघटती जाय, शक्ति बधती

जाय तैसें दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिकै कषाय बहुत अर शक्ति-हीन तातैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं। उनके दुःख वै ही भोगवै हैं अर केवली जानै हैं। जैसै सन्निपातीका ज्ञान घटि जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनैतैं अपनादुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है,तैसें एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातैं अपना दुखकौं प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाहीं। तातैं भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघा-तिकर्मनिविषैं विशेषपनै पापप्रकृतिका उदय है तहाँ असातावेदनीयका उदय होतैं तिसके निमित्ततैं महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनतैं टूटै है, शीत उष्णकरि सूकि जाय है, जल न मिलै सूकि जाय है, अगनिकरि बलै है, ताकौं कोऊ छेदै है,भेदै है,मसलै है,खाय है, तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसैं ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषैं अवस्था हो है। तिनि अवस्थाकौं होतैं वे महादुःखी हो हैं। जैसें मनुष्यकै शरीर विषैं ऐसी अवस्था भए दुःख हो है तैसैं ही उनकै हो है। जातैं इनिका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतैं हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही,ताकरि उन कौं जानि मोहके वशतैं महाव्याकुल हो हैं परन्तु भागनैकी वा लरनैकी वा पुकारनैकी शक्ति नाहीं तातैं अज्ञानी लोक उनके दुखकौं जानते नाहीं। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होइ सो वह बलवान् होता नाहीं। बहुरि आयुकर्मतैं इनि एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त हैं तिनिकै तौ पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवें भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयुकर्म थोरा तातैं जन्ममरण हूवाही करै,ताकरि दुःखी हैं। बहुरि नामकर्मविषै तिर्यंच-

गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपनै पाइए है। कोई हीनपुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाहीं तातैं तिनिकरि भी मोहके वशतैं दुःखी हो है । बहुरि गोत्रकर्मविषैं नीचगोत्रहीका उदय है तातैं महंतता होय नाहीं तातैं भी दुःखी ही हैं । ऐसैं एकेन्द्रिय जीव महा-दुःखी हैं अर इस संसारविषै जैसै पाषाण आधारविषैं तौ बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषैं तौ कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसैं जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषैं बहुतकाल रहै हैं,अन्यपर्यायविषैं तौ कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातैं यहु जीव संसारविषै महादुःखी है।

दो इन्द्रियादिक जीवोंके दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असंज्ञीपंचेन्द्रिय पर्यायनिकौं जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दुःख जानना । विशेष इतना—इहाँ क्रमतैं एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछू शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीनशक्तिके धारक हैं, छोटे जीव हैं, तिनिकी शक्ति प्रगट होती नाहीं । बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बड़े जीव हैं, तिनिकी शक्ति प्रगट हो है। तातैं ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं, दुःख दूरि होनेका उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना, मारना,लरना, छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। दुःखकरि तड़फड़ाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करै हैं। तातैं तिनिका दुःख किछू प्रगट भी हो है । सो लट कीड़ी आदि जीवनिके शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतैं वा भूख तृषा आदितैं परम दुःख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लैना। इहाँ विशेष

कहा लिखैं। ऐसैं द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी ही जानने।

नरकगतिके दुःख

बहुरि संज्ञीपंचेन्द्रियनिविषैं नारकी जीव हैं ते तौ सर्व प्रकार घने दुःखी हैं। ज्ञानादिकी शक्ति किछू है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत। अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलैं तातैं तिस शक्तिके होने करि भी घने दुःखी हैं। बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है। जातैं उनकै कृष्णादि अशुभलेश्या ही हैं। तहाँ क्रोध मानकरि परस्पर दुःख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करैं तौ यह दुःख मिटि जाय। अर अन्यकौं दुख दिए किछू उनका कार्य भी होता नाहीं, परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दुाख देनैंहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यकौं दुःखदायक शरीर केअंग बनावै वा शस्त्रादि बनावै तिनि करि अन्यकौं आप पीड़ै अर आपको कोई और पीड़ै। कदाचित् कषाय उपशांत होय नाहीं। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाहीं। तातैं तिनि कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाहीं तिनिकार अंतरंगविषै महादुःखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनिका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय हैं। परन्तु बाह्यनिमित्त नाहीं तातैं प्रगट होते नाहीं, कदाचित् किंचित् किसी कारणतैं हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्यकारण बनि रहे हैं, तातैं ए कषाय तीव्र प्रगट होइ हैं। बहुरि वेदनिविषैं नपुंसक वेद है सो इच्छा तौ बहुत और स्त्री पुरुषस्यौं रमनेका निमित्त नाहीं, तातैं महापीड़ित हैं। ऐसैं कषायनिकरि अति दुःखी हैं। बहुरि वेदनीयविषै

असाताहीका उदय है ताकरि तहाँ अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ़ कास श्वासादि अनेक रोग युगपत् पाइएहैं अर क्षुधा तृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहाँकी माटीहीका भोजन मिलै है,सो माटी भी ऐसी है जो इहाँ आवै तो ताका दुर्गन्धतैं केई कोस-निके मनुष्य मरि जाएँ। अर शीत उष्ण तहाँ ऐसा है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ सो भी तिनिकरि भस्म होइ जाय। कहीं शीत है,कहीं उष्ण है। बहुरि तहाँ पृथिवी शस्त्रनितैं भी महातीक्ष्ण कंटकनि करि सहित है। बहुरि तिस पृथिवीविषै वन हैं सो शस्त्रकी धारा समान पत्रादि सहित हैं। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खंड खंड होइ जाय ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचंड है जाकरि शरीर दग्ध हुआ जाय है। बहुरि नारकी नारकीकौं अनेक प्रकार पीड़ैं,घाणीमें पेलैं,खंड खंड करैं, हाँडीमें राँधैं, कोरडा मारैं, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावैं इत्यादि वेदना उपजावैं। तीसरी पृथिवी पर्यंत असुरकुमारदेव जांय ते आप पीड़ा दें वा परस्पर लड़ावैं। ऐसी वेदना होतैं भी शरीर छूटै नाहीं, पारावत् खंड खंड होईजाइ तौ भी मिलि जाय, ऐसी महा पीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तौ किछू है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी मानितैं कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाहीं। बहुरि आयु तहाँ बहुत, जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुःख तहाँ सहनै होंय। बहुरि नामकर्मकी सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाहीं,तिनि करि महादुःखी हैं। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महंतता न होइ तातैं दुःखी ही हैं। ऐसैं नरकगतिविषैं महादुःख जाननें।

तिर्यंचगतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनिका तौ उश्वासकै अठारहवें भाग मात्र आयु है। बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं सो इनिकी शक्ति प्रगट भासै नाहीं। तिनिकै दुःख एकेन्द्रियवत् जानना। ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन हैं, केई गर्भज हैं। तिनिविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनकी इच्छाकरि आकुलित हैं। बहुतकौं तौ इष्टविषयकी प्राप्ति नाहीं है। काहूकौं कदाचित् किंचित् हो है। बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्व भावकरि अतत्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपनै तीव्र ही पाइए है। क्रोधमानकरि परस्पर लरै हैं, भक्षण करै हैं, दुःख देइ हैं, माया लोभकरि छल करै हैं, वस्तुकौं चाहै हैं, हास्यादिककरि तिनिकषायनिका कार्यनिविषैं न प्रवर्तैं हैं। बहुरि काहूकै कदाचित् मंदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकैं हो है तातें मुख्यता नाहीं। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीड़ा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुतभारवहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातैं बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकैं ही है, मुख्यता नाहीं। बहुरि आयु अन्तर्मुहूर्त्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहाँ घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं। तातैं जन्म मरनका दुःख पावै हैं। बहुरि भोगभूमियोंकी बड़ी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मकी मुख्यपनै तौ तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिका ही

उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्यप्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि गोत्रविषै नीच गोत्रहीका उदय है तातैं हीन होइ रहे हैं। ऐसें तिर्यंचगतिविषैं महा-दुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तौ लब्धि अपर्याप्त हैं ते सम्मूर्छन ही हैं, तिनिकी तौ आयु उश्वासके अठारवें भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भमैं आय थोरे ही कालमैं मरन पावै हैं, तिनकी तौ शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनकै दुःख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमैं रहना पीछें बाह्य निकसना हो है। सो तिनिका दुःखका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वें वर्णन किया है तैसें जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसें जानना। विशेष यहु है, इहाँ कोइ शक्तिविशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि घन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसें विष्टाविषैं लट उपजै तैसें गर्भमें शुक्र शोणितका बिन्दुकौं अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछें तहाँ क्रमतैं ज्ञानादिककी वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। सकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहाँ काल पूरण करे। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामें महा दुःख हो है। कोऊ कहै बाल्यावस्थामें दुःख थोरा है, सो नाहीं है। शक्ति

थोरी है तातैं व्यक्त न होय सकै है। पीछैं व्यापारादि वा विषय-इच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछैं वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाइ तब परमदुःखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए हैं। हम बहुत कहा कहैं। प्रत्यक्ष जाकौं न भासै सो कह्या कैसें सुनैं। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए बिना होय नाहीं। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं। एक मनुष्य पर्यायविषैं कोई अपना भला होनेका उपाय करै तौ होय सकै है। जैसें काना साँठा * की जड़ वा बांड़ † तौ चूंसने योग्य नाहीं। अर बीचिकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाहीं। कोई स्वादका लोभी वाकूं बिगारै तो बिगारो। अर जो वाकौं बोइ दे तो वाके बहुत सांठे होंइ, तिनिका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसें मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तौ सुख भोगने योग्य नाहीं। अर बीचिकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहाँ सुख होइ सकै नाहीं। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तौ बिगारो। अर जो याकौं धर्मसाधनविषैं लगावै तौ बहुत ऊँचे पदकौं पावै। तहाँ सुख बहुत निराकुल पाइए। तातैं इहाँ अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषैं ज्ञानादिककी शक्ति किछू औरनितैं विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि तिनिकै कषाय किछू

* गन्ना। † गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मंद है। तहाँ भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्कनिकैं कषाय बहुत मन्द नाहीं अर उपयोग तिनिका चंचल बहुत अर किछू शक्ति भी है सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तें हैं। कोतूहल विषयादि कार्यनिविषैं लगि रहे हैं। सो तिस आकुलताकरि दुःखीही हैं। बहुरि वैमानिकनिकै ऊपरि ऊपरि विशेष मंदकषाय है अर शक्ति विशेष है तातैं आकुलता घटनेतैं दुःख भी घटता है। इहाँ देवनिकै क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है। तातैं तिनिके कार्यकी गौणता है। काहूका बुरा करना वा काहू कौं हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तौ कोतूहलादिकरि होइ है। अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है,मुख्यता नाहीं। बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए हैं तातैं तिनिके कार्यकी मुख्यता है। तातैं छल करना विषयसामग्रीकी चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है। सो भी ऊँचे ऊँचे देवनिकै घाटि‡ है। बहुरि हास्य रति कषायके कारन घनें पाइए हैं तातैं इनिके कार्यनिकी मुख्यता है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनिके कारण थोरे हैं तातैं तिनिके कार्यनिकी गौणता है। बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै हैं। ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द हैं। अहमिंद्रनिके वेदनिकी मंदताकरि कामसेवनका अभाव है। ऐसैं देवनिकै कषायभाव हैं सो कषायहीतैं दुःख है। अर इनिकै कषाय जेता थोरा है तितना दुःख भी थोरा है तातैं औरनिकी अपेक्षा इनिकौं सुखी कहिए है। परमार्थतैं कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही हैं। बहुरि वेदनीयविषैं साताका उदय बहुत है। तहाँ भवनत्रिककै थोरा है। वैमानिकनिकै

‡ कम है।

ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्था स्त्रीमंदिरादि सामग्री-का संयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारणकरि हो है। तहाँ निकृष्टदेवनिकै किछू प्रगट भी है। अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होता नाहीं। सो इतना काल विषय सुखमें मगन रहै हैं। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है तातें सुखका कारण है। अर गोत्र विषैं उच्च गोत्रहीका उदय है तातैं महंतपदकौं प्राप्त हैं। ऐसें इनिकै पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है। तातें तिनिके भोगनेविषै आसक्त होइ रहे हैं परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातें सुखी होते नाहीं। ऊँचे देवनिकै उत्कृष्ट पुण्यका उदय है, कषाय बहुत मंद है तथापि तिनिकै भी इच्छाका अभाव होता नाहीं, तातैं परमार्थतें दुःखी ही हैं। ऐसें सर्वत्र संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है। ऐसें पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होतें हो है। सोई संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तौ इच्छा विषयग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसें वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तकौं जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहाँ अन्य किछू पीड़ा नाहीं परन्तु यावत् देखै जानै नाहीं तावत् महाव्याकुल होइ। इस इच्छाका

नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य न होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतैं शरीरविषैं या बाह्य अनिष्ट कारण मिलैं तब उनके दूरि करनेकी हो है। जैसै रोग पीड़ा क्षुधा आदिका संयोग भए उनके दूर करनेकी इच्छा हो है सो इहां यहु ही पीड़ा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसें इन तीन प्रकारकी इच्छा होतैं सर्व ही दुःख मानै हैं सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततैं बनै है सो इन तीन प्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा ही है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक एक प्रकारकी इच्छा अनेक प्रकार है। तहाँ केई प्रकारकी इच्छा पूरण करनेका कारण पुण्यउदयतैं मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइ सकै नाहीं। तातैं एककौं छोरि अन्यकौं लागै, आगै भी वाकौं छोरि अन्यकौं लागै। जैसें काहूकैं अनेक सामग्री मिली है, वह काहूकौं देखै है, वाकौं छोरि राग सुनै है, वाकौं छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय, वाकौं छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषैं ही एककौं देखि अन्यकौं देखै है। ऐसें ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषैं इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याकौं जगत सुख मानै है सो सुख है नाहीं, दुःख ही है। काहेतैं — प्रथम तौ सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकैं भी न बनैं। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनैं तौ युगपत् तिनि

का साधन न होइ। सो एकका साधन यावत् न होइ तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होइ। एक समय भी निराकुल न रहै, तातैं दुःख ही है। अथवा तीन प्रकारकी इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दुःख घाटि हो है, सर्व दुःखका तौ नाश न होइ तातैं दुःख ही है। ऐसें संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दुःख ही है।

बहुरि यहाँ इतना जानना— तीनप्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीड़ित है अर चौथी इच्छा तौ पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बन्ध धर्मानुरागतैं होइ सो धर्मानुराग विषैं जीव थोरा लागै। जीव तौ बहुत पाप क्रियानिविषैं ही प्रवर्तैं है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकं कदाचित् कालविषैंही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तौ चौथी इच्छावालाकै किछू तीन प्रकार इच्छाके घटनेतैं सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतैं भी दुःखी हो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तौ वह बहुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान् है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है वाकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है, तो वह थोड़ा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकं उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तौ वह जीव घना आकुलतावान् है। तातैं सुखी दुःखी होना इच्छाके अनुसार जानना, बाह्य कारणकै आधीन नाहीं है। नारकी दुःखी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए

है । तातैं नारकीनिकै तीव्रकषायतैं इच्छा बहुत है । देवनिकै मन्द कषायतैं इच्छा थोरी है । बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुःखी इच्छा हीकी अपेक्षा जाननें । तीव्र कषायतैं जाकै इच्छा बहुत ताकौं दुःखी कहिए है । मंद कषायतैं जाकै इच्छा थोरी ताकौं सुखी कहिए है । परमार्थतैं घना वा थोरा दुःख ही है, सुख नाहीं है, देवादिककौं भी सुखी मानिये है सो भ्रम ही है । उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातैं आकुलित हैं । या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयमतैं हो है । बहुरि इच्छा है सो आकुलतामय है अर आकुलता है सो दुःख है ऐसैं सर्व जीव संसारी नानाप्रकारके दुःखनिकरि पीड़ित ही होइ रहे हैं ।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिकौं दुखतैं छूटना होय सो इच्छा दूरि करनेका उपाय करो । बहुरि इच्छा दूरि तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय । तातैं इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है । ऐसा साधन करतैं जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेता ही दुःख दूरि होता जाय बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतैं सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, साँचा सुख प्रगटै । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका अभाव होइ तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञान दर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होइ । अनंतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होइ । बहुरि केतेक काल पीछैं अघाति कर्मनिका भी अभाव होइ, तब इच्छाके बाह्य कारण तिनि-का भी अभाव होइ । मोह गए पीछैं एक समय मात्र भी किछू इच्छा उपजावनेकौं समर्थ थे नाही, मोह होतैं कारण थे तातैं कारण कहे

हैं सो इनिका भी अभाव भया तब सिद्धपदकौं प्राप्त हो हैं। तहाँ दुःखका वा दुःखके कारणनिका सर्वथा अभाव होनैतें सदा काल अनौपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहै हैं। सोई दिखाइए है—

सिद्ध अवस्थामें दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होतैं वा उदय होतैं मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था, सो अब मोहका अभावतैं इच्छाका भी अभाव भया। तातैं दुःखका अभावं भया है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतैं सर्व इन्द्रियनिकौं सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातैं दुःखका कारण भी दूरि भया है सोई दिखाइए है—जैसें नेत्रकरि एक विषयकौं देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिकौं युगपत् देखै है। कोऊ विना देख्या रह्या नाहीं, जाके देखनेकी इच्छा उपजै। ऐसैं हीं स्पर्शनादिककरि एक एक विषयकौं ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व स्पर्श रस गंध शब्दनिकौं युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाहीं, जाके ग्रहणकी इच्छा उपजै।

इहाँ कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसें होइ ?

ताका समाधान—इन्द्रियज्ञान होतैं तौ द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिना ही इन्द्रिय ग्रहण हो है। इहाँ कोऊ कहै, जैसें मनकरि स्पर्शादिककौं जानिए है तैसें जानना होता होगा। त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसें न होता होगा। सो ऐसें नाहीं है। मनकरि तौ स्मरणादि होतैं अस्पष्ट जानना किछू हो है। इहाँ तौ स्पर्शरसादिककौं जैसें त्वचा जीभ इत्यादि करि

स्पर्शं स्वादै सूंघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतैं भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनिकै हो है। विशेष इतना भया है—वहाँ इन्द्रिय विषयका संयोग होतें ही जानना होता था, इहाँ दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछू अतीत अनागतकौं वा अव्यक्तकौं जान्या चाहै था,अब सर्व ही अनादितैं अनंतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनिकौं युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाहीं, जाके जाननेकी इच्छा उपजै। ऐसें इन दुःख और दुःखनिके कारण तिनिका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनिका सर्वथा अभाव भया तातैं दुःखका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया तातैं दुःखके कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है--

सर्व तत्त्व यथार्थ प्रतिभासैं, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसें होइ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाहीं, निंदक स्वयमेव अनिष्ट पावै ही है, आप क्रोध कौनसौं करै? सिद्धनितैं ऊँचा कोई है नाहीं। इन्द्रादिक आपहीतैं नमै हैं,इष्ट पावैं हैं, तो कौनस्यौं मान करै? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाहीं, काहूस्यौं प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेका लोभ करै? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाहीं, कौन कारणतें हास्य होइ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाहीं,इहाँ कहा रति करै? कोऊ दुःखदायक संयोग रह्या नाहीं, कहाँ अरति करै? कोऊ इष्ट अनिष्ट संयोग वियोग होता नाहीं, काहेकौं शोक करै? कोऊ अनिष्ट करनेवाला कारण रह्या नाहीं, कौनका भय करै? सर्व वस्तु अपने स्वभाव लिए भासै, आपकौं अनिष्ट

नाहीं, कहाँ जुगुप्सा करैं ? काम पीड़ा दूर होनेतैं स्त्रीपुरुष उभयस्यौं रमनेका किछू प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेकौं पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होइ ? ऐसैं मोह उपजनैंके कारणनिका अभाव जानना । बहुरि अंतरायके उदयतैं शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी। अब ताका अभाव भया। तातैं दुःखका अभाव भया । बहुरि अनंत शक्ति प्रगट भई, तातैं दुःखके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तौ करते नाहीं, इनकी शक्ति कैसैं प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाहीं तब उपचार काहेकौं करै। तातैं इन कार्यनिका सद्भाव तौ नाहीं । अर इनिका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातैं शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसैं कोऊ नाहीं गमन किया चाहै ताकौं काहूनै रोक्या था तब दुःखी था। जब वाकै रोकना दूरि भया, अर जिस कार्यकैं अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करतैं भी शक्ति प्रगटी कहिए । तैसैं ही इहाँ जानना। बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनंतवीर्य प्रगट उनकै पाइए है । बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतैं पाप प्रकृतिनिका उदय होतैं दुःख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होतैं सुख मानै था । परमार्थतैं आकुलताकरि सर्व दुःख ही था। अब मोहके नाशतैं सर्व आकुलता दूरि होनेतैं सर्व दुःखका नाश भया । बहुरि जिन कारणनिकरि दुःख मानै था, ते तौ कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनिकरि किंचित् दुःख दूरि होनेतैं सुख मानै था, सो अब मूलहीमैं दुःख रह्या नाहीं। तातैं तिन दुःखके उपचारनिका किछू

प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनिकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होइ रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है—

वेदनीय विषैं असाताका उदयतैं दुःखके कारण शरीर विषैं रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाहीं तब कहाँ होय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाकौं कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन कौं कारण होंय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनैं था, सो अब इनिकै अनिष्ट रह्या ही नाहीं। ऐसें दुःखका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतैं किंचित् दुःख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनिका प्रयोजन रह्या नाहीं। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाहीं, तातैं बाह्य भी मित्रादिककौं इष्ट माननेका प्रयोजन रह्या नाहीं। इनि करि दुःख मेट्या चाहै था वा इष्ट किया चाहै था, सो अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततैं मरण जीवन था तहाँ मरणकरि दुःख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातैं दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि द्रव्य प्राणनिकौं धरैं कितेक काल जीवनैंतैं सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषैं दुःखकी विशेषताकरि तहाँ जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषैं द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है। अर तहाँ दुःखका लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतैं अशुभ गति जाति आदि होतैं दुःख मानै था, सो अब तिनि सबनिका अभाव भया, दुख कहाँतैं होय? अर शुभगति जाति आदि होतैं किंचित् दुःख दूरि होनेतैं सुख मानै था, सो अब तिनि बिना ही सर्व दुःखका नाश अर सर्व सुखका प्रकाश पाईए है। तातैं तिनिका भी किछू प्रयोजन

रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततें नीचकुल पाए दुःख मानै था सो ताका अभाव होनेतें दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदकौं प्राप्त है। या प्रकार सिद्धनिकै सर्व कर्मके नाश होनेतें मर्व दुःखका नाश भया है।

दुःखका तौ लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होइ। सो इच्छाका वा इच्छाके कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातें निराकुल होय सर्व दुःख रहित अनन्त सुखकौं अनुभवै है। जातें निराकुलपना ही सुखका लक्षण है। संसारविषैं भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहाँ सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसें न मानिए ? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतें सिद्धपद पाएं सर्व दुःखका अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहाँ उपदेश दीजिए है—हे भव्य ! हे भाई ! जो तोकूं संसारके दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीतें हैं कि नाहीं सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसें ही हैं कि नाहीं सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं, सो विचारि। जो तेरै प्रतीति जैसें कही है तैसें ही आवै है सो तूं संसारतें छूटि सिद्धपद पावनेका हम उपाय कहैं हैं सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥



चौथा अधिकार

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव ।
तिनिकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ॥१॥

अब इहाँ संसार दुःखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं तिनिका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए है । जैसैं वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगीकुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसैं इहाँ संसारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तौ संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसाररहित होय । तातैं मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है —

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितैं कर्मसम्बन्धसहित है । याकै दर्शनमोहके उदयतैं भया जो अतत्त्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है । जातैं तद्भाव जो श्रद्धान करने योग्य अर्थहै ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्त्व है । तत्त्व नाहीं ताका नाम अतत्त्व है । अर जो अतत्त्व है सो असत्य है, तातैं इसहीका नाम मिथ्या है । बहुरि ऐसैं ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है । इहाँ श्रद्धानहीका नाम दर्शन है । यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहाँ प्रकरणके वशतैं इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना । सो ऐसैं ही सर्वार्थसिद्धिनाम

सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है। जातैं सामान्यअवलोकन संसारमोक्षकौं कारण होई नाहीं। श्रद्धान ही संसार मोक्षकौं कारण है, तातैं संसार मोक्षका कारणविषैं दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्या-रूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जैसैं वस्तुका स्वरूप नाहीं तैसैं मानना, जैसैं है तैसैं न मानना ऐसा विपरीताभि-निवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकौं लिएं मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न—ज़ो केवलज्ञान बिना सर्वपदार्थ यथार्थ भासैं नाहीं अर यथार्थ भासैं बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ, तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसैं बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तौ ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जानै प्रतीति कैसैं आवै ? यहु तौ सत्य है। परन्तु जैसैं कोऊ पुरुष है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाहीं, तिनकौं अन्यथा जानै वा यथार्थ जानै बहुरि जैसैं जानै तैसैं ही मानै, किछू वाका बिगार सुधार है नाहीं, तातैं बाउला स्याना नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है, तिनिकौं जो अन्यथा जानै अर तैसैं ही मानै तौ बिगार होइ तातैं वाकौं बाउला कहिए। बहुरि तिनिकौं जो यथार्थ जानै अर तैसैं ही मानै, तौ सुधार होइ तातैं वाकौं स्याना कहिए। तैसैं ही जीव है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाहीं, तिनिकौं अन्यथा जानौ वा यथार्थ जानौ बहुरि जैसैं जानै तैसैं श्रद्धान करै, किछू याका बिगार सुधार नाहीं तातैं मिथ्यादृष्टी सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है तिनिकौं जो अन्यथा जानै अर तैसैं

ही श्रद्धान करैं तौ बिगार होइ तातैं याकौं मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनिकों जो यथार्थ जानै अर तैसैं ही श्रद्धान करैं तौ सुधार होइ तातैं याकौं सम्यग्दृष्टी कहिए। इहां इतना जानना कि अप्रयोजन-भूत वा प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामैं ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तौ ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहाँ प्रयोजनभूत पदार्थनिकौं अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछू और भी बिगार सुधार हो है। तातैं याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातैं ज्ञानावरण-हीकै अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहाँ दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसैं भासै ?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तौ सर्व संज्ञी पंचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यंत पढै वा ग्रैवेयकके देव अवधि-ज्ञानादियुक्त हैं तिनिकै ज्ञानावरणका क्षयोपक्षम बहुत होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यंचादिककै ज्ञाना-वरणका क्षयोपशम थोरा होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातैं जानिए है ज्ञानावरणहीकै अनुसारि श्रद्धान नाहीं। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याकै उदयतैं जीवकै मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहाँ कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन हैं ?

ताका समाधान—इस जीवके प्रयोजन तौ एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुःखका न होना, सुखका होना एक ही है, जातैं दुःखका अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसें ? सो कहिए है।

प्रथम तो दुःख दूरि करनैंविषैं आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाहीं होय तो आपकौं पहिचाने विना अपना दुःख कैसें दूरि करै। अथवा आपापरकौं एक जानि अपना दुःख दूर करनेकै अर्थि परका उपचार करै तौ अपना दुःख दूरि कैसें होइ ? अथवा आपतैं पर भिन्न, अर यहु परविषै अहंकार ममकार कर तातैं दुःख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूरि हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातैं आप जीव है, शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिककरि जीव अजीवकी पहिचान होइ, तौ आपापरकौं भिन्नपनौं भासै। तातैं जीव अजीवकौं जानना, अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतैं दुःख होता था तिनिका यथार्थ ज्ञान होनेतैं दुःख दूरि होइ तातैं जीव अजीवकौं जानना। बहुरि दुःखका कारन तौ कर्मबंधन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव हैं। सो इनिकौं न पहिचानै, इनकौं दुःखका मूलकारन न जानै तौ इनका अभाव कैसें करै ? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबंधन होइ, तातैं दुःख ही होइ। अथवा

मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो दुःखमय हैं । सो इनिकौं जैसेके तैसे न जानै तौ इनिका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै तातैं आस्रवकौं जानना । बहुरि समस्त दुःखका कारण कर्मबन्धन है सो याकौं न जानै तब यातैं मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताकै निमित्ततैं दुःखी होइ तातैं बंधकौं जानना । बहुरि आश्रवका अभाव करना सो संवर है। याका स्वरूप न जानै तौ या विषैं न प्रवर्तै तव आस्रव ही रहै तातैं वर्तमान या आगामी दुःख ही होइ तातैं संवरकौं जानना । बहुरि कथंचित् किंचित् कर्मबंधका अभाव ताका नाम निर्जरा है सो याकौं न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बंध ही रहै तातैं दुःख ही होइ तातैं निर्जराकौं जानना। बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबंधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है । सो याकौं न पहिचानै तौ याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबंधतैं निपजे दुःखनिहीकौं सहै तातैं मोक्षकौं जानना। ऐसें जीवादि सप्त तत्त्व जानने । बहुरि शास्त्रादि करि कदाचित् तिनिकौं जानै अर ऐसैं ही है ऐसी प्रतीति न आई तो जानैं कहा होय तातैं तिनिका श्रद्धान करना कार्यकारी है। ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किए ही दुःख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है । तातैं जीवादिक पदार्थ हैं ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनिके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनिका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातैं सामान्यतैं विशेष बलवान् है । ऐसें ये पदार्थ तौ प्रयोजनभूत हैं तातैं इनका यथार्थ श्रद्धान किए तौ दुःख न होइ, सुख होय अर इनिकौं यथार्थ श्रद्धान किए बिना दुःख हो है, सुख न हो है। बहुरि इनि बिना अन्य पदार्थ हैं, ते अप्रयोजनभूत हैं । जातैं तिनिकौं

यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखकौं कारण नाहीं।

इहाँ प्रश्न उपजै है, जो पूर्वं जीव अजीव पदार्थ कहे तिनिविषै तो सर्व पदार्थ आय गए तिनि बिना अन्य पदार्थ कौन रहे, जिनिकौं अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तौ सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं, परन्तु तिन जीव अजीवनिके विशेष बहुत हैं। तिनि विषैं जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय, रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातैं सुख उपजै; अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होइ, रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान न होइ, तातैं दुःख उपजै तिनि विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थंतौ प्रयोजनभूत जानेने। बहुरि जिनि विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकौं यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं, तिनिविशेषनिकरि सहित जीवअजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसैं जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना तौ प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिका वा घट-पटादिका अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसैं ही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनिका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब संसारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसैं पाइए है सो कहिए हैं। इहाँ वर्णन तौ श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमिततैं अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायकौं छोरै,नवीन पर्याय धरै । बहुरि वह पर्याय है सो एक तौ आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनिका एक पिंड बंधानरूप हैं। बहुरि जावकै तिसपर्यायविषैं यह मैं हूँ, ऐसैं अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तौ ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव हैं तिनि सबनिकौं अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे हैं, ऐसैं मम-बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताकौं ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिनि सबनिकौं अपनी अवस्था मानें है । ए मेरी अवस्था है, ऐसैं मम बुद्धि करै है । बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातैं जो क्रिया हो है ताकौं अपनी मानै है । अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है,ताकी प्रवृत्तिकौं निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय हैं । यहु तिनिकौं एक मानि ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मैं स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या,नेत्रकरि देख्या,काननिकरि सुन्या, ऐसैं मानें है । मनोवर्गणारूप आठ पाँखुड़ीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाहीं ऐसा है सो शरीरका अंग है ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनकौं अर ज्ञानकौं एक मानि ऐसैं मानै है कि मैं मनकरि जान्या । बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकौं जैसैं बोलना बनें तैसैं हलावै, तब

एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतैं शरीरके अंग भी हालैं ताके निमित्ततैं भाषा-वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमैं। यहु सबकौं एक मानि ऐसैं मानै जो मैं बोलूं हूँ। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिकौं जैसैं कार्य बनै तैसैं हलावै, तब एक क्षेत्रागाहतैं शरीरके अंग हालैं तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीरहालै तब अपने प्रदेश भी हालैं, यहु सबकौं एक मानि ऐसैं मानैं, मैं गमनादि कार्य करूं हूँ वा वस्तु ग्रहूँ हूँ वा मैं किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताकै अनुसारि चेष्टा होइ जाय। जैसैं क्रोधादिक भए रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित बदनादि होइ जाय, पुरुष-वेदादि भए लिंगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबकौं एक मानि ऐसा मानैं कि ए कार्य सर्व मैं करूं हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततैं मोहभावकरि आप सुख दुःख मानैं। इन सबनिकौं एक जानि शीतादिककौं वा सुख दुःख कौं अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनिकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कंध का खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अंगहीना-दिक होय अर ताकै अनुसार अपने प्रदेशनिका संकोच विस्तार होइ। यहु सबकौं एक मानि मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, मैं बालक हूँ, मैं वृद्ध हूँ, मेरे इनि अंगनिका भंग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनिकौं अपने मानि मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, इत्यादिरूप मानै है। बहुरि

शरीर संयोग होनें छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय। तिनिकौं अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या,मैं मरूँगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीर ही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यौं नाता मानै है। जिनिकरि शरीर निपज्या तिनिकौं आपके माता पिता मानै है। जो शरीरकौं रमावै ताकौं अपनी रमनी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताकौं अपना पुत्र मानै है। जो शरीरकौं उपकारी ताकौं मित्र मानैं है। जो शरीरका बुरा करै ताकौं शत्रु मानैं है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरकौं एक ही मानै है। इन्द्रियादिक का नाम तो इहाँ कह्या है। याकौं तो किछू गम्य नाहीं। अचेत हुआ पर्यायविषैं अहंबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है ? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितैं इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तौ भासै नाहीं अर शरीर मूर्तीक है सो ही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहंबुद्धि धारै ही धारै, सो आप जुदा न भास्या तब तिनिका समुदायरूप पर्यायविषैं ही अहंबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाहीं। बहुरि जिस विचार करि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तैं होइ सकै नाहीं तातैं पर्याय ही विषैं अहंबुद्धि पाइए है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्यसामग्रीका संयोग होतें तिनि कौं भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतें भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपकौं भासैं, तौ भी तिनि विषैं ममकार करै है। पुत्रादिकविषै ए हैं, सो मैं ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्या-

दर्शनतैं शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है । अनित्यकौं नित्य मानै है, भिन्नकौं अभिन्न मानै, दुःखके कारणकौं सुखका कारण मानैं, दुःखकौं सुख मानैं इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसैं जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनिकौं अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितैं भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनिकौं एक मानै है । जातैं इनिका आधारभूत तौ एक आत्मा अर इनिका परिणमन एकै काल होइ, तातैं याकौं भिन्नपनौं न भासै अर भिन्नपनौं भासनेका कारण जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाहीं । बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिए हैं, तातैं वर्तमान दुःखमय हैं अर कर्मबंधके कारण हैं, तातैं आगामी दुःख उपजावंगे, तिनिकौं ऐसैं न मानै है। आप भला जानि इन भावनिरूप होइ प्रवर्तै है । बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्वकषायभावनितैं होइ अर वृथा ही औरनिकौं दुःख उपजावनहारे मानै। जैसैं दुःखी तौ मिथ्यात्वश्रद्धानतैं होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसारि जो पदार्थ न प्रवर्त्तै ताकौं दुखदायक मानै। बहुरि दुःखी तो क्रोधतैं हो है अर जासौं क्रोध किया होय ताकौं दुःखदायक मानैं । दुःखी तो लोभतैं होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिकौं दुखदायक मानैं, ऐसैं ही अन्यत्र जानना । बहुरि इनि भावनिका जैसा फल लागै, तैसा न भासै है । इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक हो हैं । तहाँ घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाहीं, तातैं बुरे न लागै हैं । कारण कहा

है—ए आपके किए भासैं तिनकौं बुरे कैसे मानै है ? बहुरि ऐसैं ही आस्रव तत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इनि आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनिका उदय होतैं ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुखदुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजातिशरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषैं मूल कारन कर्म है। ताकौं तौ पहिचानै नाहीं, जातैं वह सूक्ष्म है, याकौं सूझता नाहीं। अर वह आपकौं इनि कार्यनिका कर्त्ता दीसै नाहीं, तातैं इनके होनेंविषैं कै तौ आपकौं कर्त्ता मानैं, कै काहू औरकौं कर्त्ता मानैं। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तौ गहलरूप होई भवितव्य मानैं। ऐसैं ही बंधतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवकौं यथार्थ न पहिचानैं, ताकै संवरका यथार्थश्रद्धान कैसैं होइ? जैसैं काहूकै अहित आचरण है। वाकौं वह अहित न भासै, तौ ताके अभावकौं हितरूप कैसैं मानै? तैसैं ही जीवकै आस्रवकी प्रवृत्ति है। याकौं यहु अहित न भासै तौ ताके अभावरूप संवरकौं कैसैं हित मानै। बहुरि अनादितैं इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहूं न भया, तातैं संवरका होना भासै नाहीं। संवर होतैं सुख हो है सो भासै नाहीं। संवरतैं आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातैं आस्रवका तो संवर करै नाहीं, अर तिन अन्य पदार्थनिकौं दुःखदायक मानै है। तिनिहीके न होनेका उपाय किया करै है सो वे

अपनैं आधीन नाहीं । वृथा ही खेदखिन्न हो है । ऐसै संवरतत्त्वका अयथाथ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है ।

बहुरि बंधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है । जो बंधकौं यथार्थ न पहचानैं, ताकै निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसैं होय ? जैसैं भक्षण किया हुवा विष आदिकतैं दुःख होता न जानैं तो ताकै उषाल‡ का उपायकौं कैसैं भला जानैं । तैसैं बंधनरूप किए कर्मनितैं दुःख होता न जानैं, तौ तिनिकी निर्जराका उपायकौं कैसैं भला जानैं। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितैं सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनिका तौ ज्ञान होता नाहीं । बहुरि तिनविषैं दुःखकूं कारनभूत शक्ति है,ताका ज्ञान नाहीं । तातैं अन्य पदार्थनिहीके निमित्तकौं दुःखदायक जानि तिनिके ही अभाव करनेका उपाय करै है । सो वे अपने आधीन नाहीं । बहुरि कदाचित् दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसारि बनै है । तातैं तिनिका उपाय करि वृथाही खेद करै है। ऐसैं निर्जरातत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है ।

बहुरि सर्व कर्मबंधका अभाव ताका नाम मोक्ष है । जो बंधकौं वा बंधजनित सर्व दुःखनिकौं नाहीं पहिचानैं, ताकै मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसैं होइ । जैसैं काहूकै रोग है वह तिस रोगकौं वा रोग-जनित दुःखनिकौं न जानै, तौं सर्वथा रोगके अभावकौं कैसैं भला जानै ? तैसैं याकै कर्मबन्धन है यहु तिस बंधनकौं वा बंधजनित दुःखकौं न जानै, तौ सर्वथा वंधके अभावकौं कैसैं भला जानै ? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तौ ज्ञान नाहीं, तातैं बाह्यपदार्थ-

‡ नष्ट करना ।

निकौं दुःखका कारन जानि तिनकै सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तौ जानैं,सर्वथा दुःख दूरि होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिकौं मिलाय सर्वथा सुखी होना, सो कदाचित् होय सकै नाहीं। यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसैं मिथ्यादर्शनतैं मोक्षतत्त्वनिका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतैं जीवादि सप्त तत्त्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनिका अयथार्थ श्रद्धान करै है। बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष हैं। सो इनि पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतैं पुण्यकौं भला जानै है, पापकौं बुरा जानैं है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनैं है, ताकौं भला जानैं है। पापकरि इच्छाके अनुसारि कार्य न बनैं, ताकौं बुरा जानै है सो दोन्यौं ही आकुलताके कारण हैं, तातैं बुरे ही हैं। बहुरि यहु अपनी मानितैं तहाँ सुख दुख मानै है। परमार्थतैं जहाँ आकुलता है तहाँ दुःख ही है। तातैं पुण्यपापके उदयकौं भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनिकौं भले बुरे जानै हैं सो भी भ्रम ही है। जातैं दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन हैं। ऐसैं पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थ-श्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातैं याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतैं रहित है तातैं याहीका नाम अदर्शन है।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि

तत्त्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनिके जाननेविषं संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसें है कि ऐसें है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है, जैसें "मैं आत्मा हूँ कि शरीर हूँ" ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही है, ऐसा वस्तुस्वरूपतें विरुद्धतालिए एक रूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसें 'मैं शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछू है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसें 'मैं कोई हौं' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिकौं यथार्थ जानैं वा अयथार्थ जानैं ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाहीं है। जैसें मिथ्यादृष्टि जेवरीकौं जेवरी जानैं तौ सम्यग्ज्ञान नाम न होय। अर सम्यग्दृष्टि जेवरीकौं सांप जानैं तौ मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहाँ प्रश्न—जो प्रत्यक्ष साँचा झूठा ज्ञानकौं सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसैं न कहिए ?

ताका समाधान—जहाँ जाननेहीका, साँच झूँठ निर्द्धार करनेहीका प्रयोजन होय, तहाँ तौ कोई पदार्थ है ताका सांचा झूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसै परोक्ष-प्रमाणका वर्णनविषैं कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेकौं अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहाँ संसार मोक्षके कारणभूत सांचा झूँठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाहीं । तातैं तिनकी अपेक्षा इहाँ मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहाँ प्रयोजनभूत जीवादिक-तत्त्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है । इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषैं मिथ्यादृष्टिका तौ सर्वजानना मिथ्या-ज्ञान ही कह्या, अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ प्रश्न—जो मिथ्यादृष्टीकै जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ जानना है ताकौं मिथ्याज्ञान कहौ । जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेकौं तौ सम्यग्ज्ञान कहौ ?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातैं कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदा-भेद विपर्ययकौं उपजावै है। तहाँ जाकौं जानै है ताका मूल कारणकौं न पहिचानै। अन्यथा कारण मानैं सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाकौं जानैं ताका मूलवस्तु तत्त्वस्वरूप ताकौं नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाकौं जानै ताकौं यहु इनतें भिन्न है, यहु इनतैं अभिन्न हैं ऐसा न पहचानैं, अन्यथा भिन्न अभिन्नपनौं मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टीकै जाननेविषैं विपरीतता पाइए है । जैसैं मतवाला माताकौं भार्या मानै, भार्याकौं माता मानै, तैसैं मिथ्यादृष्टीकै अन्यथा जानना है । बहुरि जैसैं काहू-कालविषै मतवाला माताकौं माता वा भार्याकौं भार्या भी जानैं तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातैं वाकै यथार्थज्ञान न कहिए । तैसैं मिथ्यादृष्टी काहू काल विषैं किसी पदार्थकौं सत्य भी जानै तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान-

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनि करि अपना प्रयोजन तौ अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टीकै ज्ञानकौं मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहाँ प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतैं जो मिथ्यात्वभाव होय सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसें विषके संयोगतैं भोजन भी विषरूप कहिए तैसैं मिथ्यात्वके सम्बन्धतैं ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहाँ कोऊ कहै ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहौ ?

ताका समाधान - ज्ञानावरणके उदयतैं तौ ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनि विषै काहूकौं मिथ्याज्ञान काहूकौं सम्यग्ज्ञान कहिए तौ दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टीकैं पाइए है तातैं तिनि दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तौ सिद्धान्तविषैं विरुद्ध होइ। तातैं ज्ञानावरणका निमित्त बनैं नाहीं।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थज्ञानका कौन कारण है तिसहीकौं जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहौ?

ताका उत्तर—जो जाननेंविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तौ ज्ञानावरणका उदयतैं हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं हो है। जैसैं जेवरीकौं सर्प जान्याँ सो अयथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमें हो है,तातैं अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है

तातें यथार्थ जानै है। तैसें ही जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होनेविषें ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसें काहूपुरुषकै क्षयोपक्षमतें दुखकौं वा सुखकौं कारणभूत पदार्थनिकौं यथार्थ जाननेकी शक्ति होय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकौं कारणभूत जो होय तिसहीकौं वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिकौं न वेदै, अर जो सुखका कारणभूत पदार्थकौं वेदै तो सुखी ह्वो जाय। सो असाताका उदय होतें होय सकै नाहीं। तातें इहाँ दुःखकौं कारणभूत अर सुखकौं कारणभूत पदार्थ वेदनेविषें ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, असाता साताका उदय ही कारणभूत है। तैसें ही जीव कै प्रयोजनभूत जीवादिकतत्त्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनिके यथार्थ जाननेकी शक्ति होय। तहाँ जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनिहीकौं वेदै, जानै, प्रयोजनभूतकौं न जानै। जो प्रयोजनभूतकौं जानै तौ सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतें होइ सके नाहीं। तातें इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं। मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना—जहाँ एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहाँ तौ ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतें भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ संज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतें शक्ति होय अर न जानै तहाँ मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतें मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतें भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातैं पहिलै मिथ्याज्ञान कहौ पीछैं मिथ्यादर्शन कहौं ?

ताका समाधान--है तौ ऐसैं ही, जाने विना श्रद्धान कैसैं होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततैं हो है। जैसैं मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थकौं जानै तौ समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकैं मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टीकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसें ही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानकौं कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातैं जहाँ सामान्यपनै ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तौ ज्ञान कारणभूत है ताकौं पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकौं पीछैं। बहुरि जहाँ मिथ्यासम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ श्रद्धान कारणभूत है ताकौं पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताकौं पीछै कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तौ युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसैं कहौ हौ ?

ताका समाधान—वह होय तौ वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसैं दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तौ प्रकाश होय, तातैं दीपक कारण है प्रकाश कार्य है। तैसैं ही ज्ञान श्रद्धानकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारणपना जानना।

बहुरि प्रश्न--जो मिथ्यादर्शन के संयोगतैं ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तौ एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना था मिथ्याज्ञान जुदा काहेकौं कह्या ?

ताका समाधान—ज्ञानहीकी अपेक्षा तौ मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टिकै क्षयोपशमतैं भया यथार्थ ज्ञान तामैं किछू विशेष नाहीं, अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषैं भी जाय मिलै है, जैसें नदी समुद्र मैं मिलै। तातैं ज्ञानविषैं किछु दोष नाहीं, परन्तु क्षयोपशमज्ञान जहाँ लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै, सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततैं अन्य ज्ञेयनिविषै तौ ज्ञान लागै, अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्त्वनिका यथार्थ निर्णय करनेंविषैं न लागै, सो यहु ज्ञानविषैं दोष भया। याकौं मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषैं दोष भया। याकौं मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसैं मिथ्याज्ञानका स्वरूप कह्या। इसहीकौं तत्त्वज्ञानके अभावतैं अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातैं याहीकौं कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतैं कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहाँ अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाहीं, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाहीं; तातैं याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है—अपना स्वभाव तौ दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तौ रहै नाहीं। जिन पदार्थनिकौं देखै जानै तिन विषै इष्ट अनिष्टपनौं मानैं, तातैं रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावकौं चाहै, काहूका अभावकौं चाहै। सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाहीं। जातैं

कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता है नाहीं। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमैं हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसैं आप चाहै तैसैं ही पदार्थ परिणमैं तौ अपना परिणमाया तौ परिणम्या नाहीं। जैसैं गाड़ा चालै है अर वाकौं बालक धकायकरि ऐसा मानैं कि याकौं मैं चलाऊँ हूँ। सो वह असत्य मानैं है जो वाका चलाया चालै है तौ वह न चालै तब क्यों न चलावै? तैसैं पदार्थ परिणमैं हैं अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानैं जो याकौं मैं ऐसे परिणमाऊँ हूँ। सो यहु असत्य मानै है। जो याका परिणमाया परिणमैं तौ वह तैसें न परिणमैं तब क्यों न परिणमावै? सो जैसें आप चाहै तैसैं तौ पदार्थका परिणमन कदाचित् ऐसैं ही बनाव बनै तब हो है। बहुत परिणमन तौ आप न चाहै, तैसें ही होता देखिये है। तातैं यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होइ ही नाहीं। कषाय भाव करनेतें कहा होय? केवल आप ही दुःखी होय। जैसें कोऊ विवाहादि कार्य विषैं जाका किछू कह्या न होय अर वह आप कर्त्ता होय कषाय करै तौ आप ही दुःखी होय, तैसें जानना। तातैं कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछू कार्यकारी नाहीं। तातैं इनि कषायनिकी प्रवृत्ति कौं मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट मानैं हो है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातैं कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं। कैसैं, सो कहिए है।

इष्ट-अनिष्टकी मिथ्याकल्पना

आपकौं सुखदायक उपकारी होइ ताकौं इष्ट कहिए। आपकौं दुख-

दायक अनुपकारी होय ताकौं अनिष्ट कहिए । सो लोकमैं सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्त्ता हैं। कोऊ काहूकौं सुख दुःखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यहु जीव अपने परिणामनिविषैं तिनकौं सुख-दायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दुःखदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है । जातैं एक ही पदाथ काहूकौं इष्ट लागै है, काहूकौं अनिष्ट लागै है। जैसैं जाकौं वस्त्र न मिलै ताकों मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाकौं महीन वस्त्र मिलै ताकौं वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिककौं विष्टा इष्ट लागै है, देवादिककौं अनिष्ट लागै हैं । काहूकौं मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूकौं अनिष्ट लागै हैं । ऐसैं ही अन्य जानने । बहुरि याही प्रकार एक जीवकौं भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है । बहुरि यहु जीव जाकौं मुख्यपनैं इष्ट मानें सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसैं शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय । पुत्रादिक इष्ट हैं सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए है, इत्यादि जाननें । बहुरि यहु जीव जाकौं मुख्यपनै अनिष्ट मानैं सो भी इष्ट होता देखिये है । जैसैं गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमें इष्ट लागै है, इत्यादि जानने । ऐसैं पदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्टपनौं है नाहीं । जो पदार्थविषैं इष्ट अनिष्टपनौं होता, तो जो पदार्थ इष्ट होता, सो सर्वको इष्ट ही होता; जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाहीं । यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनकौं इष्ट अनिष्ट मानै है, सो यहु कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दुःखदायक अनुपकारी हो है; सो आपही नाहीं हो है पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है।

जाकै पुण्यका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुःखदायक अनुपकारी हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं, काहूकै दुःखदायक हैं;व्यापार किएं काहूकै नफ़ा हो है, काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो हैं, काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो है। तातैं जानिये है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म उदयके अनुसारि प्रवर्तें हैं। जैसैं काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसारि किसी पुरुषकौं इष्ट अनिष्ट उपजावैं तौ किछू किंकरनिका कर्तव्य नाहीं, उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकौं इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसैं कर्मके उदयतैं प्राप्त भए पदार्थ कर्मके अनुसारि जीवकौं इष्ट अनिष्ट उपजावैं तौ किछू पदार्थनिका कर्त्तव्य नाहीं, कर्मका कर्त्तव्य है। जो पदार्थकौं इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातैं यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट मानि तिनिविषैं राग द्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका संयोग कर्म निमित्ततैं बनै है तौ कर्मनिविषैं तौ राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तौ जड़ हैं, उनकै किछू सुख दुःख देनेकी इच्छा नाहीं। बहुरि वे स्वयमेवतौ कर्मरूप परिणमैं नाहीं। याके भावनिके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं। जैसैं कोऊ अपने हाथ करि भाटा(पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसैं ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकौं कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मकै कहा दोष है। तातैं कर्मस्यौं भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकौं इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है।

जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इनि परिणामनिकौं मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

राग-द्वेषकी प्रवृत्ति

प्रथम तौ इस जीवकै पर्यायविषैं अहंबुद्धि है सो आपकौं वा शरीर कौं एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषैं आपकौं सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपकौं न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तौ राग करै है अर ताकै घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थनिविषै तौ द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इनिविषैं जिन बाह्य पदार्थनिसौं राग करै है तिनिके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनिके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यौं द्वेष करै है तिनिके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै द्वेष करै है, तिनिके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इनिविषैं भी जिनस्यौं राग करै है तिनिके कारण वा अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है। अर जिनस्यौं द्वेष करै है तिनिके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही राग द्वेषकी परम्परा प्रवर्तै है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरकी अवस्थाकौं कारण नाहीं

तिंनि विषैं भी रागद्वेष करै है। जैसें गऊ आदिके पुत्रादिकतैं किछू शरीरका इष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ राग करै है। जैसें कूकरा आदिकै बिलाई आादिक आवतैं किछू शरीर का अनिष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरका इष्ट होता नाहीं तथापि तिनिविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरकै अनिष्ट होता नाहीं तथापि तिनिविषै द्वेष करै है। ऐसें भिन्न बाह्य पदार्थनिविषैं रागद्वेष हो है। बहुरि इनिविषैं भी जिनस्यौं राग करै है तिनिके कारण अर घातक अन्यपदार्थनिविषैं राग वा द्वेष करै है। अर जिनस्यौं द्वेष करै है तिनि के कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिनि विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्त्तै है।

इहाँ प्रश्न—जो अन्य पदार्थनिविषै तौ रागद्वेष करनेका प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तौ मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीरकी अवस्थाकौं कारण नाहीं, तिनि पदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है ?

ताका समाधान—जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिनि विषै भी प्रयोजन विचारि राग करै तौ मिथ्याचारित्र काहेकौं नाम पावै। तिनिविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनिहीके अर्थि अन्यस्यौं रागद्वेष करै है तातैं सर्व रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहाँ प्रश्न—जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तौ भासै नाहीं अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं, सो कारण कहा है ?

तांका समाधान—इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतैं रागद्वेषभाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकें नाहीं। जैसैं राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै ही होय। ऐसैं तिनिपदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तौ मुख्यपनै रागकौं कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपनै द्वेषकौं कारण हैं। केई पदार्थ काहूकौं काहू काल विषैं रागके कारण हो हैं, काहूकौं काहूकाल विषैं द्वेषके कारण हो हैं। इहाँ इतना जानना—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होने विषैं अंतरंग कारण मोहका उदय है सो तौ बलवान् है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाहीं है। महामुनिनिकै मोह मन्द होतैं बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतैं भी रागद्वेष उपजते नाहीं। पापी जीवनिकै मोह तीव्र होतैं बाह्यकारण न होतैं भी तिनिका संकल्पही करि रागद्वेष हो है। तातैं मोहका उदय होतैं रागादिक हो हैं। तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है। बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेष भाव होना होय, तिस विषैं बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है। तातैं मोहका उदयतैं पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं। ऐसैं पदार्थनि विषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतैं जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना। बहुरि इनि रागद्वेषनि हीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव हैं ते सर्व इस

मिथ्याचारित्रहीके भेद जाननें। इनिका वर्णन पूर्वें कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषैं स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातैं याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहाँ परिणाम मिटैं नाहीं अथवा विरक्त नाहीं, तातैं याहीका नाम असंयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जातैं पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषैं बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषैं स्वच्छन्दपना होय अर इनिके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसैं कार्य हो हैं तातैं मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातैं हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इनि पाप कार्यनिविषै प्रवृत्तिका नाम अव्रत है। सो इनिका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातैं मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसैं मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या। या प्रकार इस संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितैं पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असंज्ञीपर्यंततौ सर्वजीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना। जैसैं एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनिकै निमित्ततैं मिथ्यादर्शनादिकका वर्णन किया है। तिसविषैं जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जाव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं है परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव

है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है । जैसें मैं स्पर्शनकरि स्परसूँ हूँ, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है । बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै हैं अर ताके भावरूप परिणमैं हैं, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लैना। ऐसैं ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितैं पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतैं स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होनेके कारण मिलें तौ भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वै बारबार समझावैं, यहु किछू विचार करै नाहीं। बहुरि आपकौं भी प्रत्यक्ष भासै, सो तौ न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसें, सो कहिए है—

मरण होतैं शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो है। एक शरीरकौं छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है, सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए है परन्तु याकै शरीरतैं भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्रीपुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए है। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए है। यहु तिनिविषैं ममत्व करै है अर तिनिकै अर्थि नरकादिकविषै गमनकौं कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है,यहु तिनकौं अपनी मानै है। बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्त्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसारि कार्य होय ताकौं तौ कहै, मैं किया अर अन्यथा होय ताकौं कहै, मैं कहा करौं ? ऐसें ही होना था वा ऐसें क्यौं

भया, ऐसा मानै। सो कै तौ सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्त्ता रहना था सो विचार नाहीं। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानैं परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाहीं, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहूं तौ कहै, मैं मरूंगा,शरीर को जलावेंगे। कबहूं कहै, मोको जलावेंगे। कबहूं कहै, जस रह्या तौ हम जीवते ही हैं। कबहू कहै, पुत्रादिक रहैंगे तौ मैं ही जीऊँगा। ऐसें बाउलाकीसी नाईं वाकै किछू सावधानी नाहीं। बहुरि आपकौं परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै, ताका तौ इष्ट अनिष्टका किछू उपाय नाहीं अर इहाँ पुत्र पोता आदि मेरी संततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या करै अर अनिष्ट न होइ, ऐसें अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछैं इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि यिषयकषायकी प्रवृत्तिकरि वा हिंसादि कार्यकरि आप दुःखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निंद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनि-ही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकौं भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है। ऐसें यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितें जीव परिणमैं है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। ऐई भाव दुःखनिके बीज हैं, अन्य कोई नाहीं। तातैं हे भव्य जो दुःखतैं मुक्त भया चाहै तो इनि मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना यहु ही कार्य है, इस कार्यके किएं तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥४॥



पाँचवाँ अधिकार

विविधमत-समीक्षा

दोहा

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयो निज भाव।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ॥१॥

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितैं मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुःख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादिपर्यायनिविषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिकौं पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिनि मिथ्या-श्रद्धानादिककौं पोषै तौ तिस जीवका दुःखतैं मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसैं कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकौं पाय कुपथ्य सेवन करै तौ उस रोगीका सुलझना कठिन ही होय। तैसैं यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकौं पाय विशेष विप-रीत श्रद्धानादिककैं कारणनिका सेवन करै तौ इस जीवका मुक्त होना कठिन ही होय। तातैं जैसैं वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनिके सेवनकौं निषेधै तैसैं ही इहाँ विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनिका निषेध करिए है। इहाँ अनादितैं जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए हैं ते तौ अगृहीतमिथ्यात्वादि जाननें, जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाहीं। बहुरि तिनिके पुष्ट करनेके कारण-निकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जाननें।

तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तौ पूर्वै वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनिका श्रद्धान सो तौ मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनिके विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होय ऐसे कुशास्त्र तिनिविषैं श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषैं कषायनिका सेवन होय अर ताकौं धर्मरूप अंगीकार करें सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए है —इन्द्र लोकपाल इत्यादि; बहुरि अद्वैतब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव, बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि; बहुरि हनुमान, भैरूं, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाड़ी, सती इत्यादि; बहुरि शीतला, चौथि, साँझी, गणगोरि, होली इत्यादि; बहुरि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, अऊत, पितर, व्यन्तर इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि; बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र, दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनिका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनिकौं पूजें। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाहीं, तातैं ऐसे श्रद्धानकौं गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनिका अन्यथा श्रद्धान कैसैं हो है सो कहिए है—

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म

अद्वैतब्रह्मकौं* सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानैं सो कोई है नाहीं।

* "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ मं० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ मं० ११
ब्रह्मैवेदममृत पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणतपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ मुण्डको० खंड२, मं०११

प्रथम वाकौं सर्वव्यापी मानैं सो सर्व पदार्थ तौ न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनिके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए हैं, इनिकौं एक कैसें मानिए है ? इनका मानना तौ इनि प्रकारनि करि है—एक प्रकार तौ यहु है जो सर्व न्यारे न्यारे हैं तिनिके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए । जैसें घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनिके समुदायका नाम सैना है, तिनितैं जुदा कोई सैना वस्तु नाहीं । सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तौ ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तौ न ठहरचा, कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तौ न्यारे न्यारे हैं तिनिकौं जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है। जैसें सौ घोटक (घोड़ा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तौ जुदे जुदे सौ ही हैं तिनिके आकारादिककी समानता देखि एक जाति कहैं, सो वह जाति तिनतैं जुदी ही तौ कोई है नाहीं । सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तौ ब्रह्म जुदा तौ कोई न ठहरचा, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं तिनिके मिलापतैं एक स्कंध होय ताकौं एक कहिए । जैसें जलके परमाणू न्यारे न्यारे हैं तिनिका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसें पृथिवी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितैं भिन्न कोई जुदा तौ वस्तु नाहीं । सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसें मानिए तौ इनितैं जुदा तौ कोई ब्रह्म न ठहरचा । बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तौ न्यारे न्यारे हैं अर

जाके अंग हैं सो अंगी एक है। जैसैं नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाकैं ए हैं सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तौ अंग हैं अर जाके ए हैं सो अंगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अंग है, ऐसैं मानिए तौ मनुष्यकै हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अंतराल भए तौ एकत्वपना रहता नाहीं। जुड़े रहें ही एक शरीर नाम,पावै। सो लोकविषै तौ पदार्थनिकै अंतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसैं मानिए ? अंतराल भए भी एकत्व मानिए तौ भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहां कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अंग हैं तिनिकरि सर्व जुरि रहे हैं, ताकौं कहिए है—

जो अंग जिस अंगतें जुरचा है, तिसहीतें जुरचा रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अंगनिस्यौं जुरचा करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तौ सूर्यादि गमन करै हैं, तिनिकी साथि जिन सूक्ष्म अंगनितें वह जुरै है ते भी गमन करैं। बहुरि उनको गमन करते वे सू क्ष्म अंग अन्य स्थूल अंगनितें जुरे रहैं, ते भी गमन करैं हैं सो ऐसैं सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसैं शरीरका एक अंग खींचें सर्व अंग खींचें जांय, तैसैं एक पदार्थकौं गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय, सो भासै नाहीं। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहैगा, तो अंग टूटनैंतें भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसैं रह्या ? तातें सर्वलोकका एकत्वकौं ब्रह्म मानना कैसैं सम्भवै ? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलैं एक था, पीछैं अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातैं एक है। जैसैं जल एक था सो बासणनिमैं जुदा जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय

वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो कंकण कुंडलादिरूप भया बहुरि मिलिकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसैं ब्रह्म एक था, पीछैं अनेक-रूप भया बहुरि एक होयगा तातैं एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है, तौ जब अनेक रूप भया तब जुरचा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरचा कहैगा तौ पूर्वोक्त दोष आवैगा। भिन्न भया कहैगा तौ तिस काल तौ एकत्व न रह्या। बहुरि जब सुवर्णादिककौं भिन्न भए भी एक कहिए है सो तौ एक जाति अपेक्षा कहिए है। सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसैं कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछैं भिन्न भया मानै है, तो जैसैं एक पाषाणादि फूटि टुकड़े होय जाय हैं तैसैं ब्रह्मके खंड होय गए, बहुरि तिनिका एकट्ठा होना मानै है तौ तहाँ तिनिका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तौ तहाँ अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तौ जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषैं अनेक वस्तु, काहू कालविषैं एक वस्तु ऐसा कहना बनैं। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहैगा लोक रचना होतैं वा न होतैं ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहे है, तातैं ब्रह्म अनादि अनंत हैं। सो हम पूछें हैं, लोकविषैं पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं कि ब्रह्म ही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तौ ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न

* डला वा पांसा.

ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तौ जैसाका तैसा कैसें रह्या ? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है, वाका कोई अंश हो है। ताकौं कहिए हैः—जैसें समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहाँ स्थूलदृष्टिकरि तौ गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तौ एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसें ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया। तहाँ स्थूलविचारकरि तौ किछू गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मविचार किए तौ एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यहु अन्यथापना और तौ काहूकै भया नाहीं। ऐसें सर्वरूप ब्रह्मकौं मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसें आकाश सर्वव्यापी एक है तैसें ब्रह्म सर्व व्यापी एक है। जो इस प्रकार मानैं है तौ आकाशवत् बड़ा ब्रह्मकौं मानि, वा जहाँ घटपटादिक हैं तहाँ जैसें आकाश है तैसें तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसें घटपटादिककौं अर आकाशकौं एक ही कहिए तौ कैसें बनै ? तैसें लोककौं अर ब्रह्मकौं एक मानना कैसें सम्भवै ? बहुरि आकाशका तौ लक्षण सर्वत्र भासै है तातैं ताका तौ सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं तातैं ताका सर्वत्र सद्भाव कैसें मानिए ? ऐसैं इस प्रकारकरि भी सवरूप ब्रह्म नाहीं है। ऐसें ही विचारकरतें किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवं नाहीं। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न भासै हैं।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है, तातैं तुमकौं एक भासै नाहीं। बहुरि तुम युक्ति कही, सो ब्रह्मका स्वरूप युक्तिगम्य नाहीं। वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा

भी है, मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है, ताकौं कहिए है—जो प्रत्यक्ष तुझकौं वा हमकों वा सबनिकौं भासै, ताकौं तौ तू भ्रम कहै। अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै है कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाहीं। बहुरि कहै, सांचास्वरूप वचन अगोचर है तौ वचन बिना कैसैं निर्णय करैं? बहुरि कहै एक भी है, अनेक भी है; जुदा भी है,मिल्या भी है;सो तिनिकी अपेक्षा बतावै नाहीं, बाउलेकीसी नाईं ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहाँ न्याय न होय है तहाँ झूठे ऐसें ही वाचालपना कर है सो करो! न्याय तौ जैसें सांच है तैसें ही होयगा।

ब्रह्म की इच्छासे जगत्की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मकौं लोकका कर्त्ता मानै है ताकौं मिथ्या दिखाइए हैं— प्रथम तौ ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहु स्यां" कहिए मैं एक हूँ सो बहुत होस्यूँ। तहाँ पूछिए है—पूर्व अवस्थामें दुःखी होय तब अन्य अवस्थाकौं चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्था तें बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था? तब वह कहै है जो दुःख तौ न था, ऐसा ही कौतूहल उपज्या। ताकों कहिए है—जो पूर्वैं थोरा सुखी होय अर कौतूहल किएं घना सुखी होय सो कौतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसैं सम्भवै? बहुरि जो पूर्वैं ही सम्पूर्ण सुखी होय तौ अवस्था काहेकों पलटै। प्रयोजन बिना तौ कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वैं भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा; परन्तु इच्छा भई तिसकाल तौ दुःखी होय।

तब वह कहै है, ब्रह्मकै जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातैं दुःखी न हो है। तहाँ कहिए है--स्थूलकालकी अपेक्षा तौ ऐसैं मानौ परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तौ इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाहीं। इच्छा तौ तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातैं सूक्ष्मकालमात्र इच्छा रही, तब तौ दुःखी भया होगा। जातैं इच्छा है सो ही दुःख है, और कोई दुःखका स्वरूप है नाहीं। तातैं ब्रह्मकै इच्छा कैसैं बनै ?

ब्रह्म की माया

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होतैं ब्रह्मको माया प्रगट भई सो ब्रह्मकै माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसैं रह्या ? बहुरि ब्रह्मकैं अर मायाकै दंडी दंडवत् संयोगसम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो संयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है; अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या ? वहुरि जैसे दंडी दंडकौं उपकारी जानि ग्रहै है तैसैं ब्रह्म मायाकौं उपकारी जानै है तौ ग्रहै है,नाहीं तौ काहेकौं ग्रहै? बहुरि जिस मायाकौं ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसैं सम्भवै, वह तौ उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तौ जैसैं अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसैं ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसैं सम्भवै ? यहु तौ उत्तम भई।

बहुरि वे हैं कहैं कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ है सो समवाय-संबंधविषै ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाहीं। जैसैं प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसैं सम्भवैं ? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तौ भ्रम रूप होता नाहीं ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताकौं कहिए

है—जैसैंकपटी अपने कपटकौं आपजानै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तौ वाही कौं कहिए, जानै कपट किया; ताकै कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए, तिनकौं तो कपटी न कहिए। तैसैं ब्रह्म अपनी मायाकौं आप जानै सो आप तौ भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तौ ब्रह्म ही कौं कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनकौं मायावी काहेकौं कहिए है।

बहुरि पूछिए है, वै जीव ब्रह्म तैं एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तौ जैसैं कोऊ आप ही अपने अंगनिकौं पीड़ा उपजावै तौ ताकौं बाउला कहिए है तैसैं ब्रह्म आप ही आपतैं भिन्न नाहीं ऐसे अन्य जीव तिनकौं मायाकरि दुःखी करै है सो कैसैं बनैं ? बहुरि जो न्यारे हैं तौ जैसैं कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिकौं भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसैं ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि कौं माया उपजाय पीड़ा उपजावै सो भी बनै नाहीं। ऐसैं माया ब्रह्म की कहिए है, सो कैसे सम्भवै ?

जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानना

बहुरि वै कहै हैं, माया होतैं लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना सो तौ ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसैं जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषैं जल भर्‍या है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिंब जुदा जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसैं जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषैं ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है, ब्रह्म एक है; तातैं जीवनिकैं चेतना है सो ब्रह्महींकी है। सो ऐसा कहना भी भ्रम ही

है जातैं शरीर जड़ है, याविषैं ब्रह्मका प्रतिबिंबतैं चेतना भई, तौ घट पटादि जड़ हैं तिनविषैं ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यौं न पड्या अर चेतना क्यों न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरकौं तौ चेतन नाहीं करै है,जीवकौं करै है। तब वाकौं पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तौ चेतन का चेतन कहा करैगा। अचेतन है तौ शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकौं पूछिए है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तौ ज्ञानका अधिक हीनपना कैसैं देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानी कौं न जानै, वह वाकी जानी कौं न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधिका भेद है तौ घटउपाधि होतें तौ चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटैं याकी चेतना ब्रह्म मैं मिलैगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तौ यहु जीव तौ अचेतन रहि जायगा। अर तू कहैगा जीव ही ब्रह्म मैं मिल जाय हैं तौ तहाँ ब्रह्मविषैं मिलैं याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं रहै है। जो अस्तित्व रहै है तौ यहु रह्या, याकी चेतना याकैं रही, ब्रह्मविषैं कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तौ याका नाश ही भया, ब्रह्मविषैं कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहैगा ब्रह्म की अर जीवनिकी चेतना भिन्न भिन्न है तौ ब्रह्म अर सर्वजीव आप ही भिन्न भिन्न ठहरे। ऐसैं जीवनि कैं चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसैं भी बनैं नाहीं।

शरीरादिक का मायारूप होना

शरीरादि माया के कहो सो माया ही हाड मांसादिरूप हो है कि माया के निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय है तौ

माया कैं वर्ण गंधादिक पूर्वें ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वें ही थे तौ पूर्वें तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्त्तीक है तहां वर्णादि कैसें सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए तौ अमूर्त्तीक का मूर्त्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरचा। बहुरि जो कहैगा, माया के निमित्त तैं और कोई हो है तौं और पदार्थ तौ तू ठहरावता ही नाहीं, भया कौन ? जो तू कहैगा,नवीन पदार्थ निपजे। तौ ते मायातें भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातें भिन्न निपजे तौ मायामयी शरीरादिक काहेकौं कहै, वै तौ तिनपदार्थमय भये। अर अभिन्न निपजे तौ माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेकौं कहै। ऐसें शरीरादिक मायास्वरूप हैं ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वै कहै हैं, माया तैं तीन गुण निपजे --राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कैसें बनें ? जातैं मानादि कषायरूप भावकौं राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकौं तामस कहिए है, मंदकषायरूप भावकौं सात्विक कहिए है। सो ए तौ भाव चेतनामई प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो हो, सो जड़तैं ए भाव कैसें निपजैं। जो जड़कै भी होंई तौ पाषाणादिककै भी होय। सो तौ चेतनास्वरूप जीव तिनहीकै ए भाव दीसै हैं। तातैं ए भाव मायातैं निपजे नाहीं। जो मायाकौं चेतन ठहरावै तौ यहु मानें। सो मायाकं। चेतन ठहराएं शरीरादिक मायातैं निपजे कहैगा तौ न मानेंगे तातैं निर्धारकर; भ्रमरूप मानें नफा कहा है ?

बहुरि वै कहैं हैं तिनि गुणनि तें ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसें संम्भवै है ? जातैं गुणीतैं तौ गुण होंइ, गुणतैं

गुण्यी कैसें निपजै। पुरुषतें तौ क्रोध होय, क्रोधतें पुरुष कैसें निपजै। बहुरि इनि गुणनिकी तौ निन्दा करिए है। इनिकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनकौं पूज्य कैसें मानिए है। बहुरि गुण तौ मायामई अर इनिकौं ब्रह्म के अवतार १ कहिए है सो ए तौ माया के अवतार भए, इनकौं ब्रह्मके अवतार कैसें कहिए है? बहुरि ए गुण जिनकै थोरे भी पाइए तिनकौं तौ छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनिही की मूर्ति तिनकौं पूज्य मानिए; यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्त्तव्य भी इनमई भासै है। कौतूहलादिक वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिनि राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो हैं सो इनिकै राजसादिक पाइये है ऐसा कहौ। इनिकौं पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तौ बनै नाहीं। जैसें अन्य संसारी हैं तैसें ए भी हैं। बहुरि कदाचित् तू कहैगा, संसारी तौ माया के आधीन हैं सो बिना जाने तिन कार्यनिकौं करैं हैं। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इनि कार्यनिकौं करे हैं सो यहु भी भ्रम ही है। जातैं माया कै आधीन भए तौ काम क्रोधादिही निपजे हैं और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तौ काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिकै

---

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियां हैं।

विष्णुपु० अ० २२-५८

कलिकालके प्रारम्भमें परमब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचना की। प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल (शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुणसे उत्पन्न हो नारायण बनकर समुद्र में शयन किया। —वायुपु० अ० ७-६८,६९।

वशीभूत भये नृत्यगानादि करते भए, विह्वल होते भए, नानाप्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रहका संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसें वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया, अर रुण्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया, *बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालों की क्रिया इत्यादि जे निंद्य क्रिया तिनकौं तौ करते भए, यातैं अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हो है सो जानी न परी। जैसै कोऊ मेघपटलसहित अमावस्या की रात्रिकौं अंधकार रहित मानैं तैसै वाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिकौं मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै कि इनिकौं काम क्रोधादि व्याप्त नाहीं होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याकौं कहिए है—ऐसें कार्य करैं हैं ते इच्छाकरि करैं है कि बिना इच्छा करैं हैं। जो इच्छाकरि करै हैं तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है, युद्ध करने की इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसैं ही जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तौ आप जाकौं न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय, सो परवशपना कैसें सम्भवै ? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर

* नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने॥ मत्स्य पु० अ० २५०, श्लोक २

अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तौ अन्य जीवनिकौं इनि कार्यनितैं छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकौं दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिकका उपदेश सर्व झूँठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरकौं तौ किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवतार धरै * है। तौ याकौं पूछिए है—प्रयोजन बिना चीटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकौं करै। बहुरि प्रयोजन भी कहो, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसें कोई पुरुष आप कुचेष्टाकरि अपने पुत्रनिकौं सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्तें तब उनकौं मारै, तौ ऐसैं पिताकौं भला कैसें कहिए। तैसें ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकौं प्रवृत्ति करावै। बहुरि वह लोक तैसें प्रवर्तें तब उनकौं नरकादिकविषैं डारै। नरकादिक इनिही भावनिका फल शास्त्रविषैं लिख्या है सो ऐसे प्रभुकौं भला कैसें मानिए? बहुरि तैं यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकौं दुःखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तौ जैसें कोऊ अपने सेवककौं आप ही काहू कौं कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालोकौं आप मारै सो ऐसे स्वामीकौं भला कैसें कहिए। तैसें ही जो अपने भक्तकौं आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछैं तिनि दुष्टनिकौं आप

* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥—गीता ४—८

अवतार धारि मारै तौ ऐसे ईश्वरकौं भला कैसें मानिए ? बहुरि जो तू कहैगा कि विना इच्छा दुष्ट भए तौ कै तौ परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिकौं दुःख देवैंगे, कै पहिलैं ऐसे शक्ति न होगी जो इनिकौं ऐसे न होने दे। बहुरि वाकौं पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धार्‍या, सो कहा, विना अवतार धारें शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तौ अवतार काहेकौं धारै, अर न थी तौ पीछे सामर्थ्य होने का कारण कहा भया। तब वह कहै है ऐसें किए विना परमेश्वर की महिमा प्रगट कैसें होय। याकौं पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग-द्वेष है। सो रागद्वेष तौ लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तौ अन्य जीवनिकौं रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेकौं दीजिए। बहुरि रागद्वेषके अनुसारि कार्य करना विचार्‍या सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे विना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यकौं छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यकौं राजा आप आय करै तौ किछू राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसें जिस कार्यकौं राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यकौं परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तौ किछू परमेश्वर की महिमा होती नाहीं, निंदा ही है। बहुरि महिमा तौ कोई और होय ताकौं दिखाइए है। तू तौ अद्वैत ब्रह्म मानैं है, कौनकौं महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तौ स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि

तू तौ कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तैं हैं अर आपकै स्तुति करावनेकी इच्छा है तौ सबकों अपनी अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेकौं अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनैं।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिकौं करता संता भी अकर्त्ता है, याका निर्द्धार होता नाहीं। याकौं कहिए है—तू कहैगा यह मेरी माता भी है अर बांझ भी है तो तेरा कहा कैसैं मानैंगे। जो कार्य करै ताकों अकर्त्ता कैसै मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार बिना मानि लैंना ठहर्‌या तौ आकाशके फूल, गधेके सींग भी मानौ, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाहीं। ऐसें ब्रह्मा, विष्णु, महेशका होना कहै हैं, सो मिथ्या जानना।

बहुरि वै कहै हैं—ब्रह्मा तौ सृष्टिकौं उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है, सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातैं इनि कार्यनिकों करतैं कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहैगा, ए तौ एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेकौं होय। तौ आप ही उपजावै, आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमें कौन फल है। जो सृष्टि आपकौं अनिष्ट है तौ काहेकौं उपजाई। अर इष्ट है तौ काहेकौं क्षपाई। अर जो पहिलै इष्ट लागी तब उपजाई, पीछै अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसैं है तौ परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहैगा तौ परमेश्वरका एक स्वभाव न ठहर्‌या। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है? सो बताय, बिना कारण स्वभाव

की पलटनि काहेकौं होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहैगा तौ सृष्टि तौ परमेश्वर के आधीन थी, वाकों ऐसी काहेकौं होने दीनी जो आपकौं अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछैं हैं—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसैं उपजावै है। एक तौ प्रकार यहु है—जैसैं मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकठ्ठी करि आकारादि वनावै है तैसैं ही ब्रह्मा सामग्री एकठ्ठी करि सृष्टि रचना करै है तौ ए सामग्री जहाँतैं ल्याय एकठ्ठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्मा ही एती रचना वनाई, सो पहिले पीछैं बनाई होगी कै अपने शरीरकै हस्तादि बहुत किए होंगे सो कसैं है सो बताय। जो बतावेगा तिसही मैं विचार किए विरुद्ध भासैंगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसैं राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैसैं ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनकौं दई। अर जिनिकौं आज्ञा दई वै कहाँतैं सामग्री ल्याय कैसैं रचना करै हैं, सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसैं ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसैं ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है, तौ ब्रह्मा तौ इच्छाहीका कर्त्ता भया। लोक तौ स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तौ परमब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया, जातैं ब्रह्माकौं सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहैगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है, केवल ब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहाँ शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछै हैं - जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तौ बनावनहारा तौ सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रुचना करै। इस लोकविषैं तौ इष्ट पदार्थ थोरे देखिए है, अनिष्ट घनें देखिए है। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तौ रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि बनाए अर लट कीड़ी कूकर सूअर सिंहादिक बनाये सो किस अर्थि बनाए। ए तौ रमणीक नाहीं। भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकिनिकौं देखें आपकौं जुगुप्सा ग्लानि आदि दुःख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेकौं बनाए। तहाँ वह कहै है—जो जीव अपने पापकरि लट कीड़ी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै है। याकौं पूछिए है कि पीछैं तो पापहीका फलतैं ए पर्याय भए कहो परन्तु पहलें लोकरचना करतै ही इनिकौं बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछैं जीव पापरूप परिणए सो कैसैं परिणए। जो आप ही परिणए कहोगे तौ जानिए है ब्रह्मा पहलें तौ निपजाए पीछैं याकै आधीन न रहे। इस कारणतै ब्रह्माकों दुःख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमै हैं तौ तिनिकौं पापरूप काहेकौं परिणमाए। जीव तौ आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातैं एसैं भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषैं सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए, सो तौ रमणैके अर्थि बनाए, कुवर्ण दुर्गंन्धादिसहित वस्तु दुःखदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनिका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तौ नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहैगा, पापी जीवनिकौं दुःख देनेकै अर्थि बनाए। तौ आपहीके निपजाए जीव तिनिस्यौं ऐसी दुष्टता काहेकौं करी जो तिनिकौं दुःखदायक सामग्री

पहले ही बनाई। बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं अर दुःखदायक भी नाहीं, तिनिकौं किस अर्थि बनाए। स्वयमेव तौ जैसें तैसें ही होय अर बनावनहारा तौ जो बनावै सो प्रयोजन लिएं ही बनावै। तातैं ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसें कहिए है?

बहुरि विष्णुकौं लोकका रक्षक कहै हैं। रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै। एक तौ दुःख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशनेके कारण न होने दे। सौ तौ लोकविषैं दुःखहीके उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिए है अर तिनिकरि जीवनिकौं दुःख ही देखिए है। क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं। शीत उष्णादिक करि दुःख हो है। जीव परस्पर दुःख उपजावै हैं, शस्त्रादि दुःखके कारण बनि रहे हैं। बहुरि विनशनेके कारण अनेक बनि रहे हैं। जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है अर अजीवनिकै भी विनशनेके कारण देखिए है। सो ऐसें दोय प्रकारहीकी रक्षा तौ कीन्हीं नाहीं तौ विष्णु रक्षक होय कहा किया। वह कहै है—विष्णु रक्षक ही है। देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं। कीड़ीकौं कण कुञ्जरकौं मण पहुंचावै है। संकटमें सहाय करै है। मरणके कारण बनें टीटोड़ी‡कीसी नाईं उबारै है। इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है। याकौं कहिए है,—ऐसें है तौ जहाँ जीवनिकै

‡ एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था। उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दुःखी होकर गरुड़ पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की, तौ उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणोंमें कथा है।

क्षुधातृषादिक बहुत पीड़ैं, अर अन्न जलादिक मिलैं नाहीं, संकट पड़ैं सहाय न होय, किंचित् कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णुकी शक्ति हीन भई कि वाकौं ज्ञान ही न भया। लोक-विषैं बहुत तौ ऐसैं ही दुःखी हो हैं, मरण पावैं हैं, विष्णु रक्षा काहे कौं न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है। तब वाकौं कहिए है कि जैसैं शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताकौं तौ कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसैं ही तू कहै है कि भला भया तहाँ तौ विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका कर्तव्यका फल भया। ऐसैं झूठी कल्पना काहेकों कीजिए। कै तौ बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहौ। जो विष्णुका किया भया, तौ घनें जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए हैं सो ऐसा कार्य करै ताकों रक्षक कैसैं कहिए? बहुरि अपने कर्त्तव्य का फल है तौ करैगा सो पावैगा, विष्णु कहा रक्षा करैगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त हैं तिनिकी रक्षा करै है। याकों कहिए है कि जो ऐसा है तौ कीड़ी कुञ्जर आद्रि भक्त नाहीं उनकै अन्नादिक पहुँचावनें विषै वा संकट मैं सहाय होनैंविषै वा मरण न होनैंविषैं विष्णुका कर्त्तव्य मानि सर्वका रक्षक काहेकों मानैं, भक्तनिहीका रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं जातैं अभक्त भी भक्त पुरुषनिकौं पीड़ा उपजावते देखिए है। तब वह कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रहलादादिककी सहाय करी है। याकौं कहै हैं—जहाँ सहाय करी तहाँ तौ तू तैसे ही मानि परन्तु हम

तौ प्रत्यक्ष मलेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि व मन्दिरादिककौं विघ्न करते देखि पूछै हैं कि इहां सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं, कि खबर नाहीं। जो शक्ति नाहीं तौ इनितै भी हीनशक्तिका धारक भया। खबर नाहीं तौ जाकों एती भी खबर नाहीं, सो अज्ञान भया। अर जो तू कहैगा, शक्ति भी है अर जानैं भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तौ फिर भक्तवत्सल काहेंकौं कहै। ऐसैं विष्णुकौं लोकका रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वै कहै हैं—महेश संहार करै है, सो वाकौं पूछिए है। प्रथम तौ महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तौ जैसैं विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसैं याकी संहार करनेकरि निंदा करो। जातैं रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसें करै है। जैसैं पुरुष हस्तादिककरि काहूकौं मारै वा काहूकरि मरावै तैसै महेश अपन अंगनिकरि संहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है, तौ क्षण क्षण में संहार तौ घने जीवनिका सर्व लोक मैं हो है, यहु कैसै कैसै अंगनिकरि वा कौन कौनकों आज्ञा देय युगपत् कैसै संहार करै है। बहुरि महेश तौ इच्छा ही करै,याकी इच्छा तैं स्वयमेव उनका संहार हो है तौ याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणाम ही रह्या करते होंगे. अर अनेक जीवनिके युगपत् मारनेकी इच्छा कैसें होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होतैं संहार करै है तौ परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्मकै ऐसा क्रोध कैसैं भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातैं कोई कारण विना नाश करने की

इच्छा होय नाहीं। अर नाश करने की जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है, सो कारन बताय। वहुरि तू कहैगा परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूरि किया, कारन किछू भी नाहीं; तौ ख्याल बनादे वालेकौं भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूरि करै है। जो याकौं यहु लोक इष्ट अनिष्ट लागै है, तौ याकै लोकस्यौं रागद्वेष भया। साक्षीभूत परमब्रह्मका स्वरूप काहेंकों कहो हौ। साक्षीभूत तौ वाका नाम है जो स्वयमेव जैसें होय तैसं देख्या जान्या करै। जो इष्ट अनिष्ट मानि उपजावै, नष्ट करै ताकौं साक्षीभूत कैसें कहिए, जातैं साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी हैं। एककै दोऊ सम्भवै नाहीं। परमब्रह्मकै पहिलै तौ इच्छा यहु भई थी कि "मैं एक हूँ सो बहुत होस्यूँ" तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मैं बहुत हूँ सो एक होस्यूँ" सो जैसें कोऊ भोलपतैं(भोलेपनमें)कार्य करि पीछैं तिस कार्यकौं दूरि किया चाहै तैसैं परमब्रह्म बहुत होय एक होनेकी इच्छा करी सो जानिए है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलपहीतैं किया। आगामी ज्ञानकरि किया होता तौ काहेकौं ताके दूरि करने की इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश संहार करै है तौ यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्माका विरोधी भया। बहुरि पूछै हैं, यहु महेश लोककौं कैसें संहार करै है। अपने अंगनिकरि संहार करै है कि इच्छा होतैं स्वयमेव ही संहार होय है? जो अपने अंगनिकरि संहार करै है तौ सर्वका युगपत् संहार कैसें करै है? बहुरि याकी इच्छाहोतैं स्वयमेव संहार हो है तौ इच्छातौ परमब्रह्म कीन्ही थी, यानै संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछै हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहां गए ? तब वह कहै है—जीवनिविषैं भक्त तौ ब्रह्मविषै मिले अन्य मायाविषै मिले। अब याकों पूछिए है कि माया ब्रह्मतैं जुदी रहै है कि पीछैं एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तौ ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर माया ब्रह्ममें एक होय जाय है तौ जे जीव मायामैं मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्ममैं मिल गए। तौ महाप्रलय होतैं सर्वका परमब्रह्ममैं मिलना ठहरचा ही तौ मोक्षका उपाय काहेकौं करिए। बहुरि जे जीव मायामैं मिले, ते बहुरि लोकरचना भए वै ही जीव लोकविषैं आवेंगे कि वे तौ ब्रह्ममैं मिल गए थे, अब नए उपजेंगे। जो वे ही आवैंगे तौ जानिए है जुदे जुदे रहै हैं मिले काहेकौं कहो। अर नए उपजैंगे तौ जीव का अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेकौं मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथवी आदिक हैं ते मायाविषैं मिलैं हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तौ अमूर्त्तीकमैं मूर्त्तीक अचेतन कैसैं मिलै ? अर मूर्त्तीक अचेतन है तौ यहु ब्रह्ममैं मिलै है कि नाहीं। जो मिलै है तौ याके मिलनेतैं ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तौ अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा, ए सर्व अमूर्त्तीक चेतन होइ जाय है तौ आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकता मानै ही है, याकौं अज्ञानी काहेकौं कहिए। बहुरि पूछैं हैं—लोकका प्रलय होतैं महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तौ युगपत् हो है कि आगैं पीछैं हो है। जो युगपत् हो है तौ आप नष्ट

होता लोककौं नष्ट कैसैं करै। अर आगे पीछैं हो है तौ महेश लोककौं नष्टकरि आप कहाँ रह्या, आप भी तो सृष्टिविषैंही था, ऐसैं महेशकौं सृष्टिका संहारकर्त्ता मानै है सो असम्भव है। याप्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकार करि ब्रह्मा विष्णु महेशकौं सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, संहार करनहारा मानना मिथ्या जान लोककौं अनादि निधन मानना।

इस लोकविषैं जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे न्यारे अनादि निधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटन हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिए है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितैं ऐसैं ही हैं अर सदा काल ऐसैं ही रहैंगे। कदाचित् तू कहैगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसैं भए, सो भए हौंय तौं बनाए ही हौंय। सो ऐसा नाहीं है जातैं अनादितैं ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसैं तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधनमानै है तैसैं ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए है। तू कहैगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसैं भए? हम कहैंगे परमब्रह्म कैसैं भया। तू कहैगा इनकी रचना ऐसी कौन करी? हम कहैंगे परमब्रह्मकों ऐसा कौन बनाया। तू कहेगा परमब्रह्मस्वयंसिद्ध है। हम कहैं हैं जीवादि वा स्वर्गादि स्वयंसिद्ध हैं। तू कहैगा इनकी अर परमब्रह्मकी समानता कैसैं सम्भवै? तौ सम्भवने विषैं दूषण बताय। लोककौं नवा उपजावना, ताका नाश करना, तिसविषैं तौ हम अनेक दोष दिखाये। लोककौं अनादिनिधन माननेतैं कहा दोष है? सो तूं बतायं। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए संसारविषैं जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतैं सर्वज्ञ

वीतराग हो हैं ।

इहाँ प्रश्न—जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछैं तो निराकार हो हैं तहाँ न्यारे न्यारे कैसैं सम्भवैं ?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछैं सर्वज्ञकौं दीसै हैं कि नाहीं दीसै हैं। जो दीसै हैं तौ किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखें कहा देख्या अर न दीसै है तौ कै तौ वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाहीं । तातैं इन्द्रियगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातैं आकारवान् है। जब आकारवान् ठहरया तब जुदा जुदा होय तौ कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तौ हम भी मानैं हैं। जैसैं गेहूँ भिन्न भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसैं एक मानैं तो किछू दोष है नाहीं । या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषैं सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन माननें। बहुरि जो वृथा ही भ्रम-करि साँच झूंठ का निर्णय न करै तौ तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावैगा ।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतैं पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषैं राक्षस मनुष्य देव तिर्यंचनिकै परस्पर प्रसूतिभेद बतावै हैं तहाँ देवतैं मनुष्य वा मनुष्यतैं देव वा तिर्यंचतैं मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातैं कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावैं सो कैसैं सम्भवै ? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूंघने आदिकरि प्रसूति

होनी बतावै हैं, सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसें होतें पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसें रह्या ? बहुरि बड़े बड़े महन्तनिकौं अन्य अन्य मातापितातैं भए कहैं हैं। सो महंतपुरुष कुशीली मातापिताकै कैसें उपजें ? यहु तौ लोकविषैं गालि है। ऐसा कहि उनकी महंतता काहेकौं कहिए है।

अवतारवाद विचार

बहुरि गणेशादिककी मैल आदिकरि उत्पत्ति बतावैं हैं। वा काहूके अंग काहूकै जुरै बतावै हैं। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्ध कहै हैं। बहुरि चौईस अवतार* भए कहै हैं, तहाँ केई अवतारनिकौं पूर्णावतार कहैं हैं। केईनिकौं अंशावतार कहै हैं। सो पूर्णावतार भए, तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापि रह्या कि न रह्या। जो रह्या तौ इनि अवतारनिकौं पूर्णावतार काहेकौं कहौ। जो व्याप न रह्या तौ एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अंशावतार भए तहाँ ब्रह्मका अंश तौ सर्वत्र कहौ हो, इनविषै कहा अधिकता भई। बहुरि कार्य तौ तुच्छ तिसके वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारचा कहैं सो जानिये है, विना अवतार धारें ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्य के करनेकी न थी। जातैं जो कार्य स्तोक उद्यमतैं होइ तहाँ बहुत उद्यम काहेकौं करिए। बहुरि अवतारनिविषैं मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप भए, सो कैसें

---

* सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षिनारद ३ नरनारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १० कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

सम्भवै? बहुरि प्रहलादके अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणांकुशकौं ऐसा काहेकौं होनें दिया। अर कितनैक काल अपने भक्तौंकौं काहेकौं दुःख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेकौं धर्या। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावै हैं सो नाभिकौं पुत्रपनेका सुखउपजावनेकौं अवतार धार्या। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनकौं तौ किछु साध्य था ही नहीं। अर कहैगा जगत्के दिखावनैकौं किया तौ कोई अवतार तौ तपश्चरण दिखावै,कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसकौं भला जानि लागै।

बहुरि वह कहै है—एक अरहंत नाम का राजा भया १ सो वृषभावतारका मत अंगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषैं कोई एक अरहंत भया नाहीं। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इनि दोउ अवतारनिकौं मुख्य कहैं हैं सो रामावतार कहाकिया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसौं लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलें गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति चेष्टाकरी २ पीछैंजरासिंधु आदिकौं मारि राज किया। सो ऐसे कार्य करने मैं कहा सिद्धि भई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहैं। सो बीचमैं इतने काल कहां रहे? जो ब्रह्मविषै रहे, तौ जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तौ जानिए है, ए ब्रह्मतैं जुदे रहे हैं। एक रहे तौ राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मणी

१—भागवत स्कंध ५ अ० ६,७,११

२—विष्णु पु० अ० १३ श्लोक ४५ से ६० तक
ब्रह्मपुराण अ० २८९ और भागवत स्कंध अ० १०—३०,४८

भई इत्यादि कैसें कहिए है। बहुरि रामावतारविषें तौ सीताकौं मुख्य करैं अर कृष्णावतारविषें सीताकौं रुक्मणी भई कहैं अर ताकौ प्रधान न कहैं,राधिका कुमारी ताकौं मुख्य करैं। बहुरि पूछैं तब कहैं राधिका भक्त थी, सो निजस्त्रीकौं छोरि दासीका मुख्य करना कैसें बनें? बहुरि कृष्णकै तौ राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी। ऐसे कार्यतौ महानिंद्य हैं। बहुरि रुक्मणीको छोरि राधाकौं मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकौं भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधाहीविषैं आसक्त न भया अन्य गोपिका कुब्जा*आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसे ही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहैं—लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककौं लक्ष्मी कहैं सो ए तौ पृथ्वी आदि विषैं जैसें पाषाण धूलि है तैसें ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिककौं मायाका स्वरूप कहैं सो इनिविषं आसक्त भए तब मायाविषें आसक्त कैसें न भया। कहां ताईं कहिए जां निरूपण करैं सो विरुद्ध करैं। परन्तु जीवनिकौं भोगादिककी वार्ता सुहावै, तातैं तिनिका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहे हैं, इनिकौं ब्रह्मस्वरूप कहैं हैं। बहुरि औरनिकों भी ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। एक तो महादेवकों ब्रह्मस्वरूप मानै हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारैं हैं, सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरैं हैं सो हाड़ांका छीवना भी निंद्य है ताकौं गलेमैं किस अर्थि धारै है। सर्पादि सहित है सो यामैं

* भागवतस्कंध १० अ० ४८,-१-११

कौन बड़ाई है। आक धतूरा खाय है सो यामैं कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखै है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग लिए भी है सो योगी होय स्त्री राखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकौं किया। कामासक्त था तौ घर ही में रह्या होता। बहुरि वानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्हीं ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाहीं। बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकौं ब्रह्मस्वरूप कहैं।

बहुरि कृष्णकौं याका सेवक कहैं, कबहूँ याकौं कृष्णका सेवक कहैं, कबहू दोऊनिकौं एक ही कहैं.किछू ठिकाना नाहीं। बहुरि सूर्य्यादिककौं ब्रह्मका स्वरूप कहैं। बहुरि ऐसा कहै जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूंठ इत्यादिमें मैं ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाहीं। कोई एक अंगकरि संसारी जाकौं महंत मानै ताहीकौं ब्रह्मका स्वरूप कहैं। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है ऐसा विशेष काहेकौं किया। अर सूर्यादिविषैं वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तौ सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिक भी उजाला करै हैं, सुवर्णवत् रूपालोहा आदि भी धन हैं इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषैं भी हैं तिनिकौं भी ब्रह्म मानौं। बड़ा छोटा मानौं परन्तु जाति तौ एक भई। सो झूंठी महंतता ठहरावनेके अर्थि अनेकप्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवीनिकौं मायाका स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं सो माया तौ निंद्य है ताका पूजना कैसैं सम्भवै ? अर हिंसादिक करना कैसैं भला होय। बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्यभक्षणादिसहित तिनिकौं पूज्य

कहैं। अग्नि पवन जलादिककौं देव ठहराय पूज्य कहैं। वृक्षादिककौं युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होंय तिनिविषैं ब्रह्मकी कल्पना करैं अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होंय तिनिविषैं मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावैं हैं। इनिके पूजे कहा होयगा सो किछू विचार नाहीं। झूंठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकौं भ्रमावैं हैं। बहुरि वै कहै हैं—विधाता शरीरकों घड़ै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवै हैं, मूएं पीछैं मार्गविषैं बहुतकाल लागै है, बहुरि तहाँ पुण्य पाप का लेखाकरैं हैं, बहुरि तहाँ दंडादिक दे हैं। सो ए कल्पित झूंठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजैं मरै तिनका युगपत् ऐसे होना कैसे सम्भवै ? अर ऐसैं माननेका कोई कारण भी भासै नाहीं।

बहुरि मूएं पीछैं श्राद्धादिककरि याका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दुःखी होता दीसै नाहीं, मूएं पीछैं कैसै होइ। ए युक्ति मनुष्यनिकों भ्रमाय अपने लोभ साधनेकें अर्थि बनाई है। कीड़ी पतंग सिंहादिक जीव भी तौ उपजै मरैं हैं उनकौं तौ प्रलय के जीव ठहरावैं। सो जैसैं मनुष्यादिककै जन्म मरण होते देखिए है, तैसैं उनकें होते देखिए है। झूंठी कल्पना किए कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषैं कथादिक निरूपै हैं तहाँ विचार किएं विरुद्ध भासै।

यज्ञमें पशुवधसे धर्म कल्पना

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावैं हैं। सो तहाँ बड़े जीवनिका होम करै हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै हैं, तहाँ जीवघात हो

है सो उनहीके शास्त्रविषैं वा लोकविषैं हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं। अर कहैं – "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" ए यज्ञ ही कै अर्थि पशु बनाए हैं। तहाँ घातकरनेका दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकौं भ्रमावै। सो कोई विषतें जीवनां कहै, सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है तैसें हिंसा किएं धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनिकी हिंसा करनी कही, तिनिकी तौ किछू शक्ति नाहीं उनकी काहूकौं पीर नाहीं। जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तौ ठीक पड़ता। बहुरि पापका भय नाहीं, तातैं पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषैं तत्पर भए हैं।

बहुरि मोक्षमार्ग ज्ञानयोग भक्तियोग करि दोय प्रकार प्ररूपै हैं। अब (अन्य मत के) ज्ञानयोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं: –

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्मकौं जानना ताकौं ज्ञान कहै हैं सो ताका मिथ्यापना तौ पूर्वैं कह्या ही है। बहुरि आपकौं सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिककौं भ्रम जानना ताकौं ज्ञान कहै हैं सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तौ मोक्षका उपाय काहेकौं करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहर्‍या, तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए अर शरीरादिकका संयोग देखिए है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका

सद्भाव मानना भ्रम कैसें भया ? बहुरि कहै हैं, मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसें जेवरी तौ जेवरी ही है ताकौं सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेंटें जेवरी ही है। तैसें आप तौ ब्रह्म ही है, आपकौं अशुद्ध जानैं था सो भ्रम था भ्रम मेटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताकौं अशुद्ध जानै तौ भ्रम, अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकौं अशुद्ध जानै तौ भ्रम कैसे होइ ? शुद्ध जानैं भ्रम होइ झूंठा भ्रम-करि आपकौं शुद्ध ब्रह्म मानें कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहैगा, ए काम क्रोधादिक तौ मनके धर्म हैं, ब्रह्म न्यारा तौ तुझकूं पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तौ काम क्रोधादिकभी तेरे ही भए। अर नाहीं है तौ तू ज्ञानस्वरूप है कि जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तौ तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रियद्वारा ही होता दीसै है। इनि विना कोई ज्ञान बतावै तौ ताकौं जुदा तेरा स्वरूप मानैं, सो भासता नाहीं। 'मन ज्ञाने' धातुतें मन शब्दनिपजै है सो मन तौ ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकौं बताय। सो जुदा कोऊ भासै नाहीं। बहुरि जो तू जड़ है तौ ज्ञान विना अपने स्वरूपका विचार कैसें करै है, यहु बनै नाहीं। बहुरि तू कहै है, ब्रह्म न्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तौ तेरे 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा माननेवाला जो ज्ञान है सो तौ मनस्वरूप ही है, मनतें जुदा नाहीं। आपा मानना आपहीविषैं होय। जाकौं न्यारा जानैं तिसविषैं आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतें न्यारा ब्रह्म है तौ मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषैं आपा काहेकौं मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तौ तू ब्रह्मविषैं आपा काहेकौं मानै

तातैं भ्रम छोड़ि ऐसा मानि, जैसैं स्पर्शनादि इन्द्रिय तौ शरीरका स्वरूप है सो जड़ है,याकै द्वारिजो जानपनौ हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसें ही ब्रह्म भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अंग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो हैं सो सर्व आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना जो जानपनां तौ निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव हैं तिसकरि आत्मा अशुद्ध है! जब कालपाय क्रोधादिक मिटेंगे अर जानपनाकै मन इन्द्रियका आधीनपनां मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसें ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लैनें जातैं मन अर बुद्धयादिक एकार्थ हैं। अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनिकौं आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनकौं अपनें जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितैं इनिका अभाव न होय सकै, अर अपनी महंतता चाहैं ते जीव इनिकौं अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तें हैं। क्रोधादिक भावनिकौं बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषें तत्पर हो हैं। बहुरि अहंकारादिक का त्यागकौं भी अन्यथा मानै हैं। सर्वकौं परब्रह्म मानना, कहीं आपो न मानना ताकौं अहंकारका त्याग बतावैं सो मिथ्या है जातैं कोई आप है कि नाहीं। जो है तौ आपविषैं आपो कैसें न मानिए, जो आप नहीं है तो सर्वकौं ब्रह्म कौन मानै है? तातैं शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहाँ करता न होना सो अहंकारका त्याग है। आप विषैं अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वकौं समान जानना, कोई विषैं भेद न करना ताकौं राग द्वेषका त्याग बतावै हैं सो भी

मिथ्या है। जातैं सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कैसा है कोई कैसा है तिनिकौं समान कैसैं मानिए ? तातैं परद्रव्यनिकौं इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जाननें मैं तौ किछू दोष है नाहीं। ऐसैं ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकै अन्यथा कल्पना करै हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवैं हैं, अभक्ष्य भखै हैं, वर्णादि भेद नाहीं करै हैं, हीन क्रिया आचरै हैं इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्तें हैं। जब कोऊ पूछै तब कहै हैं, ए तौ शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसैं हो है अथवा जैसैं ईश्वरकी इच्छा हो है तैसैं हो है। हमकौं तौ विकल्प न करना। सो देखो झूठ, आप जाँनि जाँनि प्रवर्त्तैं ताकौं तौ शरीरका धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकौं प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताकौं ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प कर अर हमकौं तौ विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवनें, तातैं ऐसी झूंठी युक्ति बनावै हैं। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तौ हम याका कर्त्तव्य न मानें। जैसैं आप ध्यान धरैं तिष्ठै, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि आवै तहां आप किछू सुखो न भया, तहां तौ ताका कर्त्तव्य नाहीं सो सांच अर आप वस्त्रकौं अंगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो कर्त्तव्य न मानै सो कैसैं बने। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तौ परिणाम मिले बिना होते ही नाहीं। तहां अपना कर्त्तव्य कैसैं न मानिए। तातैं काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तौ तहाँ किसी क्रियानिविषै प्रवृत्ति सम्भवै ही नाहीं। अर

जो कामक्रोधादि पाईए है तौ जैसें ए भाव थोरे होंय तैसें प्रवृत्ति करनी। स्वछन्द होय इनिकौं बधावना युक्त नाहीं।

भक्तियोग मीमांसा

तहां भक्ति निर्गुण भेदकरि दोयप्रकार कहै हैं। तहाँ अद्वैत परब्रह्मकी भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसें करै हैं — तुम निराकार हो, निरंजन हो, मन बचनकै अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावें हैं। सो इनिविषैं केई तौ निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनिकौं सर्वथा मानै अभाव ही भासै। जातैं आकारादि विना वस्तु कैसें होइ। बहुरि केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी हैं सो तिनिका असम्भवपना पूर्वैं दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहैं—जीवबुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूँ' सो ए तीनौं ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तौ यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है। जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूँ ऐसा मानना तौ चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरचा अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहां दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसें बनै? दास स्वामीका सम्बन्ध तौ भिन्नपदार्थ होय तब ही बनें। बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तौ यहु अपनी चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरचा तौ मैं अंश हौं वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है

तौ जड़कै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसा बुद्धि कैसैं भई। तातैं 'मैं दास हूँ' ऐसा कहना तो तब ही बनैं जब जुदे-जुदे पदार्थ होंय। अर 'तेरा मैं अंश हूँ' ऐसा कहना बनैं ही नाहीं। जातैं 'तू' अर 'मैं' ऐसा तौ भिन्न होय तब ही बनैं, सो अंश अंशी भिन्न कैसैं होंय ? अंशी तौ कोई जुदा वस्तु है नाहीं, अंशनिका समुदाय सो ही अंशी है। अर 'तू है सो मैं हूँ' ऐसा वचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषैं आपो भी मानैं अर पर भी मानैं सो कैसैं सम्भवै ? तातैं भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै हैं सो जाका नाम जपैं ताका स्वरूप पहचानें विना केवल नामहीका जपना कैसैं कार्यकारी होय। जो तू कहैगा, नामहीका अतिशय है तौ जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरचा, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषैं फलकी समानता होय सो कैसैं बनैं। तातैं स्वरूपका निर्णयकरि पीछैं भक्तिकरनेयोग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसें निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहाँ क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताकौं सगुणभक्ति कहै हैं। तहाँ सगुणभक्तिविषैं लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसैं नायक नायिकाका करिए तैसैं ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै हैं। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी संयोगवियोगरूप सर्व-व्यवहार तहाँ निरूपै हैं। बहुरि स्नान करतीं स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटनां, स्त्रीनिके पगां पड़ना, स्त्रीनिके आगैं नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकौं संसारी जीव करते लज्जित होंय तिनि कार्यनिका करना ठहरावै हैं। ऐसा कार्य अति काम पीड़ित भए ही बनैं। बहुरि

युद्धादिक किए कहैं तो ए क्रोध के कार्य हैं। अपनी महिमा दिखावनें के अर्थि उपाय किए कहैं सो ए मान के कार्य हैं। अनेक छल किए कहैं सो मायाके कार्य हैं । विषयसामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहैं सो ए लोभके कार्य हैं। कोतूहलादिक किए कहैं सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसैं ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिकौ प्रगटकरि कहैं, हम स्तुति करैं हैं। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तौ निंद्य कौन ठहरैंगे। जिनकी लोकविषैं, शास्त्रविषैं अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तौ हस्तचुगलकाही कार्य भया। हम पूछैं हैं कोऊ किसीका नाम तौ कहै नाहीं अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहैं कि किसीनें ऐसे कार्य किए हैं,तब तुम वाकौं भला जानौं कि बुरा जानौं। जो भला जानौं तौ पापी भले भए, बुरा कौंन रह्या। बुरे जानौं तौ ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा, भया। पक्षपातरहित न्याय करौ। जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करनेमैं कहा सिद्धी भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेंके अर्थि किए तौ परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमैं आपकै वा अन्यकै कहा नफ़ा भया। तातैं ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य नाहीं किए तुम ही कहो हौ, तौ जामैं दोष न था ताकौं दोष लगाया, तातैं ऐसा वर्णन करना तौ निंदा है, स्तुति नाहीं। बहुरि स्तुति करतैं जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होंय वा तिनिही विषैं

अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करना आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादिविषै अनुरागी होय तौ ऐसे भाव तो भले नाहीं। जो कहोगे,भक्त ऐसा भाव न करै हैं तौ परिणाम भएं बिना वर्णन कैसें किया। तिनिका अनुराग भएं बिना भक्ति कैसें करी। सो ए भाव ही भले होंय तौ ब्रह्मचर्यकौं वा क्षमादिककौं भले काहेकौं कहिए। इनिकै तौ परस्पर प्रतिपक्षीपनां है। बहुरि सगुणभक्तिकरनेके अर्थि रामकृष्णादिककी मूर्ति शृङ्गारादि किएं वक्रवादिसहित स्त्रीआदि संग लिए बनावें हैं, जाकों देखतें ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवैं बहुरि महादेवके लिंगहीका आकार बनावै हैं। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए ही लाज आवै, जगत् जिसको ढाँक्या राखै ताका आकारका पूजन करावै हैं। कहा अन्य अंग वाकै न थे। परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नानाप्रकार विषयसामग्री भेली करैं। बहुरि नाम तो ठाकुरका करै अर तिनिकौं आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकौं भोग लगाया कहै, पीछे आपही प्रसादकी कल्पनाकरि तांका भक्षणादि करै। इहां पूछिये है, प्रथम तौ ठाकुरकै क्षुधा तृषा पीड़ा होसी। न होइ तौ ऐसी कल्पना कैसें सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीड़ित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुःखी भया, औरका दुःख दूरि कैसें करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तौ उनकै अर्थि अर्पण करी,सो करो,पीछैं प्रसाद तौ ठाकुर देवै तब होय,आपहीका तौ किया न होय जैसें कोऊ राजाका भेंट करि पीछैं राजा बक्सै तौ ताकौं ग्रहण करना योग्य अर आप राजा की भेंट करै अर राजा तौ किछू कहै

नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाकौं अंगीकार करै तौ यहु ख्याल (खेल) भया। तैसे इहाँ भी ऐसैं किएं भक्ति तौ भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तौ भेंट करी पीछैं ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजै, आपही तैं ग्रहण काहेकौं करै है। अर तू कहैगा ठाकुरकी तौ मूर्ति है तातैं मैं ही कल्पना करूं हूँ, तौ ठाकुरका करनेका कार्य तैं ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो, तौ भेंट करनी, प्रसाद कहना भूंठा भया। एक भएं यहु व्यवहार सम्भवै नाहीं तातैं भोजना-सक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरकै अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषै संसारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहाँ नाम तौ ठाकुरका लैंन। अर इन्द्रियनिकै विषय अपनं पोषनैं सो विषयाशक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना हास्यादिककी कल्पना तहाँ करै है सो जैसैं लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करैं, तैसैं यहु कोतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि लड़के ठाकुरका स्वांग बनाय, चेष्टा दिखावैं। ताकरि अपने विषय पोषें अर कहै यहु भी भक्ति, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषैं पाईए है। ऐसैं दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहैं सो ताकौं मिथ्या दिखाया।

पवनादि साधनद्वारा ज्ञानी होनेकी मान्यता

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपकौं ज्ञानी मानैं हैं तहां

इडा पिंगल सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहाँ वर्णादिक भेदनि हीकौं पवन पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै हैं। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतैं निमित्तका ज्ञान होय तातैं जगतकौं इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महंत कहावै सो यह तौ लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाहीं। जीवनिकौं इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामैं कहा सिद्धि है ? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवनकौं चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तौ जैसैं नट साधनतैं हस्तादिक क्रिया करै तैसैं यहाँ भी साधनतैं पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तौ शरीर ही के अंग हैं। इनिके साधनत आत्महित कैसैं सधै ? बहुरि तू कहैगा—तहाँ मनका विकल्प मिटै है,सुख उपजे है,यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसैं निद्राविषैं चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है तैसे पवन साधनतैं यहाँ चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहाँ मनकों रोकि राख्या है, किछू वासना तौ मिटी नाहीं। तातैं मनका विकल्प मिट्या न कहिए अर चेतना विना सुख कौन भोगवै है तातैं सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तौ इस क्षेत्रविषै भए हैं तिनि विषैं कोई अमर दीसता नाहीं। अग्नि लगाएं ताका भी मरण होता दीसै है तातैं यमके वशीभूत नाहीं, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहाँ साधन विषैं किछू चेतना रहै अर तहाँ साधनतैं शब्द सुनै, ताकौं अनहद नाद बतावै। सो जैसैं वीणादिकके शब्द सुननेतैं सुख मानना तैसैं तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहां तौ विषयपोषण भया, परमार्थ तौ किछू नाहीं ठहर्या। बहुरि पवनका निकसनैं पैठनैंविषै "सोहं" ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताकौं 'अजया जाप' कहै हैं। सो जैसें तीतरके शब्दविषैं 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं तैसै यहां 'सोहं' शब्दकी कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्दके जपने सुननेंतें ही तौ किछू फलप्राप्ति नाहीं, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो 'सोहं' शब्दका तौ अर्थ यह है 'सो हूँ छू', यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातें तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातें वस्तुका निर्णयकरि ताविषैं अहंबुद्धि धारनें विषैं 'सोहं' शब्द बनें। तहाँ भी आपकौं आप अनुभवै, तहाँ तौ 'सोहं' शब्द सम्भवै नाहीं। परकौं अपने स्वरूप बतावनेविषै 'सोहं' शब्द सम्भवै है। जैसें पुरुष आपकौं आप जानै, तहाँ 'सो हूँ छू' ऐसा काहेकौं विचारै। कोई अन्य जीव आपकौं न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाकौं कहिए 'जो ऐसा है सो मैं हूँ' तैसें ही यहाँ जानना। बहुरि केई ललाट भौंह अर नासिकाके अग्रभागके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदिकां ध्यान भया कहि परमार्थ मानें, सो नेत्रकी पूतरी फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी, यामैं कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितें किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषैं गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषैं आरोग्यतादिक होय तौ ए तौ सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककैं स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितें किछू अपना भला तौ होता नाहीं; भला तौ विषयकषायकी

वासना मिटें होय। सो ए तौ विषयकषायपोषनेंके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषैं कष्ट मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाहीं। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषैं लागै हैं। बहुरि काहूकौं बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावै हैं। काहूकौं सुगमपनैं ही मोक्ष भया कहैं। उद्धवादिककौं परम भक्त कहैं, तिनकौं तौ तपका उपदेश दिया कहैं; वेश्यादिककै विना परिणाम केवल नामादिकहीतैं तरना बतावैं, किछू थल है नाहीं। ऐसें मोक्षमार्गकौं अन्यथा प्ररूपै हैं।

मोक्षके विभिन्न स्वरूप

बहुरि मोक्षस्वरूपकौं भी अन्यथा प्ररूपै हैं। तहाँ मोक्ष अनेक प्रकार बतावै हैं। एक तौ मोक्ष ऐसा कहैं हैं—जो वैकुण्ठधामविषैं ठाकुर ठकुराणीसहित नानाभोगविलास करै हैं तहाँ जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै, सो मोक्ष है। सो यहु तौ विरुद्ध है। प्रथम तौ ठाकुर भी संसारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तौ जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षकौं पाय तहाँ टहल किया करै तौ जैसें राजा की चाकरी करनी तैसें यहु भी चाकरी भई, तहाँ पराधीन भए सुख कैसें होय? तातैं यहु भी बनै नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—ईश्वरके समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तौ बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरैगा। सबही ठहरें तौ भिन्न

इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तौ समानता न भई। न्यून है ताकै नीचापनैंकरि उच्चता होनेकी आकुलता रही, तब सुखी कैसें होय ? जैसें छोटा राजाकै बड़ा राजा संसारविषैं हो हैं तैसें छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषैं भी भया सो बनैं नाहीं ।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठविषैं दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषैं ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तौ मूर्त्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसें सम्भवै ? बहुरि ज्योतिमैं ज्योति मिलें यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है । जो रहै है तौ ज्योति बधती जायसी। तब ज्योतिविषैं हीनाधिकपनौं होसी । अर विनशि जाय है तौ आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसें मानिए। तातैं ऐसें भी बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु मायाका आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यों एक था कि जुदा था। जो एक था तौ ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भए ब्रह्मविषैं मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं। जो रहै है तौ सर्वज्ञकौं तौ याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतैं मिल्या कहो; परन्तु परमार्थतैं तो मिल्या नाहीं। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तौ आपका अभाव होना कौन चाहै, तातैं यहु भी न बनैं।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकौं ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिनिकै आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसें कहना तौ बनैं

है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तौ पाषाणादि समान जड़ अवस्थाकौं भली मानिए। बहुरि भला साधन करतें तौ जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसें मानिए? बहुरि लोकविषै ज्ञानकी महंततातें जड़पनाकी महंतता नाहीं तातें यहु बनै नाहीं। ऐसें ही अनेकप्रकार कल्पनाकरि मोक्षकौं बतावैं सो किछू यथार्थ तौ जानैं नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषैं कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बोलै हैं। याप्रकार वेदांतादि मतनिविषै अन्यथा निरूपण करै हैं।

मुस्लिम मत विचार

बहुरि ऐसें ही मुसलमानोंके मतविषैं अन्यथा निरूपण करै हैं। जैसें वे ब्रह्मकौं सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसें ए ख़ुदाकौं मानै हैं। बहुरि जैसें वे अवतार भए मानैं हैं तैसें ए पैगम्बर भए मानैं हैं। जैसें वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावै हैं तैसें ए खुदाकै ठहरावै हैं। बहुरि जैसें वे ईश्वरकी भक्तितें मुक्ति कहै हैं तैसें ए खुदाकी भक्तितें कहै हैं। बहुरि जैसें वे कहीं दया पोषैं कहीं हिंसा पोषैं, तैसें ए भी कहीं मेहर करनी पोषैं कहीं जिबह करना पोषैं। बहुरि जैसें वे कहीं तपश्चरण करना पोषैं कहीं विषयसेवन पोषैं तैसें ही ए भी पोषैं हैं। बहुरि जैसें वे कहीं मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करैं, कहीं उत्तम पुरुषोंकरि तिनिका अंगीकार करना बतावैं तैसें ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावैं हैं। ऐसें अनेकप्रकारकरि समानता पाइए है। यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि प्रयोजनभूत अर्थकी एकता

पाईए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूलश्रद्धानकी तौ एकता है अर उत्तरश्रद्धानविषैं घनें ही विशेष हैं। तहाँ उनतैं भीं ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादि पापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतैं विरुद्ध निरूपण करैं हैं। तातैं मुसलमानोंका मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषैं जिनमतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहाँ कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तौ बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषैं कैसें प्रवर्तैं हैं ?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितैं है सो इनिविषैं मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तैं है सो इनि विषैं विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनि वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषैं विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तौ लोकनिंद्यपनांकौं भी उलंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिकौं किया चाहै तिनि कार्यनिकौं करतैं धर्म बतावैं तौ ऐसे धर्मविषै कौन न लागै। तातैं इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनिविषैं विरागता दया इत्यादि भी तौ कहै हैं, सो जैसें झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसे सांच मिलाए बिना झूंठ चालै नाहीं; परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषैं विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसें गीताविषैं उपदेश देय रारि (युद्ध) करावनेंका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होनेंका प्रयोजन दिखाया। ऐसें ही अन्य

जानने। बहुरि यहु काल तौ निकृष्ट है सो इसविषैं तौ निकृष्ट धर्महीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषैं मुसलमान बहुत प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषै और बधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसैं इहाँ अवार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपनाके बलतैं कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषैं जे तत्त्वादिक मानिए है तिनिका निरूपण कीजिए है:—

सांख्यमतविचार

तहाँ सांख्यमतविषैं पच्चीस तत्त्व मानैं हैं१ सो कहिए है—सत्त्व रज: तम: ए तीन गुण कहै हैं। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है, तमोगुणकरि मूढ़ता हो है इत्यादि लक्षण कहै हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महतत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहाँ पांच तौ ज्ञानइन्द्रिय हो है—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय हो हैं—बचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतैं अग्नि, रसतैं जल, गंधतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसैं भया कहै हैं। ऐसैं चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिस्वरूप हैं।

१—प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशक:।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्य: पंचभूतानि ॥—सांख्य का० १२

इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व कहे हैं सो ए कल्पित हैं जातैं राजसादिक गुण आश्रयविना कैसैं होंय। इनका आश्रय तौ चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहैं सो बुद्धि नाम तौ ज्ञानका है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थ-विषैं ए होते देखिए है। इनितैं ज्ञान भया कैसैं मानिए। कोई कहै— बुद्धि जुदी है, ज्ञान जुदा है तौ मन तौ आगैं षोड़शमात्राविषैं कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तौ बुद्धि किसका नाम ठहरैगा। बहुरि तिसतैं अहंकार भया कह्या, सो परवस्तु विषैं 'मैं करूँ हूँ' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जाननें करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसैं कहिए है। बहुरि अहंकारकरि षोड़श मात्रा कहीं, तिनिविषै पाँच ज्ञानइन्द्रिय कहीं, सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय हैं सो तौ पृथ्वी आदिवत् देखिए है, अर वर्णादिकके जाननेंरूप भावइन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप हैं,अहंकार का कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूकों देखै है। तहाँ अहंकारकरि निपजना कैसैं सम्भवै ? बहुरि मन कह्या, सो इन्द्रियवत्‌ही मन है। जातैं द्रव्य-मन शरीररूप हैं, भावमन ज्ञानरूप है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय कहैं सो ए तौ शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं। अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसैं मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पाँच ही तौ नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तौ सर्व जीवाश्रित है, मनुष्या-श्रित ही तौ नाहीं, तातैं सूँडि पूँछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पाँचहीकी संख्या काहेकों कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पांच तन्मात्रा कहीं, सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तौ परमाणूनिस्यों तन्मय

गुण हैं। ए जुदे कैसें निपजे कहिये। बहुरि अहंकार तो अमूर्तीक जीव का परिणाम है। तातैं ए मूर्तीकगुण कैसें निपजे मानिए। बहुरि इनि पाँचनितें अग्नि आदि निपजे कहैं, सो प्रत्यक्ष झूंठ है। रूपादिक अग्न्यादिककै तौ सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न हैं, वस्तुविषें भेद नाहीं। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातैं रूपादिकरि अग्न्यादि निपजे कैसें कहिए। बहुरि कहनेंविषें भी गुणीविषै गुण हैं, गुणतें गुणी निपज्या कैसें मानिए ?

बहुरि इनितें भिन्न एक पुरुष कहै हैं, सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तौ कहा बूझैं। नाहीं है, कहाँ है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है, सो बताय। जो बतावैगा ताहीमैं विचार किएं अन्यथापनौं भासैगा। ऐसें साँख्यमतकरि कल्पित तत्त्व मिथ्या जाननें।

बहुरि पुरुषकौं प्रकृतितें भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहै हैं। सो प्रथम तौ प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाहीं। बहुरि केवल जाननेंही तें तौ सिद्धि होती नाहीं। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय, सो ऐसें जाने किछू रागादिक घटैं नाहीं। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेकौं आप रागादि घटावै। तातैं यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं हैं। सो पच्चीस तत्त्वनिविषैं चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिसम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तौ जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषै कह्या ही नाहीं। अर पुरुषहीकौं प्रकृतिसंयोग भए जीव-

संज्ञा हो है तौ पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृतिसहित हैं, पीछैं साधनकरि कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया—पुरुष एक न ठहरचा।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवकौं आनि लागै है। जो याकी भूलि है, तौ प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसैं मानिए। अर जुदी है तौ वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहरचा। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं, तब काहेकौं उपदेश दीजिए है। ऐसैं यहु मोक्षमार्गपना मानना मिथ्या है। बहुरि तहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, ए तीन प्रमाण कहै हैं, सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषैं कोई ईश्वरकौं न मानै हैं। कोई एक पुरुषकौं ईश्वर मानै हैं। कोई शिवकौं कोई नारायणकौं देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषैं केई जटा धारैं हैं, केई चोटी राखैं हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरैं हैं, इत्यादि अनेकप्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कुहावैं हैं। ऐसैं सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत विचार

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद हैं—नैयायिक, वैशेषिक। तहाँ नैयायिकमत विषैं सोलह तत्त्व कहै हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहाँ प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि

इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकौं वादी प्रतिवादी मानैं सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाकौं ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतैं ठीक होय सो तर्क है। पीछैं प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो नाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषैं जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है। सांचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास हैं। छललिए बचन सो छल है। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे, सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व हैं नाहीं। ज्ञानके निर्णय करनेकौं वा वादकरि पांडित्य प्रगट करनेकौं कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे, सो इनितैं परमार्थ कार्य कैसैं होइ? काम क्रोधादि भावकौं मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तौ इहाँ प्रयोजन किछू दिखाया ही नाहीं। पंडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है, तातैं ये तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनिकौं जानें विना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकैं, तातैं ए तत्त्व कहे हैं। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरणवाले भी कहै हैं। व्याकरण पढ़े अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किएं शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेकौं समर्थ होंय, सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे, व्याकरण भोजनादिक तौ अवश्य तत्त्वज्ञानकौं कारण नाहीं,

लौकिक कार्य साधनेकों भी कारण हैं, सो जैसें ये हैं, तैसें ही तुम तत्व कहे, सो भी लौकिक कार्य साधने कों कारण हों हैं। जैसें इन्द्रियादिक के जाननेकौं प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे, वा स्थाणु पुरुषादिविषै संशयादिकका निरूपण किया। तातैं जिनिकों जानें अवश्य काम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै, वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषैं आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तौ सर्व ही वस्तु हैं। प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेकौं कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया, सो पक्षपातरहित विचार किए भासै है। जैसें आत्माके भेद दोय कहै हैं—परमात्मा, जीवात्मा। तहाँ परमात्माकौं सर्वका कर्त्ता बतावै हैं। तहाँ ऐसा अनुमान करै हैं जो यह जगत् कर्त्ताकरि निपज्या है, जातैं यह कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसें घटादिक। सो यह अनुमानाभास है। जातैं यहाँ अनुमानान्तर सम्भवै है। यह जगत् सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं जातैं याविषैं कोई अकार्यरूप पदार्थ भी हैं। जो अकार्य हैं, सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं, जैसें सूर्य्यबिम्बादिक। जातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषैं कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है तातैं ईश्वरकौं कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकौं प्रतिशरीर भिन्न कहैं हैं सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछैं भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वै कह्या ही है। ऐसें ही अन्य तत्त्वनिकौं मिथ्या प्ररूपै हैं। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं, सो जैनग्रन्थनितैं

परीक्षा किए भासै है। ऐसें नैयायिकमतविषैं कहे कल्पित तत्त्व जाननें।

वैशेषिक मत विचार

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय। तहाँ द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहाँ पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनिकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वै परमाणु जाते रहै हैं, और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षकौं असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तौ ऐसें ही मानैं, परन्तु केवल कहेतैं ही तौ ऐसें ठहरै नाहीं। तातैं सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमैं है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावैं हैं, सो मिथ्या ही है। जातैं वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तौ परमाणुपिंड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाहीं तातैं यहु मिथ्या है। बहुरि जहाँ पदार्थ अटकै नाहीं, ऐसी जो पोलि ताकौं आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकौं काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनिकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू हैं ही नाहीं। आकाशविषैं

खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै हैं, सो पूर्वं निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तौ ज्ञानरूप है, सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है सो शरीरका अंग है। ऐसैं ए द्रव्य कल्पित जाननें। बहुरि गुण चौईस कहै हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिमाण, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधम, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषैं स्पर्शादिक गुण तौ परमाणूनिविषैं पाईए है। परन्तु पृथ्वी को गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान् कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषै गंधकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। बहुरि शब्दकौं आकाशका गुण कहैं सो मिथ्या है। शब्द तौ भींति इत्यादितै रुकै है, तातैं मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भींतिविषै आकाश रहे शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनैं? बहुरि संख्यादिक हैं सो वस्तुविषैं तौ किछू है नाहीं, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनाधिक जाननेंकौं अपनें ज्ञानविषैं संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं सो आत्माका परिणमन है। तहाँ बुद्धि नाम ज्ञानका है तौ आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तौ मन तौ द्रव्यनिविषैं कह्या ही था, यहाँ गुण काहेकौं कह्या। बहुरि सुखादिक हैं सो आत्माविषैं कदाचित् पाईए है, आत्माके लक्षणभूत तौ ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तनेंतैं लक्षणाभास हैं। बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषैं पाईए हैं सो स्निग्धगुरुत्व इत्यादि तौ स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातैं स्पर्शगुणविषैं गर्भित भए, जुदे काहेंकौं कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषैं कह्या, सो ऐसैं तौ

अग्निआदिविषैं ऊर्ध्वंगमनत्व आदि पाईए है। कै तौ सर्व कहनें थे, कै सामान्यविषैं गर्भित करनें थे। ऐसैं ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांचप्रकार कहै हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तौ शरीरकी चेष्टा हैं। इनिकौं जुदा कहनेंका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नहीं, चेष्टा तौ घनी हीं प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनकौं तत्त्वसंज्ञा कही; सौ कै तो जुदा पदार्थ होय तौ ताकौं जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेकौं विशेष प्रयोजनभूत होय तौ तत्व कहना था; सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसैं ही कहि देना तौ पाषाणादिककी अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार हैं—पर अपर। सो पर तौ सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादि है। बहुरि नित्यद्रव्य-विषैं प्रवृत्ति जिनिकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्धका नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तौ बहुतनिकौं एकप्रकारकरि वा एकवस्तुविषैं भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेंकरि अपने विचारहीविषैं हो है, कोई जुदे पदार्थ तौ नाहीं। बहुरि इनिके जानें कामक्रोधादि मेटनेंरूप विशेष प्रयोजनकी सिद्धि नाहीं, तातैं इनिकौं तत्त्व काहैकौं कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहनें थे तौ प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म हैं वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषैं सम्भवै हैं। कै तौ सर्व कहनें थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातैं ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसैं वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जाननें। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानैं हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका

निर्णय जैन न्यायग्रंथनितैं* जानना।

बहुरि नैयायिक तौ कहै हैं—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख, इनका अभावतैं आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं—चौईस गुणनिविषैं बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहाँ बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तौ ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतैं लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसें रही, अर जो बुद्धि नाम मनका है, तौ भावमन तो ज्ञानरूप है ही, अर द्रव्यमन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही है। सो द्रव्य-मन जड़ ताका नाम बुद्धि कैसें होय ? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभाव होय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है, तौ ज्ञान काहेका नाम ठहरैगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तौ लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कहा सो सुखहीकै अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसें होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहैं, तौ यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तौ तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दुःख द्वेषादिकका यहाँ अभाव कहैं सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषै कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताकौं देव मानै

---

* देवागम, युक्त्यनुशासन, अष्ट सहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिये।

हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो हैं सो आचारादि भेदतैं च्यारि प्रकार है—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातैं सुलिंग नाहीं। ऐसैं शिवमतका निरूपण किया।

मीमांसकमत विचार

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए है। मीमांसक दोय प्रकार हैं—ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहाँ ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषैं अद्वैत ब्रह्मकों निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषैं लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वैं दिखाया है, सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्यपना प्ररूपै हैं, सो इन क्रियानिविषै रागादिकका सद्भाव पाईए है, तातैं ए कार्य किछू कार्यकारी नाहीं। बहुरि तहाँ 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहाँ भट्ट तौ छह प्रमाण मानै हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पांच ही प्रमाण मानैं हैं। सो इनिका सत्यासत्यपना जैन-शास्त्रनितैं जानना। बहुरि तहाँ षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्र अन्नादिके त्यागी, गृहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट है। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भागवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए हैं, परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनकै पाईए है। तातैं ए भेष कार्यकारी नाहीं।

जैमिनीयमत विचार

बहुरि यहाँ ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसें कहैं हैं—

सर्वज्ञदेव कोई है नाहीं। नित्य वेद वचन हैं, तिनितें यथार्थनिर्णय हो है। तातैं पहलें वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तौ नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म, ताका साधन करना। जैसें कहै हैं "स्वःकामोऽग्निं यजेत्" स्वर्ग अभिलाषी अग्निकौं पूजै, इत्यादि निरूपण करै हैं।

यहाँ पूछिए है—शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सर्व ही वेदकौं मानैं हैं, तुम भी मानौं हौ। तुम्हारै वा उन सबनिकै तत्त्वादिनिरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाईए है सो कहा? जो वेदहीविषै कहीं किछू कहीं किछू निरुपण किया है, तौ वाकी प्रमाणता कैसें रही? अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करैं हैं तौ तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एककौं वेदका अनुसारी अन्यकौं वेदतें पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकौं तौ यह भासै है, वेदहीविषैं पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है। तिसतें ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहणकरि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदकौं प्रमाण कैसें कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजें स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतें उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय। ऐसें ही अन्य वेदबचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषैं ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानें हैं। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

बौद्धमत विचार

अब बौद्धमतका स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषैं च्यारिआर्यसत्य† प्ररूपै हैं। दुःख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ संसारीकै स्कंधरूप सो दुःख है। सो पांच प्रकार✽ है—विज्ञान, वेदन, संज्ञा, संस्कार, रूप। तहाँ रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दुःख का अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़्या था सो याद करना सो संस्कार है, रूपका धारना सो रूप है❀। सो यहाँ विज्ञानादिककौं दुःख कह्या सो मिथ्या है। दुःख तौ क्रोधादिक हैं। ज्ञान दुःख नाहीं। यह तौ प्रत्यक्ष देखिए है। काहूकै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत हैं सो दुःखी हैं। काहूकै ज्ञान बहुत है, काम क्रोधादि स्तोक हैं वा नाहीं हैं सो सुखी है। तातैं विज्ञानादिक दुःख नाहीं हैं। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पाँच तौ इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पांच विषय, अर एक मन, एक धर्मायतन। सो

---

†—दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ ३६॥

✽—दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारोरूपमेव च॥ ३७॥—वि० वि०

❀—रूपं पंचेंद्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयाः॥ ७॥

वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कंधश्चतुर्भ्योन्ये संस्कारास्त इमे त्रयः॥१५॥

विज्ञानं प्रति विज्ञप्ति.......।

अ० को

ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकौं कहैं, इनिका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जातैं रागादिकका कारण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है। तहाँ अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक मानें इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाहीं। बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है। सो प्रत्यक्ष बहुतकाल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए है। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है, तौ यहु, हम भी मानैं हैं। सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तुहीका नाश मानें यहु तौ होता न दीसै है, हम कैसें मानैं ? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषैं एक आत्मा का ही अस्तित्व भासै है। जो एक नाहीं तौ पूर्व उतर कार्यका एक कर्ता कैसें मानें है। जो तू कहैगा संस्कारतैं है, तौ संस्कार कौनके हैं। जाके हैं सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तौ सर्व क्षणिक कैसें कहै है। क्षणिक है तौ जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परम्परा कैसें कहै है। बहुरि सर्वक्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासनाकौं मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकौं आप तौ पावै ही नाहीं, काहेकौं इस मार्गविषैं प्रवर्त्तै। बहुरि तेरे मतविषैं निरर्थक शास्त्र काहेकौं किए। उपदेश तौ किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसक अर्थ दीजिए है। ऐसें यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताकौं मोक्ष कहै है। सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है। अर रागादिकका अभाव होना तौ हम भी मानै हैं। अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तौ आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसें हितकारी होय। हिताहितका

विचार करनेवाला तौ ज्ञान ही है। सो आपका अभावकौं ज्ञान हित कैसे मानें। बहुरि बौद्धमतविषैं दोय प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितें जानना। बहुरि जो यहु दोय ही प्रमाण हैं, तौ इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तौ जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहेकौं किए। बहुरि तहाँ सुगतकौं देव मानै हैं ताका स्वरूप नग्न वा विक्रिया रूप स्थापै हैं सो विडम्बनारूप है। बहुरि कमंडल रक्तांबरके धारी पूर्वाह्नविषैं भोजन करैं इत्यादि लिंगरूप बौद्धमतके भिक्षुक हैं, सो क्षणिककौं भेष धरनेका कहा प्रयोजन? परन्तु महंतताकै अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसें बौद्ध हैं, ते च्यारि प्रकार हैं—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहाँ वैभाषिक तौ ज्ञानसहित पदार्थकौं मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परैं किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम हैं ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीकों मानै हैं। सो अपनी अपनी कल्पना करै हैं। विचार किएं किछू ठिकानाकी बात नाहीं। ऐसें बौद्धमतका निरूपण किया।

चार्वाकमत

अब चार्वाकमत कहिये हैं—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं वा पुण्य पाप का फल नाही वा परलोक नाहीं; यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है ऐसें चार्वाक कहै हैं; सो तहाँ वाकौं पूछिए है—सर्वज्ञदेव

इस कालक्षेत्र विषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र-विषैं तौ हम भी नाहीं मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषैं नाहीं ऐसा सर्वज्ञ विना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ, अर न जानै है तौ निषेध कैसैं करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक-विषैं प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तौ सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसैं होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुःखी हो हैं। इनिकौं कैसैं न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषैं आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन हैं, काहूकै अधिक हैं तौ जानिए है काहूकै इनिको नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादिक गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै हैं, सो जानिए है काहूकै सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसैं जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पापका फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तौ भी दरिद्री रहै। कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तौ भी रोगी रहै। काहूके विना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तौ होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतैं भासै है। व्यंतरादिक हैं ते अवलोकिए हैं। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तौ पवन है सो हम तौ 'मैं हूँ' इत्यादि चेत-नाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीकौं आत्मा कहै हैं, सो तू वाका नाम पवन कहि, परन्तु पवन तौ भींति आदिकरि अटकै है आत्मा मूंद्या (बंद) हुआ भी अटकै नाहीं,तातैं पवन कैसैं मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितनां ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तौ

थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत काल ऐसा क्षेत्रकालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकैं। अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातैं परम्परातैं सुनिए ही है, तातैं सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसैं कहै है?

बहुरि चार्वाकमतविषैं कहै हैं कि पृथ्वी,अप,तेज,वायु,आकाश मिलें चेतना होय आवै है। सो मरतैं पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषैं पृथ्वी आदि तौ भिन्न भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तौ लोहू उश्वासादिककै जुदी जुदी ही चेतना ठैरै। बहुरि हस्तादिक काटें जैसैं वाकी साथि वर्णादिक रहैं तैसैं चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तौ चेतनाकै है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तौ यहाँ ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषैं पूर्वपर्याय का अहंपना मानना देखिए है सो कैसैं हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषैं खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसैं तौ जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै है। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तौ इनि कार्यनि विषैं तौ कषाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहाँ ही सुखी होना हो है। बहुरि यश आदि हो है, तू इनिकौं छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीविनिकौं सुहावती बातैं कहि अपना

वा औरनिका बुरा करने का भय नाहीं; स्वच्छन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसें चार्वाकमतका निरूपण किया।

अन्य मत निरसन में राग द्वेषका अभाव

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धा-नादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है। सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव हैं। बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगै विशेष लिखेंगे सो जानना।

यहाँ कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातैं तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतकौं स्थापो हो, ताकौं कहिए हैं—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै, तौ रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है तौ अन्यमत बुरे जैनमत भला ऐसा कैसें कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकौं समान जानौं, मतपक्ष काहेकौं करो हौ।

याकौं कहिए है—बुराकों बुरा कहैं हैं भलाकों भला कहैं हैं, यामैं रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकौं समान जानना तौ अज्ञान-भाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तौ एक ही है, तातैं

सर्वकौं समान जानना।

ताकौं कहिए है—प्रयोजन एक होय तौ नानामत काहेकौं कहिए। एक मतविषैं तौ एक प्रयोजन लिएं अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताकौं जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है, सो दिखाईए है—

अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषैं एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथनिविषै वा लोकादिका निरूपण विषैं वा आचरणविषैं वा तत्त्वनिविषैं जहाँ तहाँ वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषैं सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातैं कल्पित रचना कषायी जीव ही करैं सो अनेक युक्ति बनाय कषायभावहीकौं पोषैं। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वकौं ब्रह्म माननेंकरि, अर सांख्यमति सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकौं शुद्ध अकर्त्ता माननेंकरि, अर शिवमति तत्त्व जाननेंहीतें सिद्धि होनी माननेंकरि, मीमांसक कषायजनित आचरणकौं धर्म माननेंकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेंकरि, विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषै स्वच्छन्द होना ही पोषै हैं। यद्यपि कोई ठिकानें कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करैं, तौ उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करैं हैं। जैसे गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया, अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनकै आश्रय अपने विषय कषाय पोषैं। बहुरि जैनधर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतरागताहीकौं पोषैं हैं, सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमति भर्तृहरि

ताहूनें वैराग्यप्रकरण विषैं* ऐसा कह्या है—

एको+ रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
नीरोगेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
शेषःकामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः॥१॥

याविषैं सरागीनिविषैं महादेवकौं प्रधान कह्या अर वीतरागीनिविषैं जिनदेवकौं प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभावनिविषैं परस्पर प्रतिपक्षीपना है, सो ये दोऊ भले नाहीं। इनिविषैं एक ही हितकारी है, सो वीतराग भाव ही हितकारी है जाके होतें तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सर्व कहैं। सरागभाव होतें तत्काल आकुलता होय. निंदनीक होय,आगामी बुरा होना भासै तातैं जामैं वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमें सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए हैं ऐसे अन्यमत अनिष्ट हैं। इनिकौं समान कैसैं मानिए। बहुरि वह कहै है—यहु तौ सांच, परन्तु अन्यमतकी निन्दा किएं अन्यमती दुःख पावैं,

* यह पद्य वैराग्यप्रकरणमें नाहीं किन्तु शृङ्गारप्रकरणम न०९७पर मिलता है।

+ रागी पुरुषों में तो एक महादेव शोभित होता है, जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीरमें धारण कर रक्खा है और वीतरागियोंमें जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोंका संग छोड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोंके विषसे मूर्च्छित हुये हैं जो कामकी विडम्बनामें न तो विषयोंको भली भांति भोग ही सकते हैं और न छोड़ ही सकते हैं।

विरोध उपजै, तातैं काहेकौं निन्दा करिए। तहाँ कहिए है—जो हमी कषायकरि निन्दा करैं वा औरनिकौं दुःख उपजावैं तौ हम पापी ह हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातैं संसारविषैं जीव दुःखी होय, तातैं करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष ही दुःख पावै, विरोध उपजावै तौ हम कहा करैं। जैसें मदिराकी निन्दाकरतैं कलाल दुःख पावै, कुशीलकी निन्दा करतैं वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतैं ठग दुःख पावै तौ कहा करिए। ऐसैं जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तौ जीवनिका भला कैसें होय? ऐसा तौ कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावैं। बहुरि वह विरोध उपजावै, सो विरोध तौ परस्पर हो है। हम लरैं नाहीं. वे आप ही उपशाँत होंय जांयगें। हमकौं तौ हमारे परिणामोंका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किएं मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसें मिथ्यादर्शनादिक होय?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषैं विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै.यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै, तौ वीतरागभाव भए ही महतपनौ भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं, अर अपनी महंतता चाहैं, तिनिनें सरागभाव होतें महंतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनेंकरि आस्रव

संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका अयथार्थ श्रद्धानकौं पोषै हैं। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै, तौ तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवंत होय, उनको युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

अन्यमत के ग्रन्थोद्धरण से जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकीही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है—

बड़ा योगवाशिष्ठ छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहाँ अहंकार निषेध अध्यायविषैं वशिष्ठ अर रामका संवादविषै ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा* ॥ १ ॥"

या विषैं रामजी जिनसमान होनेकी इच्छाकरी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया, अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषं कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः॥"

* अर्थात् मैं राम नाहीं हूं, मेरी कुछ इच्छा नहीं है और भावों वा पदार्थों में मेरा मन नहीं हैं। मैं तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामें ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूं।

यहाँ भगवत का नाम जैनमार्गविषैं रत अर जैन कह्या, सो यामैं जैनमार्गकी प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई । बहुरि 'वैशंपायनसहस्र-नाम' विषैं कह्या है—

"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः ।"

यहाँ भगवान्‌का नाम जिनेश्वर कह्या, तातैं जिनेश्वर भगवान् हैं । बहुरि दुर्व्वासाऋषिकृत 'महिम्नस्तोत्र' विषैं ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी ।
कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः" ॥१॥

यहाँ 'अरहंत तुमहो' ऐसें भगवंत की स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवंतपनौ प्रगट भयो । बहुरि हनुमन्नाटकविषैं ऐसे कह्या है—

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथोःप्रभुः‡॥१॥"

यहां छहों मतविषैं ईश्वर एक कह्या, तहाँ अरहंतदेवकै भी ईश्वरपना प्रगट किया ।

‡ यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है । इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कहकर, उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथों को सफल करे ।

यहाँ कोऊ कहै, जैसें यहाँ सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसें तुम भी मानौ।

ताकौं कहिए है– तुमने यह कह्या है, हम तौ न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषैं अरहंतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषैं भी ऐसें ही कहैं तौ हम भी शिवादिककौं ईश्वर मानैं। जैसें कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै, कोई झूंठा रत्न दिखावै। तहाँ झूठा रत्नवाला तौ सर्व रत्नोंका समान मोल लेनेके अर्थि समान कहै। सांचा रत्नवाला कैसें समान मानैं? तैसें जैनी सांचा देवादिकौं निरूपैं, अन्यमती झूंठा निरूपै, तहाँ अन्यमती अपनी समान महिमाके अर्थि सर्वकौं समान कहैं—जैनी कैसे मानैं? बहुरि 'रुद्रयामलतंत्र' विषैं भवानी-सहस्रनामविषैं ऐसैं कह्या है—

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"

यहाँ भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातैं जिनका उत्तमपना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषैं ऐसैं कह्या है—

"जैनं पशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषैं ऐसा कह्या है—

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति १।"

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषैं जैन निरूपण है, तातैं जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषैं ऋषभावतार

१— प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिन:' इति खरडा प्रतौ पाठः।

*। तहाँ यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम प्रकरि पूजित कह्या है, ताकै अनुसारि अरहंत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहैं हैं। सो जैसें रामकृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत, तैसें ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसें तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहाँ इतना विचार और किया चाहिये—कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्तिहो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहाँ दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्रविषै—"बद्ध्वा पद्मासन यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तौ अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखंडविषैं देवदास राजानें सम्बोधि राज्य छुड़ायो। तहाँ नारायण तौ विनयकीर्त्ति यती भया, लक्ष्मीकौं विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कौं श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहाँ सम्बोधन करना भया, तहाँ जैनी भेष बनाया। तातैं जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है—

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥"

---

* भागवत स्कंध ५ अ०; ५ २६

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिदिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्वं पापप्रणाशकः ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः" ॥३॥

यहाँ वामनकौं पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटीयज्ञका फल कह्या. सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरया। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमियुगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहाँ नेमिनाथकौं जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानकों ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या, अर युगादिके स्थानकौं भी ऐसाही कह्या, तातैं उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषैं भवावतारहस्यविषैं ऐसा कह्या है–

"अकारादिहकारन्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादविन्दुकलाक्रान्त चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥"

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदकौं परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही, सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषैं कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥ १ ॥"

यहाँ कृतयुगविषै दश ब्राह्मणौंकौं भोजन करानेका जेता फल कह्या, तेता फल कलियुगविषैं अर्हंतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातैं जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषै ऐसा कह्या है-

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलावाहनः ।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ २ ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥३॥

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषैं कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहाँ प्रथमजिन युगकी आदिविषैं मार्गकादर्शक अर सुरासुरपूजित कह्या, सो ऐसैं ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतैं है अर प्रमाणभूत कैसैं न कहिए। बहुरि ऋगवेदविषैं ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषैं ऐसा कह्या है:-

ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय, बहुरि ऐसा कह्या है—

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्व-मिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुष-मर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायुवलायुर्वा शुभजातायु ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा❀।

यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजना कह्या। बहुरि यहाँ यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसैं अन्यमतनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमत कौं देखैं वे मत कल्पित ही भासैं। तातैं जो अपना हितका इच्छक होय तो पक्षपात छोरि साँचा जैनधर्म कौं अंगीकार करो। बहुरि अन्यमत-निविषै पूर्वापरविरोध भासै है। पहले अवतार वेद का उद्धार किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञका निंदक होय, हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्रीरमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया।

❀ यजुर्वेद अ० २५ म० १९ अष्ट १६ अ० ६ वर्ग १

सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनके अनुसारि प्रवर्त्तं अरु इन सब अवतारनिकौं एक बतावैं सो एक ही कदाचित् कैसैं कदाचित् कैसैं कहै वा प्रवर्त्तै तौ याकै उनके कहने की वा प्रवर्त्तनेकी प्रतीति कैसैं आवै ? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करैं, कहीं लरनेका वा बिषयादिसेवनका उपदेश दें। तहाँ प्रारब्ध बतावै सो विना क्रोधादि भएं आपहीतैं लरना आदि कार्य होंय तौ यहु भी मानिए सो तौ होंय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य होतैं क्रोधादि भए मानिए तौ जुदे ही क्रोधादि कौन हैं, तिनका निषेध किया। तातैं बनै नाहीं, पूर्वापर विरोध है। गीताविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश किया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावैं, सो ऐसा क्रोध किएं निंद्यपना कैसैं न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" ऐसा भी कहैं अर भारतविषै ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥ १ ॥

यहां कुमारब्रह्मचारीनिकौं स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै तौ ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तवः ॥१॥
वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।

वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ।।२।।
चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ।।३।।

इन विषैं मद्यमांसादिकका वा रात्रिभोजनका वा चौमासेमैं विशेषपनें रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बड़े पुरुषनिकै मद्यमांसादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादिविषैं रात्रिभोजन स्थापैं वा कंदादिभक्षण स्थापैं, ऐसैं विरुद्ध निरूपै हैं । ऐसैं ही अनेक पूर्वापर विरुद्धबचन अन्यमतके शास्त्रविषै हैं। सो करैं कहा। कहीं तौ पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कहीं विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या । सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसैं करिए। इहाँ जो अन्यमत-निविषैं क्षमा शील सन्तोषादिककों पोषते वचन हैं सो तौ जैनमत-विषैं पाइए हैं अर विपरीत वचन हैं सो उनका कल्पित है । जिनमत अनुसार वचनका विश्वासतैं उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातैं अन्यमतका कोऊ अंग भला देखि भी तहाँ श्रद्धानादिक न करना। जैसैं विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं, तैसैं जानना। बहुरि जो कोई उत्तमधर्मका अंग जिनमतविषै न पाईए अर अन्यमत में पाईए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग जैनमतविषै पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तौ अन्यमतकौं आदरौ सो सर्वथा होय नाहीं। जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतैं किछू छिपा नाहीं है । तातैं अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना । बहुरि कालदोषतैं कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है,सो ही दिखाईए है—

श्वेताम्बर मत विचार

श्वेताम्बरमतवाले काहूनैं सूत्र बनाए, तिनिकौं गणधरके किए कहै हैं। सो उनकौं पूछिए है—गणधरनैं आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाईए है सो इतने प्रमाण लिएं ही किए थे। जो इतने प्रमाण लिएं ही किए थे, तौ तुम्हारे शास्त्रनिविषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा ? जो विभक्तिका अंतकौ पद कहोगे, तौ कहे प्रमाणत बहुत पद होय जांयगे, अर जो प्रमाणपद कहोगे, तौ तिस एकपदके साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तौ बहुत छोटे शास्त्र हैं, सो बनैं नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतैं दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसैं बनै ! बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनहीमैंसौं केतेक सूत्र काढ़ि ए शास्त्र बनाए हैं। तौ प्रथम तौ टूटकग्रन्थ प्रमाण नाहीं। बहुरि यह नियम हैं, जो बड़ा ग्रंथ बनावै तौ वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिएं करै अर छोटा ग्रन्थ बनाव तौ तहाँ संक्षेपवर्णन करै, परन्तु सम्बन्ध टूटैं नाहीं। अर कोई बड़ा ग्रन्थ मैं थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तौ तहाँ सम्बन्ध मिलै नाहीं—कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तौ कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है— टूटकपना भासै नाहीं। बहुरि अन्य कवीनितैं गणधरकी तौ बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमैं थोरे शब्दमैं बहुत अर्थ चाहिए सो तौ अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसैं धरैं नाहीं, 'जो

अमुक कहै है', 'मैं कहूँ हूँ' ऐसा कहै। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गोतम' वा 'गोतम कहै है' ऐसे वचन हैं। सो ऐसे वचन तौ तब ही सम्भवैं, जब और कोई कर्त्ता होय। तातैं यह सूत्र गणधरकृत नाहीं, औरके किए हैं। गणधरका नामकरि कल्पितरचनाकौं प्रमाण कराया चाहै हैं। सो विवेकी तौ परीक्षाकरि मानैं, कह्या ही तौ न मानैं।

बहुरि वह ऐसा भी कहै हैं—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ए सूत्र बनाए हैं। तहाँ पूछिए है— जो नए ग्रन्थ बनाए थे,तौ नवा नाम धरना था, अंगादिकके नाम काहेकौं धरे। जैसैं कोई बड़ा साहूकार की कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया ❀। सांचेकौं तौ जैसैं दिगम्बरविषैं ग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्वग्रन्थनिका कह्या, तैसैं कहना योग्य था। अंगादिकका नाम धरि गणधरदेवका भ्रम काहेकौं उपजाया। तातैं गणधरके वा पूर्वधारीके वचन नाहीं। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावनेंके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तौ सांच है ही, दिगम्बर भी तैसैं ही कहैं हैं। बहुरि जो कल्पितरचना

❀ निम्न पंक्तियाँ खरड़ा प्रति में नहीं पाई जातीं पर श्री पं० नाथूरामजी 'प्रेमी' की जो प्रति प्राप्त हुई थी उसमें निहित हैं। अतएव फुटनोट में उद्धृत की जाती हैं। 'यह सांच तौ तब होता, जैसें दिगम्बर आचार्यनिने अनेक ग्रन्थ रचे, तौ सर्व गणधर करि भाषित अंग प्रकीर्णक ताके अनुसार रचे अर तिनि सबनि में ग्रन्थकर्ताका नाम सर्व आचार्यनिनें अपना भिन्न भिन्न रखा अर तिनि ग्रन्थनि के नाम हू भिन्न भिन्न रक्खे, किसी ग्रन्थका नाम अंगादि नहीं रक्खा अर न यह लिख्या, जो ए गणधरदेवने रचे हैं।"

करी है, तामैं पूर्वापरविरुद्धपनौ वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमैं विरुद्धपनौ भासै है, सो ही दिखाईए है—

अन्यलिंगसे मुक्तिका निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चांडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिकी प्राप्ति होनी मानै हैं, सो बनै नाहीं । सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है । सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तौ ऐसा कहै हैं—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहिएं ॥ १ ॥

सो अन्य लिंगीकै अरहंतदेव, साधु गुरु, जिनप्रणीत तत्त्वका मानना कैसें सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तौ मोक्ष कैसें होय । जो कहोगे अंतरंग के श्रद्धान होनेतें सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारककी प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वकौं अतीचार कह्या है सो साँचा श्रद्धान भए पीछें आप विपरीतलिंगका धारक कैसें रहै । श्रद्धान भए पीछें महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंगविषैं कैसें बनें ? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तौ जैनलिंग अन्यलिंग समान भया तातैं अन्यलिंगीकौं मोक्ष कहना मिथ्या है । बहुरि गृहस्थकौं मोक्ष कहैं सो हिंसादिक सर्व सावद्यका त्याग किए सम्यक्चारित्र होय सो सर्वसावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनौ कैसें सम्भवै ? जो कहोगे—अंतरंगका त्याग भया है तौ यहाँ तौ तीनूं योगकरि त्याग करै है, कायकरि त्याग कैसें भया ? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखें भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं

तौ बाह्यत्याग करनेकी प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय। महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न होय सकै है, तो तब मोक्ष कैसैं होय ? तातैं गृहस्थकौं मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

स्त्री मुक्तिका निषेध

बहुरि स्त्रीकौं मोक्ष कहैं, सो जातैं सप्तम नरक गमन योग्य पाप न होय सकै, ताकरि मोक्षका कारण शुद्धभाव कैसैं होय सकै ? जातैं जाके भाव दृढ़ होंय, सो ही उत्कृष्ट पाप व धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकांतविषैं ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाहीं। जो कहोगे, एक समयविषैं पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीकौं सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीकौं मोक्ष मानिए है। सो यहाँ भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानै ही हैं। द्रव्य वेदी है तौ पुरुषस्त्रीवेदी तौ लोकविषैं प्रचुर दीसै हैं, नपुंसक तौ कोई विरला दीसै है। एक समयविषैं मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवैं ? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनैं नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवमगुणस्थानतांई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेदअपेक्षा होय तौ चौदहवाँ गुणस्थानपर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्र मुक्तिका निषेध

बहुरि शूद्रनिकौं मोक्ष कहैं। सो चांडालादिककौं गृहस्थ सन्माना-दिककरि दानादिक कैसें दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंके उत्तम परिणाम न होय सकैं। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तौ पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े विना मोक्ष कैसैं

होय। जो कहोगे—संयम धारे पीछैं वाकै उच्चगोत्रका उदय कहिए, तौ संयम धारने का वा नधारनेकी अपेक्षातैं नीच उच्चगोत्रका उदय ठहर्‌या। ऐसे होतैं असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिककै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय कहोगे तौ चांडालादिककै भी कुल अपेक्षा ही नीचगोत्रका उदय कहो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमैं पूर्वापरविरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसे तिनहूंनैं सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही, सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पितमत की प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरोंका निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै हैं। सो कहैं हैं—हुण्डावसर्प्पिणीके निमित्ततैं भए हैं, इनकौं छेड़ने नाहीं। सो कालदोषतैं केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तौ न होय। जो प्रमाणविरुद्ध भी होय, तौ आकाशके फूल, गधेके सींग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाहीं। तातैं वे तौ अछेरा कहैं सो प्रामाण विरुद्ध हैं। काहेतैं सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषैं रहे, पीछैं क्षत्रियाणी के गर्भविषै बधे, ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धर्‌या प्रत्यक्ष भासै नाहीं, उन्मानादिकमैं आवै नाहीं। बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तौ गर्भकल्याणक काहूके घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके

धरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्ट्यादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहू कै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तौ दोय भई अर पिता तौ एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया, अन्य कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाहीं। बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई, तौ सर्वत्र ही अन्यस्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै, तौ वैष्णव जैसें अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावैं हैं, तैसें यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट कालविषैं तौ ऐसैं होय नाहीं, तहाँ होना कैसें सम्भवै ? तातैं यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लितीर्थंकरकौं कन्या कहैं हैं। सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भवै, वा स्त्रीपर्यायहीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनैं। बहुरि तीर्थंकरकै नग्नलिंग ही कहै हैं, सो स्त्रीकै नग्नपनौ न सम्भवै। इत्यादि विचार किएं असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियाँकौं नरक गया कहैं। सो बंधवर्णन विषैं तौ भोगभूमियाँकै देवगति देवायुहीका बंध कहैं नरक कैसें गया। सिद्धान्तविषैं तौ अनन्तकालविषैं जो बात होय, सो भी कहैं। जैसैं तीसरै नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियांकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूलैं तौ नाहीं। तातैं यहु मिथ्या है। ऐसैं सर्व अछेरे असम्भव जाननें। बहुरि वे कहै हैं, इन कौं

छेड़ने नाहीं सो झूठ कहनेवाला ऐसैं ही कहै।

बहुरि जो कहोगे—दिगम्बरविषैं जैसैं तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मान भंग इत्यादि कार्य कालदोषतैं भया कहै हैं, तैसैं ए भी भए। सो ये कार्य तौ प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अन्यकै होते थे सो महंतनिकै भए तातैं कालदोष कह्या है। गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितैं विरुद्ध, तिनकै होना कैसैं सम्भवै? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं। जैसैं कहै हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मनहीतैं प्रश्न करै हैं, केवली मनहीतैं उत्तर दे हैं। सो सामान्य जीवके मनकी बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाहीं। केवलीके मनकी सर्वार्थसिद्धिके देव कैसैं जानैं? बहुरि केवलीकै भावमनका तौ अभाव है, द्रव्यमन जड़ आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातैं मिथ्या है। ऐसैं अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए हैं, तातैं तिनके आगम कल्पित ही जानने।

केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपैं हैं। तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहैं। सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतैं, क्षुधादिक दोष होतैं आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसैं बनैं? बहुरि जो कहोगे, शरीरकौं क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तौ क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेकों ग्रहण किया कहो हौ। क्षुधादिकरि पीड़ित होय,तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसैं कर्मोदयतैं विहार हो है, तैसैं ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तौ विहायोगति प्रकृतिका उदय ते हो है,

अर पीड़ाका उपाय नाहीं, अर विना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतैं नाहीं, क्षुधाकरि पीड़ित भए ही ग्रहण करै है। बहुरि आत्मा पवनादिककौं प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातैं विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे—सातावेदनीयके उदयतैं आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछैं आहारादिक ग्रहणतैं सुख मानैं, ताकैं आहारादिक साताके उदयतैं कहिए। आहारादिक सातावेदनीयका उदयतैं स्वयमेव होय, ऐसैं तौ है नाहीं। जो ऐसैं होय तौ सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है,ते निरन्तर आहार क्यों न करैं। बहुरि महामुनि उपवासादि करैं, तिनकैं साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालौंकै असाताका भी उदय सम्भवै। तातैं जैसैं विना इच्छा विहायोगतिके उदयतैं विहार सम्भवै, तैसैं विना इच्छा केवल सातावेदनीयहीके उदयतैं आहारका ग्रहण सम्भवै नाहीं।

बहुरि वह कहै हैं, सिद्धान्तविषैं केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै हैं,तातैं तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक विना तिनकी उपशांतता कैसैं होंय, तातैं तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान—कर्मप्रकृतिनिका उदय मंद तीव्र भेद लिए हो है। तहाँ अतिमंद होतैं तिसका उदयजनित कार्यकी व्यक्तता भासै नाहीं। तातैं मुख्यपनैं अभाव कहिए,तारतम्यविषैं सद्भाव कहिए। जैसैं नवम गुणस्थानविषैं वेदादिकका उदय मन्द है, तहाँ मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाहीं, तातैं तहाँ ब्रह्मचर्य्य ही कह्या। तारतम्यविषैं मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसैं केवलीकै असाताका उदय अतिमंद है। जातैं

एक एक कांडकविषं अनन्तवें भाग अनुभग रहै, ऐसे बहुत अनुभाग-कांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ताविषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मंद भया, ताका उदयविषैं क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै । अर मोहके अभावतैं क्षुधादिकजनित दुःख भी नाहीं,तातैं क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषैं तिनका सद्भाव कहिए है । बहुरि तैं कह्या—आहारादिक विना तिनकी उपशांतता कैसं होय, सो आहारादिकरि उपशांत होनें योग्य क्षुधा लागै तौ मन्द उदय काहेका रह्या ? देव भोगभूमियाँ आदिककै किंचित् मंद उदय होतैं ही बहुत काल पीछैं किंचित् आहार ग्रहण हो है तौ इनकै तौ अतिमंद उदय भया है, तातैं इनकै आहारका अभाव सम्भवै है ।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोंका तौ शरीर ही ऐसा है, जाकौं भूख थोरी वा घनेंकाल पीछैं लागै; इनिका तौ शरीर कर्मभूमिका औदारिक है । तातैं इनिका शरीर आहार विना देशोनकोड़ि पूर्वपर्यन्त उत्कृष्टपनें कैसें रहै ?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मकेही निमित्ततैं हैं । यहाँ केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकी भूख प्रगट होती ही नाहीं । जैसैं केवलज्ञान भए पहलैं केश नख बधैं थे सो बधै (बढैं) नाहीं । छाया होती थी सो होती नाहीं । शरीर विषैं निगोद थी, ताका अभाव भया । बहुत प्रकारकरि जैसैं शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसैं आहार विना भी शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई । प्रत्यक्ष देखौ; औरनिकौं जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका

अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातैं अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाहीं। बहुरि जो तू कहैगा—देवादिककै आहार ही ऐसा है, जाकरि बहुतकालकी भूख मिटै; इनिकै भूख काहे तैं मिटी अर शरीर पुष्ट कैसैं रह्या ? तौ सुनि, असाताका उदय मंद होनेतैं मिटी, अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणाका ग्रहण हो है सो वह तौ कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है, जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाहीं वा शरीर शिथिल होय नाहीं। सिद्धान्त-विषैं याहीकी अपेक्षा केवलीके आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तौ शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै,शरीर पुष्ट बहुत होय; कोऊ बहुत आहार ग्रहै,शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत कालताँई आहार न लें, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करैं, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तौ सर्वोत्कृष्टपना है,उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तौ कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसैं आहारकौं जांय, कैसैं याचैं।

बहुरि वे आहारकौं जांय, तब समवशरण खाली कैसैं रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहरावोगे तौ कौन ल्याय दें, उनके मनकी कौन जानै। पूर्वं उपवासादिककी प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसैं निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वप्रतिभासै, कैसैं आहार ग्रहैं ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वह कहै है—आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकौं दीसैं नाहीं। सो आहार ग्रहणकौं निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषैं लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या, अर और न देखें हैं तौ कहा भया। ऐसैं अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो—केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादिक भया कहैं हैं अर कहैं, काहूने तेजोलेश्या छोरी, ताकरि वर्द्धमानस्वामीकै पेठूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तौ इंद्रादिकरि पूज्यपना कैसैं सोभै। बहुरि नीहार कैसें करैं, कहां करैं, कोऊ संभवती बातै नाहीं। बहुरि जैसें रागादि करि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसें केवलीकै क्रिया ठहरावै हैं। वर्द्धमानस्वामीका उपदेशविषैं 'हे गौतम' ऐसा बारंबार कहना ठहरावै हैं, सो उनकै तौ अपना कालविषैं सहज दिव्यध्वनि हो है, तहां सर्वकौं उपदेश हो है, गौतमकौं संबोधन कैसैं बनै? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावैं हैं,सो अनुराग बिना वंदना संभवै नाहीं। बहुरि गुणाधिककौं वंदना संभवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाहीं। सो कैसें बनै ? बहुरि हाटिविषैं समवसरण उतर्‌या कहैं, सो इंद्रकृत समवसरण हाटिविषैं कैसें रहै ? इतनी रचना तहां कैसें समावै। बहुरि हाटिविषैं काहेकौं रहै ? कहा इंद्र हाटि सारिखी रचना करनेकौं भी समर्थ नाहीं, जातैं हाटि का आश्रय लीजिए। बहुरि कहैं—केवली उपदेशदेनेकौं गए। सो घरि जाय उपदेश देना अतिरागतें होय, सो मुनिकै भी संभवै नाहीं। केवलीकै कैसें बनै? ऐसैं ही अनेक विपरीतिता तहां प्ररूपै हैं। केवली शुद्धकेवलज्ञानदर्शनमय रागादिरहित भए हैं, तिनकै अघातिकर्मनिके उदयतैं संभवती-क्रिया कोई हो है। केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातैं उपयोगमिलें क्रिया होय सकै, सो संभवै नाहीं। पापप्रकृति का अनु-

भाग अत्यंत मंद भया है। ऐसा मंद अनुभाग अन्य कोईकै नाहीं। तातैं अन्यजीवनिकै पापउदयतैं जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै न होय। ऐसैं केवली भगवानकै सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्भाव कहि देवका स्वरूपकौं अन्यथा प्ररूपै हैं।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरूका स्वरूपकौं अन्यथा प्ररूपै हैं। मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण❀ कहै हैं। सो हम पूछै हैं कि मुनिकौं निर्ग्रंथ कहैं अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करैं, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह हैं कि नाहीं। जो हैं तो त्याग किए पीछैं काहेकौं राखैं, अर नाहीं हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखै ताकौं भी परिग्रह मति कहौ। सुवर्णादिकहीकौं परिग्रह कहौ। बहुरि जो कहोगे, जैसैं क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसैं शीतउष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अंगीकार करतैं आहारका त्याग किया नाहीं, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तौ संग्रह करना परिग्रह है,भोजन करने जाय सो परिग्रह नाहीं। अर वस्त्रादिकका संग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषैं प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि

❀ १ पात्र २ पात्रबन्ध ३ पात्र केसरिकर ४ पटलिकाएं ५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०-११ एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो वृहत्क० सू० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाहीं है,तातैं इनिकौं परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषैं तौ जब सम्यग्दृष्टी भया तबही समस्त परद्रव्यविषैं ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षा तौ चौथा गुणस्थान ही परिग्रहरहित कहौ। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाहीं, तौ कैसैं ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटैगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहोगे—वस्त्रादिककौं कोई लेय जाय तौ क्रोध न करैं, क्षुधादिक लागैं तौ वे बेचैं नाहीं वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करैं नाहीं, परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधैं हैं तातैं ममत्व नाहीं। सो बाह्य क्रोध मति करौ परन्तु जाका ग्रहण विषैं इष्ट बुद्धि होय, ताका वियोगविषैं अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई, तौ ताके अर्थि याचना काहेकौं करिए है? बहुरि बेचते नाहीं, सो धातु राखनेतैं अपनी हीनता जानि नाहीं बेचिए है। जैसैं धनादि राखनें तैसैं ही वस्त्रादि राखनें। लोकविषैं परिग्रहके चाहक जीवनिकै दोउनि-की इच्छा है। तातैं चोरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनहीतैं परिग्रहपना न होय। जो काहूकौं बहुत शीत लागेगा सो सोड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करैगा, अर धर्मसाधैगा तौ वाकौं भी निःपरिग्रह कहो। ऐसैं गृहस्थधर्म मुनिधर्मविषैं विशेष कहा रहेगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म; अर जाकै परि-णाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय, सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे,शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसैं न होय। सो व्याकुलता तौ

मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषैं तीन चौकड़ीका उदय नाहीं। अर संज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं। देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाहीं। जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकै सम्यक्मोहनीय का उदय है, सो सम्यक्त्वकौं घात न करि सकै, तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकौं व्याकुल करि सकै नाहीं। अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाहीं। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है। तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित् न होय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करैं। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होंय तातैं वस्त्रादिक राखैं नाहीं। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषै चौदह उपकरणमुनि राखें,ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषै कह्याहै, दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषें तौ कहे नाहीं। तहाँ तौ लंगोटमात्र परिग्रह रहैं भी ग्यारहीं प्रतिमा का धारक श्रावक ही कह्या। सो अब यहाँ विचारो,दोऊनिमैं कल्पित वचन कौन है? प्रथम तौ कल्पित रचना कषायी होय सो करैं। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनौं प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषैं वस्त्रादि राखें धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तौ न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बरविषें मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जानैं नीची क्रिया होतैं, उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेकरि आपकौं वस्त्रादि राखतैं भी लोक मुनि माननें लागें, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिकौं सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातैं घनें लोक

लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसें ही भए हैं। तातें कषायी होइ वस्त्रादि होतें मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातें ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे— दिगम्बरविषै भी शास्त्र पीछी आदि मुनिकै उपकरण कहे हैं, तैसें हमारे चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहाँ शीतादिककी वेदना दूरि करनेतें उपकरण ठहराईए, तौ सर्वपरिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषैं इनिका कहा प्रयोजन? ए तौ पापके कारण हैं। धर्मविषैं तौ धर्मका उपकारी जे होंय तिनिका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानकौं कारण, पीछी दयाकौं, कारण कमंडलु शौचकौं कारण,सो ए तौ धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसें धर्मके उपकारी होय? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनौं ज़ो शास्त्र राखि महंतता दिखावैं,पीछीकरि बुहारी दें;कमंडलुकरि जलादिक पीवैं वा मैलउतारैं,तौ शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाहीं। तातें धर्मके साधनकौं परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोगके साधनकौं परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे— कमंडलुतें तौ शरीरहीका मल दूरि करिए है,सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमंडलु नाहीं राखै हैं। शास्त्र बांचना आदि कार्य करैं अर मललिप्त होंय तौ तिनिका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातें इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए हैं। ऐसें पीछी आदि उपकरण सम्भवैं, वस्त्रादिकौं उपकरण संज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतें विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय

तातैं विकार ढांकनेकौं वा शीतादि मिटावनेकौं वस्त्रादिक राखैं अर मानके उदयतें अपनी महंतता भी चाहैं तातैं कल्पितयुक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावैं हैं। सो प्रथम तौ यह पूछिए है, याचना धर्मका अंग है कि पापका अंग है। जो धर्मका अंग है, तौ मांगनेवाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है, तौ मुनिकै कैसें सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचैं तौ पाप होय; यहु तौ धर्म साधनके अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहैं हैं तातैं आहारादिक याचैं हैं।

ताका समाधान—आहारादिककरि धर्म होता नाहीं, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अतिलोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेकौं मांगता। वे ही देते तौ देते, न देते तौ न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ ही पाप भया, तब मुनिधर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधैंगा। अब वह कहै है—मनविषै तौ आहारकी इच्छा होय अर याचै नाहीं तौ मायाकषाय भया अर याचनेमैं हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाहीं तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मागि लिया। यामैं अतिलोभ कहा भया अर यातैं मुनिधर्म कैसें नष्ट भया, सो कहौ। याकौं कहिए है—

जैसें काहू व्यापारीकै कुमावनेकी इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तौ बैठै अर मनविषैं व्यापारकरनेकी इच्छा भी है; परन्तु काहूकौं वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै हैं। स्वयमेव कोई आवै तौ अपनी विधि मिले व्यापार करै है तौ ताकै लोभका

मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मानकषाय तौ तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं तातैं वाकै माया मान न कहिए। तैसें मुनिनकै आहारदिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेकौं आवैं अर मनविषैं आहारलेनेकी इच्छा भी है; परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै हैं। स्वयमेव कोई दे तौ अपनी विधि मिले आहार ले हैं तौ उनकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान तौ तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करैं। सो मुनिनकै ऐसें प्रयोजन हैं नाहीं तातैं इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसें ही माया मान होय तौ जे मनहीकरि पाप करैं, वचनकायकरि न करैं, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अंगीकार नाहीं करै हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसें अनर्थ होय! बहुरि तैं कह्या—"आहार मांगनेमैं अतिलोभ कहा भया? सो अतिकषाय होय तब लोकनिंद्य कार्य अंगीकारकरिकैं भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मांगना लोकनिंद्य है, ताकौं भी अंगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातै यहाँ अतिलोभ भया। बहुरि तैं कह्या—"मुनिधर्म कैसें नष्ट भया," सो मुनिधर्मविषैं ऐसी तीव्रकषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहारदेनेंका परिणाम न था, यानैं वाका घरमैं जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होनेका भय भया तातैं वाकौं आहार दिया। सो वाका अन्तरंग प्राण पीडनेंतें हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमैं न जाते,उसहीकै देनेका

उपाय होता तौ देता, वाकै हर्ष होता। यहु तौ दबायकरि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है, सो पापरूप है। सो यहाँ असत्यवचन भी भया। बहुरि वाकै दैनेकी इच्छा नथी, यानैं याच्या, तब वानै अपनी इच्छातैं दिया नाहीं—सकुचिकरि दिया। तातैं अदत्त-ग्रहण भी भया। बहुरि गृहस्थके घरमैं स्त्री जैसैं तैसैं तिष्ठै थी, यहु चल्या गया। तहाँ ब्रह्मचर्यकी बाड़िका भंग भया। बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या। आहारादि के राखनेंकौं पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया। ऐसैं पांच महाव्रतनिका भंग होनेतैं मुनिधर्म नष्ट हो है तातैं याचनाकरि आहार लेना मुनिकौं युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषैं याचनापरीषह कही है, सो मांगेविना तिस परीषहका सहना कैसैं होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचनापरीषह नाहीं है। याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है। जातैं अरति करनेका नाम अरतिपरीषह नाहीं, अरति न करनेका नाम अरतिपरीषह है, तैसैं जानना। जो याचना करना परीषह ठहरै, तौ रंकादि घनी याचना करै हैं, तिनकै घना धर्म होय। अर कहोगे, मान घटावनेंतैं याकौं परीषह कहै हैं तौ कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय। जैसैं कोई लोभके अर्थि अपना अपमानकौं भी न गिनैं, तौ वाकै लोभकी तीव्रता है। उस अपमान करावनेतैं भी महापाप होय है। अर आपकै इच्छा किछू नाहीं, कोई स्वयमेव अपमान करै है, तौ वाकै महाधर्म है। सो यहाँ तौ भोजनका लोभके अर्थि याचना

करि अपमान करांया तातैं पाप ही है, धर्म नांहीं। बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग नाहीं है, शरीरसुखका कारण है। तातैं पूर्वोक्तप्रकार ताका निषेध जानना। अपना धर्मरुपउच्चपदकौं याचनाकरि नीचा करै हैं सो यामैं धर्मकी हीनता हो है। इत्यादि अनेकप्रकारकरि मुनिधर्मविषैं याचना आदि नाहीं सम्भवै है। सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरू कहै हैं। तातैं गुरूका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै हैं। सयग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपैं हैं। सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तौ प्रधानता नाहीं। आप जैसें अरहंत देव साधु गुरु दया धर्मकौं निरूपैं हैं, तिनका श्रद्धानकौं सम्यग्दर्शन कहै हैं। सो प्रथम तौ अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं। बहुरि इतनें ही श्रद्धानतैं तत्त्वश्रद्धान भए विना सम्यक्त्व कैसें होय, तातैं मिथ्या कहै हैं। बहुरि तत्त्वनिकाभी श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कहै हैं तौ प्रयोजनलिएं तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै हैं। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीवका, अणुस्कंधादिरूप अजीवका, पुण्यपापके स्थाननिका, अविरति आदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होनेके लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसें उनके शास्त्रविषैं कह्या है, तैसें सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसें तत्त्वार्थश्रद्धानकरि

सम्यक्त्व भया मानै हैं। सो हम पूछैं हैं, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तौ वाकौं मिथ्यादृष्टी कहेको कहौ। अर न हो है, तौ वानैं तौ जैनलिंग धर्मबुद्धि करि धरचा है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसैं नाहीं भई? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है, सो वानै जीवादिके भेद कैसैं न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमैं नाहीं, ताकै अरहंतवचनकी कैसैं प्रतीति नाहीं भई। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान तौ होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियाँ तिर्यंचआदिकै ऐसा श्रद्धान होनेंका निमित्त नाहीं अर तिनिकैं बहुत कालपर्यंतसम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हो है,तौ भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाहीं। सांचा स्वरूप है, सो आगैं वर्णन करैंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकौं सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कह्या; असंयत सम्यग्दृष्टिकैं विषयादिरूप जानना ताकौं सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाही, सांचा स्वरूप आगैं कहैंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करिसम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तौ व्रतादिकास्वरूप अन्यथा कहैं, सो किछू पूर्वैं गुरुवर्णनविषैं कह्या है।बहुरि द्रव्यलिंगीकै महाव्रत होतें भी सम्यक्चारित्र न हो है।अर उनका मतके अनुसारि गृहस्थादिक कै महाव्रत आदि विना अंगीकार किए भी सम्यक्चरित्र हो है, तातैं यह स्वरूप नाहीं। सांचास्वरूप अन्य है, सो आगैं कहैंगे।

यहाँ वे कहै हैं—द्रव्यलिंगीकै अंतरंगविषैं पूर्वोक्त श्रद्धानादिक

न भए, सो बाह्य ही भए, तातैं सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अंतरंग नाहीं अर बाह्य धारै, सो तौ कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय, तौ ग्रैवेयक कैसें जाय, नरकादि विषैं जाय। बंध तौ अंतरंग परिणामनितैं हो है। सो अंतरंग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाहीं। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतैं देवका बंध मानैं अर याहीकौं मोक्षमार्ग मानैं, सो बंध-मार्ग मोक्षमार्गकौं एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहारधर्म-विषैं अनेक विपरीत निरूपैं हैं। निंदककौं मारनेमैं पाप नाहीं, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके हीतैं भी भए, तिनकौं इन्द्रा-दिक मारे नाहीं। सो पाप न होता, तौ इन्द्रादिक क्यों न मारे। बहुरि प्रतिमाकै आभरणादि बनावै हैं. सो प्रतिबिम्ब तौ वीतरागभाव बधावनेकौं कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाएं, अन्यमत की मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ तांई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करै हैं। या प्रकार श्वेताम्बरमत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शनका अन्यथा निरूपणतैं मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातैं याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषैं ही ढूंढ़िया प्रगट भए हैं, ते आपकौं सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतैं सो कहिए है—

केई तौ भेष धारि साधु कहावै हैं, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाहीं भासै है। बहुरि मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग करने की प्रतिज्ञा

करैं, पीछैं पालैं नाहीं। बालककौं वा भोलाकौं वा शूद्रादिककौं ही दीक्षा दें। सो ऐसैं त्याग करैं अर त्याग करतें ही किछू विचार न करैं, जो कहा त्याग करूं हूं। पीछैं पालैं भी नाहीं अर ताकौं सर्व साधु मानें। बहुरि यह कहैं—पीछैं धर्म्म बुद्धि हो जाय, तब तौ याका भला हो है। सो पहले ही दीक्षा देनेवालेनैं प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञाभंग कराई, बहुरि यानै प्रतिज्ञा अंगीकारकरि भंग करी, सो यहु पाप कौनकों लाग्या। पीछैं धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा। बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकारकरि यथार्थ न पालै, ताकौं साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए, तौ जे साधु मुनि नाम धरावै हैं अर भ्रष्ट हैं, तिन सबनिकौं साधु मानौं। न मानिए, तौ इनकै साधुपना न रह्या। तुम जैसे आचरणतें साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाईए है। सबनिकौं साधु काहेकौं मानो हो।

यहाँ कोऊ कहै—हम तौ जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकौं साधु मानैंगे औरकौं न मानैंगे। ताकों पूछिए है—

एक संघ विषैं बहुत भेषी हैं। तहाँ जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो यह औरनिकौं साधु मानै है कि न मानै है। जो मानै है, तौ तुमतें भी अश्रद्धानी भया, ताकौं पूज्य कैसें मानों हो। अर न मानें है, तो उनसेती साधुका व्यवहार काहेकौं वर्त्तै है। बहुरि आप तो उनकौं साधु न मानें अर अपने संघविषैं राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकौं अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकौं करै। बहुरि तुम जाकौं साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकौं भी ऐसा ही उपदेश

करोगे, इनकौं साधु मति मानौं, ऐसें धर्म्मपद्धतिविषें विरुद्ध होय। अर जाकौं तुम साधु मानो हो तिसतें भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातें वह वाकौं साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो. वह भी यथार्थ मुनिधर्म्म नाहीं पालै हैं।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितें तौ घनें अच्छे हैं तातें हम मानें हैं। सो अन्यमतीनिविषैं तौ नानाप्रकार भेष सम्भवै, जातें तहाँ रागभावका निषेध नाहीं। इस जैनमतविषैं तौ जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु संज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै—शील संयमादि पालै हैं, तपश्चरणादि करै हैं. सो जेता करैं तितना ही भला है।

ताका समाधान— यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला है। परन्तु प्रतिज्ञा तौ बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा. तौ तहाँ प्रतिज्ञाभंगतें महापाप हो है। जैसें कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तौ वाकै बहुतबार भोजनका संयम होतें भी प्रतिज्ञाभंगतें पापी कहिए। तैसें मुनिधर्मकी प्रतिज्ञा करि कोई किंचित् धर्म्म न पालै, तौ वाकौं शीलसंयमादि होतें भी पापी ही कहिए। अर जैसें एकंतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै, तौ धर्मात्मा ही है तैसें अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै, तौ धर्मात्मा ही हैं। यहाँ तौ ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतें पापीपना सम्भवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करतें तौ पापीपना होता नाहीं। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहाँ कोऊ कहै—पंचमकालका अन्तपर्यन्त चतुर्विधि संघका सद्भाव

कह्या है। इनिकौं साधु न मानिए, तौं किसकौ मानिए ?

ताका उत्तर—जैसें इस कालविषें हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषें हंस नाहीं दीसै हैं, तौ औरनिकौं तौ हंस माने जाते नाहीं, हंसकासा लक्षणमिलें ही हंस मानें जांय। तैसें इस कालविषें साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविष साधु न दीसै हैं, तौ औरनिकौं तो साधु मानें जाते नाहीं, साधु लक्षणमिलें ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषैं दीसै है, तहाँतैं परै क्षेत्रविषैं साधुका सद्भाव कैसें मानैं ? जो लक्षण मिलें मानैं, तौ यहाँ भी ऐसैं मानौं। अर विना लक्षण मिले ही मानैं, तौ तहाँ अन्य कुलिंगी हैं तिनिहीकौं साधु मानौं। ऐसें विपरीति होय, तातें बनैं नाहीं। कोऊ कहै—इस पंचमकालमैं ऐसैं भी साधुपद हो है, तौ ऐसा सिद्धांतका वचन बताओ। विना ही सिद्धांत तुम मानो हो, तौ पापी होवोगे। ऐसैं अनेक युक्तिकरि इनिकैं साधुपना बनैं नाहीं है। अर साधुपना विना साधु मानि गुरु मानें मिथ्यादर्शन हो है। जातैं भले साधुकौं ही गुरु मानें ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिज्ञाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता

बहुरि श्रावकका धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै हैं। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतें भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकौं देशव्रती भया कहैं। सो वह त्रसघातादिक जामैं होय ऐसा कार्य करैं। सो देशव्रत गुणस्थानविषैं तौ ग्यारह अविरति कहे हैं.तहाँ त्रसघात कैसे सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा श्रावकके भेद हैं, तिन विषैं दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तौ कोई होता नाहीं

अर साधु होय। पूछें, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम—ऐसा विरुद्ध भाषें हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारककै थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावैं, सों सम्भवता नाहीं। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तौ थौरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए हैं। सो ए कार्य उत्तम हैं, तौ धर्म्मबुद्धि ऊँची क्रियाकौं काहेकौं छोरै। अर नीचे कार्य हैं, तौ काहेकौं अंगीकार करै। यहु सम्भवै ही नाहीं। बहुरि कुदेव बंदना, कुगुरुकौं नमस्कारादिक करतें भी श्रावकपना बतावैं। कहैं, धर्म्मबुद्धिकरि तौ नाहीं बंदै हैं, लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांतविषै तौ तिनिकी प्रशंसा स्तवनकौं भी सम्यक्त्वका अतिचार कहैं अर गृहस्थनिका भला मानवनेंके अर्थि बंदना करतैं भी किछू न कहैं। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बंदै हैं; तौ इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतें भी पाप मति कहो, अंतरंगविषें पाप जान्या चाहिए। ऐसैं सर्व आचारनंविषैं विरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापापकी प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तौ मुख्यता नाहीं अर पवनकायकी हिंसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभंग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अंग अनेक हैं, तिनविषै एक परजीवकी दया ताकौं मुख्य कहैं हैं, ताका भी विवेक नाहीं। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना. हिंसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अंगनिकी तौ मुख्यता नाहीं।

मुँहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करै हैं। सो मैलयुक्त पाटीकै थूकका सम्बन्धतैं जीव उपजैं तिनका तौ यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावं। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तौ यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तौ सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं—भूलि जाइए। तौ इतनी भी याद न रहै, तौ अन्य धर्मसाधन कैसैं होगा? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तौ मुनि भी करै हैं। तातैं गृहस्थकौं अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए विना सामायिकादि क्रिया करनेंतैं अविनय, विक्षिप्तताआदि करि पाप उपजै। ऐसैं जिनकी मुख्यता करैं, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दयाके अंग योग्य पालै हैं, हरितकायका त्याग आदि करैं, जल थोरा नाखैं, इनका हम निषेध करते नाहीं।

मूर्तिपूजा निषेधका निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकांत पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै हैं। सो उनहीके शास्त्रनिविषैं प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकौं आग्रहकरि लोपै हैं। भगवतीसूत्रविषैं ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहाँ मेरुगिरि आदिविषैं जाय "तत्थ चेययाइं वंदई" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहाँ चैत्यनिकौं बंदै हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ हैं, प्रतिमाका अर्थ नाहीं। याकौं पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषैं जाय जाय

तहाँ चैत्यवंदना करी, सो वहाँ ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे सम्भवै ? ज्ञानादिक की वंदना तौ सर्वत्र सम्भवै। जो वंदने योग्य चैत्य वहाँ ही सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताकौं तहाँ बंदनाकरनेका विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम संभवै है। याकौं हठकरि काहेकौं लोपिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषैं जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करैं हैं, ताका व्याख्यान उनकै जहाँ तहाँ पाईए है। बहुरि लोकविषैं जहाँ तहाँ अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है, यह भोग कुतूहलादिकके अर्थ तौ है नाहीं। अर इन्द्रादिकनिके स्थाननविषैं निःप्रयोजन रचना सम्भवै नाहीं। सो इन्द्रादिक तिनकौं देखि कहा करै हैं। कै तौ अपने मंदिरनिविषै निःप्रयोजन रचना देखि, उसतैं उदासीन होते होंगे, तहाँ दुःख होता होगा, सो सम्भवै नाहीं। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होंगे, सो अर्हंत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै. यह भी सम्भवैं नाहीं। तातैं तहाँ तिनकी भक्ति-आदिक ही करैं हैं,यहु ही सम्भवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहाँ प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याकौं लोपनेके अर्थि कहै हैं, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्तव्यका तौ फल होय ही होय। सो तहाँ धर्म्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म्म हो है, तौ अन्यत्र पाप होता था, यहाँ धर्म्म भया। याकौं औरनिके सदृश कैसें कहिए ? यहु तौ योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तौ तहाँ 'णमोत्थुणं' का पाठ पढ़्या; सो पापके ठिकानैं ऐसा पाठ काहेकौं पढ्या। बहुरि एक विचार यहाँ यहु आया; जो

'णमोत्थणं'' के पाठविषैं तो अरहंतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजीके आगैं जाय यहु पाठ पढ्या, तातैं प्रतिमाजीके आगैं जो अरहंत भक्तिकी क्रिया है, सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वे ऐसा कहैं—देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं; जातैं मनुष्यनिकै प्रतिमाआदि बनावनेविषैं हिंसा हो है। तौ उनहीके शास्त्रविषैं ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया, तैसैं करती भई। तातैं मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहाँ एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तौ द्रोपदी कैसैं प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी, तौ बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तौ गृहस्थनिकौं ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तौ तहाँ भोगादिकका प्रयोजन तौ था नाहीं, काहेकौं बनाया। बहुरि द्रोपदी तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया, तौ महापापिणी भई। धर्मविषैं कुतूहल कहा। अर धर्म किया, तौ औरनिकौं भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है। बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै हैं—जैसैं इन्द्रकी स्थापनातैं इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसैं अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाहीं। सो अरहंत आप काहूकौं भक्त मानि भला करते होंय, तौ ऐसैं भी मानैं। सो तौ वे भी वीतराग हैं। यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितैं शुभफल पावै है। जैसैं स्त्रीका आकार रूप काष्ठ पाषाणकीमूर्ति देखि, तहाँ विकाररूप होय अनुरागकरै, तौ ताकै पाप बंध होय। तैसैं अरहंतका आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म-

बुद्धितैं तहां अनुराग करैं, तौ शुभकी प्राप्ति कैसैं न होइ। तहां वह कहै है, विना प्रतिमा ही हम अरहंतविषैं अनुरागकरि शुभ उपजावैंगे। तौ इनिकौं कहिए है— आकार देखैं जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किएं होय नाहीं। याहीतैं लोकविषैं भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावै हैं। तातैं प्रतिमा आलंबनकरि भक्ति विशेष होनेतैं विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाकौं देखो, परंतु पूजनादिक करनेका कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर— जैसें कोऊ किसी जीवका आकार बनाय, रुद्रभावनितैं घात करै, तौ वाकै उस जीवकी हिंसा किए का सा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेषबुद्धितैं वाकी बुरी अवस्था करै, तौ जाका आकार बनाया, वाकी बुरी अवस्था किएं का सा फल निपजै। तैसें अरहंतका आकार बनाय राग बुद्धितैं पूजनादि करै, तौ अरहंतके पूजनादि किएं का सा शुभ निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतैं आकार बनाय पूजनादि करिए है। इस धर्मानुरागतैं महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै हैं—जो वाकै जिस वस्तुका त्याग होय, ताकै आगैं तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातैं बंदनादिकरि अरहंतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान—मुनिपद लेतें ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भएं पीछै तीर्थंकरदेवकै समवशरणादि बनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी, तौ इन्द्र

महापापी भया, सो बने नाहीं। भक्ति करी, तौ पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थकै आगैं त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातैं वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाकै आगैं अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं। उनकै विक्षिप्तता होती नाहीं। धर्मानुरागतैं जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै हैं—प्रतिमा बनावने विषैं, चैत्यालयादि करावनेविषैं, पूजनादि करावनेविषैं हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है। तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतैं महापाप हो है, तातैं हम इन कार्यनिकौं निषेधैं हैं।

ताका उत्तर उनही के शास्त्रविषैं ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभय पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर ॥ १ ॥

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन, शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिलें होय, ऐसा कार्यका भी होना ठहर्‍या। तहां पूछिए है—केवल धर्म्मतैं तौ उभय घाटि है ही, अर केवल पापतैं उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तौ यामैं तौ किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतैं बुरा कैसे कहिए। भला है, तो केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहर्‍या। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसैं ही सम्भवै है। कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाहीं करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्तै है। ताकों तौ छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतैं तो चैत्या-

लयादि करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तौ भई, परन्तु ताकै लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई; याकै लोभ छूटया, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतैं पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहाँ तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसें जे त्यागी न होंय, अपने धनकौं पापविषैं खरचते होंय तिनकों चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकौं नाहीं लगाय सकैं, तिनकौं पूजनादि करना निषेध नाहीं।

बहुरि तुम कहोगे, निरवद्य सामायिक कार्य ही क्यों न करै, धर्म विषैं काल गमावना तहां ऐसे कार्य काहेकौं करै?

ताका उत्तर—जो शरीर करि पाप छोरैं ही निरवद्यपना होय, तौ ऐसैंही करैं सो तौ है नाहीं। परन्तु परिणामनितैं पाप छूटैं निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषैं जाका परिणाम लागै नाहीं सो पूजनादिकर तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जायहै। जो तहाँ उपयोग को न लगावै, तौ पापकार्यनिविषैं उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं तहाँ प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो–धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तौ महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तौ सिद्धान्तका वचन नाहीं अर युक्तितैं भी मिलै नाहीं। जातैं ऐसे मानें इन्द्र जन्मकल्याणकविषैं बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषैं देव पुष्प वृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं, सो

ये महापापी होंय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तौ क्रियाका फल तौ भए बिना रहता नाहीं। जो पाप है,तौ इन्द्रादिक तौ सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेकौं करें अर धर्म्म है तौ काहेकौं निषेध करोहो। बहुरि भला तुमहीकौं पूछै हैं—तीर्थंकर वंदनाकौं राजादिक गए वा साधुवंदनाकौं दूरि भी जाईए है,सिद्धांत सुनने आदि कार्यनिकौं गमनादि करिये है, तहां मार्गविषैं हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका संस्कार करिये है, साधु होतें उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहाँ भी हिंसा हो है। सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहाँ महापाप उपजै है, तौ पूर्वै ऐसे कार्य क्यों किये तिनका निषेध करो! अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करै हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजै है तौ धर्मके अर्थि हिंसाविषैं महापाप बताय काहेकौं भ्रमावो हो। तातैं ऐसैं मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाएं बहुत धनकालाभ होय तौ वह कार्य करना,तैसें थोरा हिंसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तौ वह कार्य्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तौ मूर्ख है। तैसैं थोरी हिंसाका भयतें बड़ा धर्म्म छोरै, तौ पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तौ वह मूर्ख ही है। तैसैं वहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अरभक्ति आदि धर्मविषैंथोरा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तौ वह पापी ही है। बहुरि जैसैं बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतें ठिगावै, तौ मूर्ख है। तैसैं निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतें सावद्य धर्म्मविषैं उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसैं अनेक परि-

णामनिकरि अवस्था देखि भला होय सो करना। एकांतपक्ष कार्यकारी नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्मका अंग नाहीं है। रागादिकनिका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है। तातैं जैसें परिणामनिविषैं रागादिक घटैं सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकौं अणुव्रतादिकका साधन भए विना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावै हैं। सो सामायिक तौ रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किए ही तौ होइ नाहीं। बहुरि कहोगे, अन्य कार्य करता, तातैं तौ भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषैं प्रतिज्ञा तौ ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकौं न करूँगा, न कराऊँगा अर मनविषैं तो विकल्प हुआ ही करै। अर वचनकायविषैं भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहाँ प्रतिज्ञाभंग होय। सो प्रतिज्ञाभंग करनेतैं न करनी भली। जातैं प्रतिज्ञाभंगका महापाप है।

बहुरि हम पूछैं हैं—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढ़ै है, ताका अर्थ जानि तिसविषैं उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकौं तो नीके पालै नाहीं, अर प्राकृतादिकका पाठ पढ़ै, ताके अर्थका आपकौं ज्ञान नाहीं, बिना अर्थ जाने तहाँ उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै। ऐसें इन दोऊनिविषैं विशेष धर्मात्मा कौन? जो पहलेकौं कहोगे, तौ ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरेकौं कहोगे, तौ प्रतिज्ञा भंगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरया। पाठादिकरनेके अनुसारि ठहरया। तातैं अपना उपयोग जैसें निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा

करनी। जाका अर्थ जानिए,सो पाठ पढ़ना। पद्धतिकरि नाम धरावनेमैं नफा नाहीं। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहे ही तौ दुष्कृत मिथ्या न होय, कियादुःकृत मिथ्या होनेयोग्य परिणाम भए दुःकृत मिथ्या होय। तातैं पाठ ही कार्यकारी नाहीं। बहुरि पडिकमणोका पाठविषैं ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषैं जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रत धारैं विना ही तिनका पडिकमणा करना कैसैं सम्भवै? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषैं लाग्या दोषका निराकरण करै, तौ असम्भवपना होय। तातैं यह पाठ पढ़ना कौन प्रकार बनै? बहुरि पोसहविषैं भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पालै हैं। तातैं पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तौ पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछैं पोसहधारी होय। सो जेतैं काल बनै तेतेकाल साधनका तौ दोष नाहीं। परन्तु पोसहका नाम करिए, सो युक्त नाहीं। सम्पूर्ण पर्वविषैं निरवद्य रहैं ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतैं पोसह नाम होय,तौ सामायिककौं भी पोसह कहो, नाहीं तौ शास्त्रविषैं प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सा बड़ा नाम धराय लोगनिकौं भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासैहै। बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तौ और पढ़ै, अंगीकार और करै। सो पाठविषैं तौ "मेरे त्याग हैं" ऐसा वचन है, तातैं जो त्याग करै सो ही पाठ पढ़ै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै,तौ भाषाहीतैं कहै। परन्तु पद्धतिकै अर्थं यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करानेकी तौ मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा भावनिर्मल होनेका विवेक

नाहीं । आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै । सो फल तौ परिणामनितैं हो हैं । इत्यादि अनेक कल्पित बातें करै हैं, सो जैनधर्म्मविषै सम्भवै नाहीं । ऐसें यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है । तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है । सांचा जिनधर्म्मका स्वरूप आगैं कहैं हैं। ताकरि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तना योग्य है । तहाँ प्रवर्त्तैं तुम्हारा कल्याण होगा ।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषैं अन्यमतनिरूपण पाँचवाँ अधिकार समाप्त भया ॥५॥

ॐ नमः



छठा अधिकार

(कुदेव कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध)

दोहा

मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनकौं सांचे भजौं, यह हितहेतु उपाव ॥१॥

अर्थ—अनादितें जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताकौं कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषें प्रवृत्ति होय। तातें इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव सेवा का प्रतिषेध

तहाँ जे हितका कर्त्ता नाहीं अर तिनकौं भ्रमतें हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीनप्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कहीं तौ मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोकका प्रयोजन है। कहीं इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तौ सिद्ध होंय नाहीं। किछू विशेष हानि होय। तातें तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है—

अन्यमतविषैं जिनके सेवनतें मुक्ति होनी कही है, तिनकौं केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करें हैं, सो मोक्ष होय नाहीं। तिनका वर्णन पूर्वं अन्यमत अधिकारविषें कह्या ही है, बहुरि अन्यमतविषैं कहे देव, तिनकौं केई परलोकविषें सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए सेवैं हैं। सो ऐसी सिद्धि तौ पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो हैं।

सो आप तौ पाप उपजावै है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा। तौ तहां अन्याय ठहरचा। काहूकौं पापका फल दे,काहूकौं न दे,सो ऐसें तौ है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करेगा, तैसा ही फल पावेगा। काहू का बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतैं तिन देवनिका तौ नाम करैं, अर अन्य जीवनिकी हिंसा करैं वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषैं, सो पाप परिणामनिका फल तौ लागे विना रहने का नाहीं। हिंसा विषय कषायनिकौं सर्व पाप कहैं हैं। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानैं हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषैं हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातैं कुदेवनिका सेवनतैं परलोकविषैं भला न हो है।

लौकिक सुखेच्छासे कुदेव-सेवा

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिक की प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिएं कुदेवनिका सेवन करैं हैं। बहुरि हनुमानादिकौं पूजें हैं। बहुरि देवीनिकौं पूजें हैं। बहुरि गणगौर सांझी आदि बनाय पूजै हैं। चौथि शीतला दिहाड़ी आदिकौं पूजै हैं। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिककौं पूजें हैं। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिकों पूजै हैं। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिकौं पूजें हैं। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिकौं पूजैं हैं। अग्नि जलादिककौं पूजें हैं। शस्त्रादिककौं पूजें हैं। बहुत कहा कहिए,रोड़ी इत्यादिककों भी पूजें हैं। सो ऐसें कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितें हो है। काहेतें, प्रथम तो

जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पनामात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसें होय। बहुरि केई व्यंतरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेकौं समर्थ नाहीं। जो वे ही समर्थ होंय, तौ वे ही कर्त्ता ठहरें। सो तौ उनका किया किछू होता दीसता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक देय सकैं नाहीं। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाहीं।

इहाँ कोऊ कहै—दुःख तौ देते देखिए हैं, मानेतैं दुःख देते रहि जाय हैं।

ताका उत्तर—याकै पापका उदय होय,तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय ताकरि वे चेष्टा करैं, चेष्टा करतैं यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतैं किछू कहैं, यहु कह्या न करै तब वे चेष्टा करनेतैं रहि जाय। बहुरि याकौं शिथिल जानि कुतूहल किया करैं। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तौ किछू कर सकते नाहीं। सो भी देखिए हैं—कोऊ जीव उनकौं पूजें नाहीं वा उनकी निन्दा करैं वा वे भी उसतैं द्वेष करैं परन्तु ताकौं दुःख देई सकैं नाहीं। वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकौं मानैं नाहीं, सो उसतैं किछु हमारा वश नाहीं। तातैं व्यन्तरादिक किछू करनेकौं समर्थ नाहीं। याका पुण्य पापहीतैं सुख-दुःख हो है। उनके मानें पूजें उलटा रोग लागै है। किछू कार्यसिद्धि नाहीं। बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कहीं अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषैं उनका सेवक था, पीछैं मरि व्यन्तरादि भया, तहां ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषैं तिनिके सेवनें की प्रवृत्ति करावने के अर्थि कोई चमत्कार दिखावै है।

जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषैं लग जाय है। जैसें जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए हैं; सो जिनकृत नाहीं, जैनी व्यंतरादिकृत हो है। तैसैं ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना। बहुरि अन्यमतविषैं भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहै हैं। तहां केई तौ कल्पित बातं कही हैं। केई उनके अनुचरी व्यंतरादिककरि किए कार्यनिकौं परमेश्वर के किए कहै हैं। जो परमेश्वर के किए होंय तौ परमेश्वर तौ त्रिकालज्ञ छै। सर्वप्रकार समर्थ छै। भक्तकौं दुःख काहेकौं होनें दे। बहुरि अबहू देखिए है। म्लेच्छ आय भक्तनिकौं उपद्रव करै हैं, धर्मविध्वंस करै हैं, मूर्तिको विघ्न करै हैं सो परमेश्वरकौं ऐसे कार्य का ज्ञान न होय तौ सर्वज्ञपनों रहै नाहीं। जानें पीछैं सहाय न करै तौ भक्तवत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया। बहुरि साक्षीभूत रहै है तौ आगें भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे—वैसी भक्ति नाहीं है। तो म्लेच्छनितैं तौ भले हैं वा मूर्ति आदि तौ उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तौ न होने देना था। बहुरि म्लेच्छपापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाहीं। जो परमेश्वरका किया है, तौ निंदकनिकौं सुखी करै, भक्तनिकौं दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या? अर परमेश्वर का किया न हो हैं, तौ परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया। तातैं परमेश्वरकृत कार्य नाहीं। कोई अनुचरी व्यंतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही निश्चय करना।

व्यंतर बाधा

बहुरि इहां कोऊ पूछै कि कोई व्यंतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकौं बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप बचन कहै वा औरनिकौं अन्यथा परिणमावै, औरनिकौं दुःखदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है ?

ताका उत्तर – व्यंतरनिविषैं प्रभुत्व की अधिकता हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषैं वासादिक बताय हीनता दिखावै हैं सो तौ कुतूहलतैं वचन कहै हैं। व्यंतर वालकवत् कुतूहल किया करें। सो जैसें बालक कुतूहलकरि आपकों हीन दिखावै, चिड़ावै, गाली सुनै, बार पाडै*, पीछे हंसने लगि जाय, तैसें ही व्यंतर चेष्टा करै है। जो कुस्थानहीके वासी होंय, तौ उत्तम स्थानविषैं आवैं हैं तहाँ कौनके ल्याए आवें हैं। आपहीतें आवै हैं, तौ अपनी शक्ति होतें कुस्थानविषैं काहेकों रहैं ? तातैं इनिका ठिकाना तौ जहाँ उपजै हैं, तहां इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिये चाहै सो कहै हैं। बहुरि जो इनकौं पीड़ा होती होय तौ रोवते-रोवते हँसने कैसें लगि जाँय हैं। इतना है, मन्त्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई सांचा मन्त्रकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तौ वाकैं किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाकौं मनैं करै, तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि न हो है। मन्त्र वाला जलाया कहै; बहुरि बह प्रगट होय जाय जातैं वैक्रियिक शरीरका जलावना

* ऊँचे स्वरसे रोवै

आदि सम्भवै नाहीं। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोकक्षेत्र-काल जाननेंका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तौ अप्रत्यक्षकौं पूछै ताका उत्तर दें, तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तौ अन्य महत्ज्ञानीकों पूछि आय करि जवाब दें। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तौ पूछें ताका उत्तर न दें, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिककै उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछें ताका स्मरण मात्र रहै है तातैं तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तौ करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातें कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै, तौ अवधि तौ थोरा, विना जाने कैसें कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकैं,वा इच्छा न होय,तहाँ मान कुतूहलादिकतैं उत्तर न दे वा झूंठ बोलै,ऐसा जानना। बहुरि देवनिमैं ऐसी शक्ति है,जो अपने वा अन्यके शरीरकौं वा पुद्गल स्कधकौं जैसी इच्छा होय तैसें परिणमावै। तातैं नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नानाचरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीर कौं रोगादियुक्त करै। यहाँ इतना है—अपने शरीरकौं वा अन्य पुद्गल स्कंधनिकौं तौ जेती शक्ति होय तितनें ही परिणमाय सकै; तातैं सर्व कार्य करने की शक्ति नाहीं। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिककौं वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय, तौ आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै। अर पाप उदय होय, तौ वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसें व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए,तिनके माननें पूजने-में दोष कहा?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतैं सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतैं दुःख न देय सकैं, बहुरि तिनके पूजनेतैं कोई पुण्यबंध होय नाहीं, रागादिककी वृद्धि होतैं पाप ही हो है। तातैं तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाहीं—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यंतरादिक मनावै हैं, पुजावै हैं, सो कुतूहल करै हैं, किछू विशेष प्रयोजन नाहीं राखै हैं। जो उनकौं मानै पूजै,तिस सेती कोतूहल किया करैं। जो न मानै पूजैं, तासों किछू न कहैं। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तौ न मानने पूजने-वालेकौं घना दुःखी करै। सो तौ जिनकै न मानने पूजने का अवगाढ़ है,तासों किछू भी कहते दीसते नाहीं। बहुरि प्रयोजन तौ क्षुधादिककी पीड़ा होय तौ होय, सो उनकै व्यक्त होय नाहीं। जो होय, तौ उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताकों भी ग्रहण क्यों नकरैं, वा औरनिके जिमावने आदि करनेहीकौं काहेंकौं कहैं। तातैं उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकौं उनके कुतूहलका ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातैं उनकौं मानना पूजना योग्य नाहीं।

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यंतर ऐसें कहै हैं—गया आदि विषैं पिंड-प्रदान करो तौ हमारी गति होय, हम बहुरि न आवें, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तौ रहै ही है। व्यंतरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतैं विशेष संस्कार हैं। तातैं पूर्व-भवविषैं ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषैं पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातैं ऐसे कार्य करनेको कहैं हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यंतर हो हैं, ते तौ ऐसें कहैं नाहीं, वे तौ अपने संस्कार रूप ही वचन कहैं। तातैं सर्व व्यंतरनिकी गति तैसें ही होती होय तौ सर्व ही समान

प्रार्थना करै सो है नाहीं, ऐसैं जानना। ऐसैं व्यंतरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि गृह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनकौं पूजैं हैं सो भी भ्रम है। सूर्यादिककौं परमेश्वरका अंश मानि पूजैं हैं। सो वाकै तौ एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्नादिकभी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाहीं, जातैं वाकौं परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककौं धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजै हैं। सो उसके पूजनेंतें ही धन होता होय, तौ सर्व दरिद्री इस कार्य कौं करैं। तातैं ए मिथ्याभाव हैं। बहुरि ज्योतिषके विचारतैं खोटा ग्रहादिक आए, तिनिका पूजनादि करैं हैं, ताके अर्थ दानादिक दे हैं। सो जैसैं हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करैं हैं, पुरुषकै दाहिणें बावें आए सुख दुःख होनेंका आगामी ज्ञानकों कारण हो हैं, किछू सुख दुःख देनेकौं समर्थ नाही। तैसें ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करैं हैं। प्राणीकैं यथासम्भव योगकौं प्राप्त होतें सुख दुःख होने का आगामी ज्ञानकौं कारण हो हैं, किछू सुख दुःख देनेकौं सामर्थ नाहीं। कोई तौ उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय तातैं तिनका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहां कोऊ कहै—देना तौ पुण्य है, सो भला ही है।

ताका उत्तर—धर्म्मके अर्थिदेना पुण्य है। यहु तौ दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातैं पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकारकरि ज्योतिषी देवनिकौं पूजैं हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तौ व्यंतरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करै हैं। कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करै हैं। ऐसैं व्यंतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकौं अनुसरै हैं, तिनके पूजनादि करने मैं तौ दोष नाहीं।

ताका उत्तर—जिनमतविषैं संयम धारैं पूज्यपनौं हो है। सो देवनिकै संयम होता ही नाहीं। बहुरि इनकौं सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमैं सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिए तौ सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकांतिकदेव तिनकौंही क्यों न पूजिए। बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रकै है वा सम्यग्दृष्टी भी है। वाकौं छोरि इनकौं काहेकौं पूजिए। बहुरि जो कहौगे, जैसें राजाकै प्रतीहारादिक हैं,तैसैं तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादि-विषैं इनिका अधिकार नाहीं। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसें प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए,तैसैं ये तीर्थंकरकौं मिलावते नाहीं। वहाँ तौ जाकै भक्तिहोय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करौ। किछू किसीके आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिएं रौद्रस्वरूप जिनिका, तिनकी गाय गाय भक्ति करैं। सो जिनमतविषैं भी रौद्ररूप पूज्य भया, तौ यहुभी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषैं ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो

है। ऐसें क्षेत्रपालादिककौं भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजाका निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतैं हीन भासैं हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनकी निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतैं अत्यन्त हीन अवस्थाकौं प्राप्त देखिये है। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं,सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष देखिए हैं; पूज्यपनैंका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तातैं इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकौं पूजें प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि भी किछू फल प्राप्ति नाहीं भासै है तातैं इनकौं पूजना योग्य नाहीं। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोकविषैं तौ आपतैं नीचेकौं नमतैं आपकों निंद्य मानैं अर मोहित होय रोड़ीपर्यंतकौं पूजता भी निंद्यपनों न मानैं। बहुरि लोकविषैं तौ जातैं प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करैं अर मोहित होय कुदेवनितैं मेरा प्रयोजन कैसैं सिद्ध होगा; ऐसा विना विचारैं ही कुदेवनिका सेवन करैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारों विघ्न होंय ताकौं तौ गिनैं नाहीं अर कोई पुण्यके उदयतैं इष्ट कार्य होय जाय ताकौं कहैं, इसके सेवनतैं यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवनिका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होंय, तिनकौं तौ गिनैं नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तौ कहैं, याका सेवन न किया तातैं अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है, जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तौ जे पूजें तिनकै इष्ट होइ, न तिनकैं पजें अनिष्ट होय। सो तौ दीखता नाहीं। जैसैं काहूकै शीतलाकों

बहुत मानैं भी पुत्रादि मरते देखिए हैं। काहूकूं बिना माने भी जीवते देखिए है। तातैं शीतलाका मानना किछू कार्यकारी नाहीं। ऐसें ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाहीं।

इहाँ कोऊ कहै—कार्यकारी नाहीं, तौ मति होहु, किछू तिनके माननेतैं बिगार भी तौ होता नाहीं।

ताका उत्तर—जो विगार न होय, तौ हम काहेको निषेध करैं। परन्तु एक तौ मिथ्यात्वादि दृढ़ होनेतैं मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बड़ा बिगार है। एक पापबंध होनेतैं आगामी दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहाँ पूछै कि मिथ्यात्वादिभाव तौ अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय हैं अर पापबंध खोटे कार्य किए होय है, सो तिनके माननेतैं मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसें होय ?

ताका उत्तर—प्रथम तौ परद्रव्यनिकौं इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है। जातैं कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाहीं। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तौ ताका कारण पुण्य पाप है। तातैं जैसें पुण्यबंध होय, पापबंध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै। सो कुदेवके माननेतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाहीं। केवल वृद्धिकौं प्राप्त हो है। बहुरि पुण्य बंध भी होता नाहीं, पाप बंध हो है। बहुरि कुदेव काहूकौं धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातैं ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किस अर्थ कीजिए है। जब अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी

न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तव जे कारण नाहीं तिनकौं भी इष्ट अनिष्टका कारण मानैं। तव कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा भी तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु सेवाका निषेध

आगैं कुगुरुके श्रद्धानादिककौं निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तौ परिणमैं अर मानादिकतैं आपकौं धर्म्मात्मा मनावैं, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावैं, अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बड़े धर्म्मात्मा कहावैं, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावैं; ऐसैं धर्म्मका आश्रयकरि आपकौं बड़ा मनावैं, ते सर्व कुगुरु जानने। जातैं धर्म्मपद्धतिविषैं तौ विषयकषायादि छूटैं जैसा धर्म्मकौं धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तौ कुलकरि आपकौं गुरु मानै हैं। तिनविषैं केई ब्राह्मणादिक तौ कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातैं हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तौ धर्म्मसाधनतैं है। जो उच्च कुलविषैं उपजि हीन आचरन करै, तौ वाकौं उच्च कैसैं मानिए। जो कुलविषैं उपजनेहीतैं उच्चपना रहै, तौ मांसभक्षणादि किए भी वाकौं उच्च ही मानौं। सो बनैं नाहीं। भारतविषैं भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे हैं। तहाँ "जो ब्राह्मण होय चाँडालकार्य करै, ताकों चांडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतैं उच्चपना होय तौ ऐसी हीनसंज्ञा काहेकौं दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषैं ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतैं उपजे। तहाँ कुलका अनुक्रम कैसें रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तौ ब्रह्मातैं कहै हैं। तातैं सबका एक कुल है, भिन्नकुल कैसैं रह्या? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतैं वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतैं संगम होतैं संतति होती देखिए है। तहां कुलका प्रमाण कैसैं रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसें है, तौ उच्च नीचकुलका विभाग काहेकौं मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषैं तौ असत्य भी प्रवृत्तिसंभवै, धर्म्मकार्य्यविषैं तौ असत्यता संभवै नाहीं। तातैं धर्म्मपद्धतिविषैं कुलअपेक्षा महंतपना नाहीं संभवै है। धर्म्मसाधनहीतैं महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषैं महंतता है, सो धर्म्म प्रवृत्तितैं है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति कौं छोड़ि हिंसादिक पापविषैं प्रवर्त्तैं महंतपना कैसें रहै? बहुरि केई कहैं—जो हमारे बड़े भक्त भए हैं, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषैं हैं, तातैं हम गुरु हैं। सो उन बड़ेनिके बड़े तौ ऐसे थे नाहीं। तिनकी संततिविषैं उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तौ उत्तमपुरुषकी संततिविषैं जो उत्तमकार्य न करै, ताकौं उत्तम काहेकौं मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषैं वा लोकविषैं यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदकौं पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदकौं पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदकौं पावै, पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदकौं पावै। तातैं बड़ेनकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नाहीं। ऐसें कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनौं मानैं हैं। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहां तिन विषैं

तिस महंतपुरुषकेसे गुण न होत भी गुरुपनौं मानिए, जो ऐसैं ही होय तौ उस पाटविषैं कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करेगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकौं प्राप्त होगा, सो संभवे नाहीं। अर वह पापी है, तौ पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपदयोग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलैं तौ स्त्री आदिके त्यागी थे, पीछैं भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतति आपकौं गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछै गुरुपना कैसें रह्या ? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनकौं मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसें मानैं ? बहुरि केई अन्य तौ सर्व पापकार्य करैं, एक स्त्री परणै नाहीं, इसही अंगकरि गुरुपनों मानै हैं। सो एक अब्रह्म ही तौ पाप नाहीं, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकौं करतैं धर्म्मात्मा गुरु कैसें मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितैं विवाहादिकका त्यागी नाहीं भया है। कोई आजीवका वा लज्जाआदि प्रयोजन कौं लिए विवाह न करै है। जो धर्म्मबुद्धिहोती, तौ हिंसादिककौं काहेकौं बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाहीं, ताकै शीलकी दृढ़ता रहै नाहीं। अर विवाह करै नाहीं, तब परस्त्रीगमनादि महापापकौं उपजावै। ऐसी क्रिया होतैं गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकारकरि भेषधारनेतैं गुरुपनौं मानैं हैं। सो भेष धारैं कौन धर्म्म भया, जातैं धर्म्मात्मा गुरु मानैं हैं। तहां केई टोपी दे हैं, केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै हैं, केई चादर ओढ़ै हैं, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै हैं. केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वाँग बनावै हैं।

सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटै थी, तौ पाग-जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेकौं किया ? उनको छोरि ऐसैं स्वांग बनावने मैं कौन धर्मका अंग भया। गृहस्थनिकौं ठिगनेके अर्थि ऐसैं भेष जाननें। जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वाँग राखे, तौ गृहस्थ कैसैं ठिगावै। अर याकौं उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना.तातैं ऐसे स्वाँग बनावै हैं। जगत भोला, तिस स्वांगकौं देखि ठिगावै अर धर्म्म भया मानैं, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ॥ १ ॥
(उपदेश सि० र० ५)

याका अर्थ—जैसें कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककौं मुसावता हुवा भी हर्ष मानै है, तैसें मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धनकौं नाहीं जानैं हैं। भावार्थ—यहुमिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रुषा आदितैं अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्याबुद्धि तैं हर्ष करै हैं। तहाँ केई तौ मिथ्याशास्त्रनिविषैं भेष निरूपण किये हैं, तिनकौं धारैं हैं। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगमक्रिया-कियेतैं उच्चपद प्ररूपणतैं मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्गविषैं बहुत लागैं, इस अभिप्रायतैं मिथ्या उपदेश दिया। ताकी परंपराकरि विचाररहित जीव इतना तौ विचारै नाहीं, जो सुगमक्रियातैं उच्चपद होना बतावैं हैं, सो इहाँ किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषैं प्रवर्तैं हैं। बहुरि केई शास्त्रनिविषैं तौ मार्ग कठिन

निरूपण किया सो तौ सधै नाहीं अर अपना ऊंचा नाम धराएं बिना लोक मानैं नाहीं, इस अभिप्रायतै यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तौ ऊंचा धरावै हैं अर इनिका आचारनिकौं नाहीं साधि सकैं हैं तातैं इच्छानुसारि नाना भेष बनावैं हैं। बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तौ नवीन नाम धरावै हैं अर इच्छानुसारि ही भेष बनावै है। ऐसें अनेक भेष धारनेतैं गुरुपनौं मानै हैं, सो यहु मिथ्या है।

इहाँ कोऊ पूछै कि भेष तौ बहुत प्रकारके दीसैं, तिन विषैं सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसें होय?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषैं विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुड़विषैं कुंदकुंदाचार्यकरि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि॥

—(द० पा० १८)

याका अर्थ—एक तौ जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारहीं प्रतिमा का धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिका लिंग, ऐसैं ए तीन लिंग तौ श्रद्धानपूर्वक हैं। बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाहीं है। भावार्थ—यहु इन तीनलिंग विना अन्यलिंगकौं मानैं सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है। बहुरि इन भेषीनिविषैं केई भेषी अपनें भेष की प्रतीति करावनेंके अर्थि किंचित् धर्मका अंगकौं भी

पालैं हैं। जैसैं खोटा रुपैया चलावनेंवाला तिस विषैं किछू रूपा का भी अंश राखै है, तैसैं धर्म्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै हैं।

इहां कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तौ फल होगा।

ताका उत्तर— जैसैं उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करैं, तौ पापी है। अर एकंत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तौ भी धर्म्मात्मा है। तैसैं उच्चपदवीका नाम धराय तामैं किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तौ महापापी है। अर नीचीपदवीका नाम धराय, किछू भी धर्म्म साधन करै, तौ धर्म्मात्मा है। तातैं धर्म्मसाधन तौ जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊंचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किएं महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुड़विषैं कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प–बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं १॥
—(सूत्र प्रा० १८)

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतैं था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषैं तिलतुषमात्र भी ग्रहण न करैं। बहुरि कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तौ तिसतैं निगोद जाय। सो इहां देखो, गृहस्थपनेमैं बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै,तौभी स्वर्ग मोक्षका अधिकारी हो है अर मुनिपनेमैं किंचित् परिग्रह अंगीकार किएं भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं।

देखो, हुँडावसर्प्पिणी कालविषैं यहु कलिकाल प्रवर्त्तै है। ताका दोष-करि जिनमतविषें भी मुनिका स्वरूप तौ ऐसा जहां बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाहीं, केवल अपनी आत्माकौं आपो अनुभवते शुभा-शुभभावनितें उदासीन रहै हैं अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारैं, तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अंगी-कार करैं। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकौ ग्रहैं, वा भोजनादिविषैं लोलुपी होय, वा अपनी पद्धति बधावनेकौं उद्यमी होय, वा केई धनादिक भी राखैं, वा हिंसादिक करैं, वा नाना आरंभ करैं । सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तौ ऐसे पापनिका फल तौ अनंत संसार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकौं तौ पापी कहैं अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभंग करते देखैं. बहुरि तिनकौं गुरु मानैं, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करैं। सो शास्त्रविषैं कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है तातैं इनकौं भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तौ क्रम यह है—पहलैं तत्त्वज्ञान होय, पीछैं उदासीन परिणाम होय, परिष-हादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै । तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अंगीकार करावैं। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञान-रहित विषयकषायासक्त जीव तिनकौं मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछैं अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बड़ा अन्याय है। ऐसैं कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया । अब इस कथन के दृढ़ करनेकौं शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहां उपदेशसिद्धान्त-रत्नमाला विष ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्ढंति ॥३१॥

कालदोषतैं गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकैं दानादि ग्रहै हैं । सो इस दुखमा कालविषैं दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषैं डूबैं हैं। बहुरि तहाँ कह्या है—

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ॥ ३६ ॥

याका अर्थ—सर्पकौं देखि कोऊ भागै, ताकौं तौ लोक किछू भी कहै नाहीं। हाय हाय देखो, जो कुगुरुसर्पकौं छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहैं, बुरा बोलैं।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ॥ ३७ ॥

अहो सर्पकरि तौ एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनंतमरण दे है—अनंतबार जन्ममरण करावै है। तातैं हे भद्र, साँपका ग्रहण तौ भला अर कुगुरुका सेवन भला नाहीं। और भी गाथा तहां इस श्रद्धान दृढ़ करनेकौं कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लैनी । बहुरि संघपट्टविषैं ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्व वराकीयति ॥

याकाअर्थ—देखो,क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहींचैत्यालयादिविषैं दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदकौं प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषैं अपने गृहवत् प्रवर्त्तै है, निजगच्छविषैं कुटुम्बवत् प्रवर्त्तै है, आपकौं इन्द्रवत् महान् मानैं है, ज्ञानीनिकौं बालकवत् अज्ञानी मानैं है, सर्वगृहस्थनिकौं रंकवत् मानैं है सो यहु बड़ा आश्चर्य भया है बहुरि 'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो' इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है—जिनकरि जन्म न भया, वध्या नाहीं. मोल लिया नाहीं, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाहीं, अर गृहस्थनिकों वृषभवत् बहावें, जोरावरी दानादिक लें, सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है। काई न्याय पूछनेवाला नाहीं।

यहां कोऊ कहै, ए तौ श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकौं दई ?

ताका उत्तर—जैसैं नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तमपुरुषकै तौ सहज ही निषेध भया। तैसैं जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करैं, तौ दिगम्बरधर्म्म विषैं तौ ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बरग्रंथनिविषैं भी इस श्रद्धानके पोषक वचन हैं। तहां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़विषैं (दर्शनपाहुडमें) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥ २॥

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म

उपदेश्या है। ताकौं सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानौं—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरु का श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसें होंय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म विना वंदने योग्य कैसें होंय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठाय।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसंपि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

जे दर्शनविषें भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषैं भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतें भ्रष्ट हैं; और भी जीव जो उनका उपदेश मानें हैं, तिन जीवनिका नाश करै हैं, बुरा करै हैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ १२ ॥

जे आप तौ सम्यक्ततें भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिकौं अपने पगौं पड़ाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो हैं, भाव यहु—स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोध की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥ १३ ॥
—(द० पा०)

जो जानता हुवा भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किएं तिस पापकी अनुमोदनाका फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड में) कहैं हैं—

जस्स परिग्गहग्गहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९॥
—(सूत्र पा०)

जिस लिंगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अंगीकार होय सो जिन वचनविषैं निंदा योग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है। बहुरि (भावपाहुडमें) कहैं हैं—

धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥ ७१
(भाव पा०)

याका अर्थ—जो धर्म्मविषं निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है। भाँडवत् भेषधारी है। सो नग्न भए भाँडका दृष्टांत संभवै है। परिग्रह राखै, तौ यह भी दृष्टांत बनैं नाहीं।

जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिंग धारि पाप करैं हैं, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषैं भ्रष्ट जानने। बहुरि ऐसा कह्या है—

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ—जे पंचप्रकार वस्त्रविषैं आशक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे हैं, याचनासहित हैं, अधःकर्म्म आदि दोषनिविषैं रत हैं, ते मोक्षमार्गविषैं भ्रष्ट जाननें। और भी गाथासूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेकौं कारण कहे हैं ते तहाँतैं जाननें। बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है, ताविषैं मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरंभ यंत्रमंत्रादि करै हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन विषैं ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः।
वनाद्वसन्त्युपग्रामं कलौ कष्ट तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ—कलिकालविषैं तपस्वी मृगवत् इधर उधरतैं भयवान् होय बनतैं नगरके समीप बसै हैं, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तौ नगरविषै रहना तौ निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥ २०० ॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनंतसंसार जातैं ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप, प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी, ऐसा है। बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषैं ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्ली पुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभंतु।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणंतु ॥२१४॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है । भ्रांति सहित ऐसें ही है। बहुरि ज्ञानी बंधका कारण इनकौं जानता सता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुंचि वि छारेण।
सयलु वि संग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ।२१६॥

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या । सो कौन, जिह जीव जिनवरका लिंग धार्या अर राखकरि माथाका लौंचकरि समस्तपरिग्रह छांड्या नाहीं ।

जे जिणलिंग धरेवि मुण इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥

याका अर्थ—हे जीव ! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्टपरिग्रहकौं ग्रहैं हैं, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकूं बहुरि भखैं हैं । भाव यहु—निंदनीय हैं इत्यादि तहाँ कहै हैं। ऐसें शास्त्रनिविषैं कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषैं कहे हैं, तहां गृहस्थनिके बालकनिकौं प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लैना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषतें इनही दोषनिकौं लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया हैं, तिन हीका लक्षणनिकौं धरै हैं। इतना विशेष—वे द्रव्यां तौ नग्न रहै हैं, ए नानापरिग्रह राखै हैं। बहुरि तहाँ मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार

लेनेको विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहैं हैं। बहुरि ग्रहस्थधर्म्मविषैं भी उचित नाहीं वा अन्याय लोकनिंद्य पापरूप कार्य तिनकों करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तौ अविनय करैं हैं। बहुरि आप तिनतें भी महंतता राखि ऊंचा बैठना आदि प्रवृत्तिकौं धारं हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासैं अर आपकौं मुनि मानैं, मूलगुणादिकके धारक कहावैं। ऐसैं ही अपनी महिमा करावैं। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करैं नाहीं। उनकी भक्तिविषैं तत्पर हो हैं। सो बड़े पापकौं बड़ा धर्म्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसें अनंतसंसार न होय। एक जिनवचनकौं अन्यथा मानें महापापी होना शास्त्रविषैं कह्या है। यहां तौ जिन-वंचनकी किछू बात राखी ही नाहीं। इस समान और पाप कौन है?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै हैं, तिनका निराकरण कीजिए है। तहाँ वह कहै है,—गुरूविना तौ निगुरा होय, अर वैंसे गुरु अबार दीसै नाहीं। तातैं इनहीकौं गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तौ वाका नाम है, जो गुरु मानैं ही नाहीं। बहुरि जो गुरुको तौ मानैं अर इस क्षेत्रविषैं गुरुका लक्षण न देखि काहूकौं गुरु न मानैं, तौं इस श्रद्धानतैं तौ निगुरा होता नाहीं। जैसें नास्तिक्य तौ वाका नाम है, जो परमेश्वरकौं मानैं ही नाहीं। बहुरि जो परमेश्वरकौं तौ मानैं अर इस क्षेत्रविषैं परमेश्वरका लक्षण न देखि काहूकौं परमेश्वर न मानैं, तौ नास्तिक्य तौ होता नाहीं। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि वह कहै है, जैनशास्त्रनिविषैं अबार केवलीका तौ अभाव क़ह्या है, मुनिका तौ अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर—ऐसा तौ कह्या नाहीं, इनि देशनिविषैं सद्भाव रहैंगा। भरत क्षेत्रविषैं कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तौ बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहो हो, तिस ही क्षेत्र विषैं सद्भाव मानोगे, तौ जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे,तहां जावोगे तब किसकौं गुरु मानोगे। जैसें हंसनिका सद्भाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाहीं ,तौ और पक्षीनिकौं तो हंसपना मान्या जाता नाहीं। तैसें मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाहीं, तौ औरनिकौं तो मुनि मान्या जाय नाहीं।

बहुरि वह कहै है, एक अक्षर का दाताकौं गुरु मानैं हैं। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनिकौं गुरु कैसें न मानिए ?

ताका उत्तर—गुरु नाम बड़ेका है। सो जिस प्रकार की महंतता जाकै संभवै. तिस प्रकार ताकौं गुरुसंज्ञा संभवै। जैसें कुल अपेक्षा मातापिताकौं गुरु संज्ञा है, तैसें ही विद्या पढ़ावनेवालेकौं विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहां तौ धर्म्मका अधिकार है। तातैं जाकैं धर्म्म अपेक्षा महंतता संभवै, सो ही गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्त' खलु धम्मो'* ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीकौं गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसें भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहां देवका श्रद्धानविषैं अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसें और निका भी नाम गुरु है, तथापि इहां श्रद्धानविषैं निर्ग्रंथहीका ग्रहण

* प्रवचनसार १-७

है। सो जिनधर्म्म विषैं अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए,सो कारण कहा?

ताका उत्तर—निर्ग्रंथविना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महंतता नांहीं धरै हैं। जैसें लोभी शास्त्रव्याख्यान करै,तहाँ वह वाकौं शास्त्र सुनावनेतें महंत भया। वह वाकौं धनवस्त्रादि देनेतें महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै, तथापि अन्तरंग लोभी होय, सो दाता कौं उच्च मानें अर दातार लोभीकौं नीचा मानें, तातें वाकै सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तौ आहार ले हैं।

ताका उत्तर—लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातें आहार न ले हैं। तातैं महंतता घटै नाहीं। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसे ही अन्य जीव जाननें। तातैं निर्ग्रन्थ ही सर्वप्रकार महंततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाहीं। तातें गुणनिकी अपेक्षा महंतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशंक स्तुति करी जाय नाहीं। बहुरि निग्रन्थ बिना अन्य जीव जसा धर्म्म साधन करैं, तैसा वा तिसतें अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकैं। तहाँ गुरु संज्ञा किसकौं होय? तातें बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तौ अबार यहाँ नाहीं, तातें जैसें अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसें गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं—

ताका उत्तर—जैसें राजा की स्थापना चित्रामादिककरि करै तौ राजा का प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौं राजा

मनावै,तौ तिसका प्रतिपक्षी होइ। तैसें अरहंतादिककी पाषाणादिविषैं स्थापना बनावै, तौ तिनका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौं मुनि मनावै, तौ वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया। ऐसें ही जो स्थापना होती होय, तौ आपकौं अरहंत भी मनावो। बहुरि उनकी स्थापना होय, तौ बाह्य तौ ऐसें ही भए चाहिए। वे निर्ग्रन्थ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कैसें बनें ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तौ जैसे सम्भवैं, तैसें नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तैसे मुनि।

ताका उत्तर —श्रावकसंज्ञा तौ शास्त्रविषैं सर्व गृहस्थ जैनीकौं है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताकौं उत्तरपुराणविषैं श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहां सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधारी होते, तौ असंयत मनुष्यनिकी जुदी संख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै हैं। अर मुनिसंज्ञा तौ निर्ग्रन्थ विना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावककै तौ आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य माँस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तौ सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाहीं। तातैं मुनिपनों काहू प्रकार करि सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषैं तौ पूर्वं जम्बूकुमारादिक बहु हिंसादिककार्य किए सुनिए है। मुनि होयकरि तौ काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कारजकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजी के साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकौं कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा

प्रवर्त्तोगे तौ हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय,सो तुम जानो। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तें,ते तो दंड योग्य हैं। वंदनादि योग्य कैसैं होय? अब बहुत कहा कहिए,जे जिनमत विषं कुभेष धारैं हैं ते महापाप उपजावैंहैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करैं हैं, ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषैं यह कथा है—जो श्रेष्ठी धर्म्मात्मा चारण मुनिनिकौं भ्रमतें भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तौ प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकौं दानादिक देना कैसे सम्भवै ?

यहाँ कोऊ कहै,हमारै अंतरंग विषैं श्रद्धान तो सत्य है,परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करैं हैं, सो फल तो अंतरंग का होगा ?

वाका उत्तर—षट्पाहुडविषैं लज्जादिकरि वंदनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वै ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तौ यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतैं नमस्कारादि करै, तहां अन्तरंग कैसें न कहिए। जैसैं कोई अंतरंग विषैं तौ मांसकौं बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेकौं मांस भक्षण करै, तो वाकौं व्रती कैसें मानिए ? तैसें अंतरंगविषैं तौ कुगुरुसेवनकौं बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेकौं सेवन करै, तौ श्रद्धानी कैसें कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग सम्भवै है। तातैं जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकौं काहू प्रकारकरि भी कुगुरूनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाहीं। या प्रकार कुगुरूसेवनका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकौं कुगुरु सेवनतें मिथ्यात्व कैसें भया ?

ताका उत्तर—जैसैं शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत् रमण क्रिया सर्वथा करै नाहीं, तैसैं तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरूवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाहीं। काहेतैं, यह तौ जीवादितत्त्वनि-का श्रद्धानी भया है। तहाँ रागादिककौं निषिद्ध श्रद्धहै है वीतराग भाव को श्रेष्ठ मानैं है, तातैं तिनकै वीतरागता पाईए। वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाइए, तिनकौं निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाहीं।

कोऊ कहै—जैसैं राजादिककौं करै, तैसैं इनकौं भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्म्मपद्धतिविषैं नाहीं। गुरूका सेवन धर्म्म पद्धतिविषैं है। सो राजादिकका सेवन तौ लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह हीका उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकौं सेए, वहाँ तत्त्वश्रद्धानके कारण गुरू थे, तिनतैं प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानै कारणविषैं विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषैं दृढ़ता कैसैं सम्भवै? तातैं तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसैं कुगुरुनिका निरूपण किया।

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है—

जहाँ हिंसादिकषाय उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावै, बड़े जीवनिका घात करै, अर तहां इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषैं दुष्टबुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषैं वा अन्यत्र स्नानादि

कार्य करैं, तहाँ बड़े छोटे घनें जीवनिकी हिंसा होय, शरीरकौं चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधैं, कुतूहलादिककरि तहाँ कषायभाव बधावै बहुरि तहां धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतिपातादिक विषैं दान दे, वा खोटा ग्रहादिकके अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकौं दान दे, बहुरि दानविषैं सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदि वस्तुनिकौं दे,सो संक्रांतिआदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातैं तहाँ दान देनेमैं धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं। किछू भला करते नाहीं। भला तौ तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तौ उलटा पापरूप प्रवर्तै। पापका सहाईका भला कैसें होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषैं कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणां फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥ २६ ॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकौं दान देना, कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है; शोभा भी है अर सुखदायक भी है। बहुरि लोभी पुरुषनिकौं दान देना जो होय, सो शव जो मरचा ताका विमान जो चक्रडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तौ होय, परन्तु धनीकौं परम दुःखदायक हो है। तातैं लोभी पुरुषनिकौं दान देनेमैं धर्म नाहीं। बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए,जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजैं वा मान लोभादिक बधै। ताकरि

महापाप होय । ऐसी वस्तुनिका देने वालाकौं पुन्य कैसें होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुन्य ठहरावैहैं। सो प्रत्यक्ष कुशीलादिक पाप जहाँ होय, तहाँ पुण्य कैसें होय। अर युक्ति मिलावनेकौं कहै जो वह स्त्री सन्तोष पावै है। तौ स्त्री तौ विषयनसेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकौं दिया। रतिसमय विना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्तें, दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसें ही दयावान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

मिथ्या व्रतादिकोंका निषेध

बहुरि व्रतादिककरिकैं तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है। सो व्रतादिक तौ तिनकौं घटावनेके अर्थि कीजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तौ त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहाँ हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवसविषैं तौ भोजन करैं नाहीं, अर रात्रिविषैं करैं। सो प्रत्यक्ष दिवसभोजनतैं रात्रिभोजनविषैं हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिकरि नाना शृङ्गार बनावैं, कुतूहल करैं, जूवाआदि रूप प्रवर्त्तैं, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकौं चाहै, तहां कषायनिकी तीव्रता विशेष भई। ऐसें व्रतादिकरि धर्म मानैं हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषैं हिंसादिक पाप बधावैं, वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिकौं पोषैं, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्त्तैं। तहाँ पाप तौ बहुत उपजावै अर

धर्मका किछू साधन नाहीं, तहां धर्म मानें सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकौं तौ क्लेश उपजावें अर तहाँ हिंसादिक निपजावें वा कषायादिरूप प्रवर्त्तें। जैसें पंचाग्नि तापें, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलें, हिंसादिक बधै, यामें धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख भूलें, ऊर्ध्वबाहु राखें, इत्यादि साधन करें तहाँ क्लेश ही होय। किछू ए धर्म के अंग नाहीं। बहुरि पवन साधन करें, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषें जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातें मानादिक बधैं, किछू तहां धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करें, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करै नाहीं। अंतरंगविषें क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

अपघात कुधर्म है

बहुरि केई इस लोक विषें दुःख सह्या न जाय या परलोकविषें इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढ़ावनेके अर्थि वा कोई क्रोधादिककरि अपघात करें। जैसें पतिवियोगतें अग्निविषें जलकरि सती कुहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित मारी ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै हैं। सो अपघातका तौ बड़ा पाप है। शरीरादिकतें अनुराग घट्या था, तौ तपश्चरणादि किया होता। मरि जानें में कौन धर्म का अंग भया। तातें अपघात करना कुधर्म है। ऐसें ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग हैं। कहाँ ताईं कहिए, जहां विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानें।

देखो कालका दोष, जैनधर्मविषें भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषें जे धर्मपर्व कहे हैं, तहाँ तौ विषयकषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताकौं तौ आदरै नाहीं। अर व्रतादिकका नाम

धराय तहां नाना शृङ्गार बनावैं वा गरिष्ठभोजनादि करें वा कुतूहलादि करैं वा कषाय बधावनेके कार्य करैं, जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तें।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषैं उपदेश तौ यहु था—'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'* पापका अंश बहुत पुण्यसमूहविषैं दोष के अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यविषैंरात्रि विषैं दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्ति करि हिंसादिकरूप पाप तौ बहुत उपजावैं, अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषैं प्रवर्त्तें नाहीं वा थोरे प्रवर्त्तें, सो टोटा घना नफ़ा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करनेमैं तौ बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तौ धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तें वा तहाँ बाग बाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषैं। बहुरि लोभी पुरुषनिकौं गुरु मानि दानादिक दें वा तिनकी असत्य-स्तुतिकरि महंतपनौं मानें, इत्यादि प्रकार करि विषय-कषायनिकौं तौ बधावै अर धर्म मानैं। सो जिनधर्म तौ वीतरागभाव-रूप है। तिसविषैं ऐसी प्रवृत्ति कालदोषतैं ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव—

अब इसविषैं मिथ्यात्वभाव कैसैं भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धानविषैं प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोड़ना। इस ही भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिकौं बधाय धर्म्म मानैं, तहाँ तत्त्वश्रद्धान कैसैं रह्या? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली

---

* पूरा पद्य इस प्रकार है—

"पूज्यं जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

भया। बहुरि रागादिभाव तौ पाप है तिनकौं धर्म्म मान्या, सो यह झूंठ श्रद्धान भया। तातैं कुधर्म्म सेवनविषैं मिथ्यात्व भाव है। ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषैं मिथ्यात्वभाव की पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुड़विषैं कह्या है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु ॥१॥

(मोक्ख पा० ९२)

याका अर्थ—जो लज्जातैं वा भयतैं वा बड़ाईतैं भी कुत्सित् देवकौं वा कुत्सित् धर्म्मकौं वा कुत्सित् लिंगकौं वंदै हैं सो मिथ्यादृष्टी हो हैं, तातैं जो मिथ्यात्व का त्याग किया चाहैं, सो पहलैं कुदेव कुगुरु कुधर्म्म का त्यागी होय। सम्यक्त्वके पचीस मलनिके त्याग विषैं भी अमूढ़दृष्टि वा षडायतनविषैं भी इनहीका त्याग कराया है। तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतैं जो मिथ्यात्वभाव हो हैं, सो यह हिंसादिकपापनितैं बड़ा महापाप हैं। याके फलतैं निगोद नरकादिपर्याय पाईए है। तहां अनंतकालपर्यन्त महासंकट पाईए हैं। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़विषैं (भाव पाहुड़में) कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ, कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥१४०॥

(भावपा० १३८)

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्म्मविषैं रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि संयुक्त है, कुत्सित तपकौं करता है, सो जीव कुत्सित खोटी गति ताकौं भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्रलोभतैं वा भयतैं कुदेवादिकका सेवनकरि जातैं अनन्तकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं। जिनधर्म्मविषैं यह

तौ आम्नाय है। पहलें बड़ा पाप छुड़ाय पीछें छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकों सप्तव्यसनादिकतैं भी बड़ा पाप जानि पहलें छुड़ाया है। तातें जे पापके फलतें डरैहैं, अपने आत्माको दुःख समुद्रमें न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वकौं अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतें शिथिल होना योग्य नाहीं। जातें नीति विषें भी ऐसा कह्या है—

निंदादि भय से मिथ्यात्व-सेवनका प्रतिषेध—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

(नीतिशतक ८४)

जे निन्दै हैं ते निन्दो अर स्तवै हैं तौ स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगांतरविषें होहु, परन्तु नीतिविषें निपुण पुरुष न्यायमार्गतें पेंड़हू चलें नाहीं। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशंसादिकका भयतें लोभादिकतें अन्यायरूप मिथ्यात्वप्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। अहो, देव गुरु धर्म्म तौ सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है। इनविषें शिथिलता राखें अन्यधर्म कैसें होइ? तातें बहुत कहनेकरि कहा, सर्व प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट हो है। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातें इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकौं जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषें कुदेवकुगुरुकुधर्म-निषेधवर्णनरूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥ ६ ॥

सातवाँ अधिकार

जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन

दोहा।

इस भवतरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव ।
ताकौं करि निर्मू`ल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकौं मानें हैं अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है—जातैं इस मिथ्यात्व वैरीका अंश भी बुरा है, तातैं सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है । तहां जिन आगमविषैं निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है । तिनविषैं यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है । सो इनका स्वरूपकौं न जानतै अन्यथा प्रवर्त्तै हैं, सोई कहिए है—

एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास

कोई जीव निश्चयकौं न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकौं मोक्षमार्गी मानें हैं । अपने आत्माकौं सिद्ध समान अनुभवै हैं । सो आप प्रत्यक्षसंसारी हैं । भ्रमकरि आपकौं सिद्ध मानें सोई मिथ्यादृष्टी है । शास्त्रनिविषैं जो सिद्धसमान आत्माकौं कह्या है, सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं । जैसैं राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपक्षा तो समान नाहीं । तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्पनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं । यहु जैसें सिद्ध शुद्ध हैं, तैसें ही

आपकौं शुद्ध मानें। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकैं केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानें, सो आपकै तौ क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तौ कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतें कर्म्मका क्षय भए विना ही क्षायिकभाव मानें। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषैं सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है,सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषैं केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तौ व्यक्त भए ही कहिए।

केवलज्ञान निषेध

कोऊ ऐसा मानै है, आत्माके प्रदेशनिविषैं तौ केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतें प्रगट न हो हैं सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तौ बज्रपटलादि आड़े होतैं भी वस्तुकौं जानें। कर्मको आड़े आए कैसें अटकै। तातैं कर्मके निमित्ततें केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है, तौ याकौं पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तौ क्षायिकभाव है। सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा जो चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातैं केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषैं सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसें मेघपटल होते सूर्यप्रकाश प्रगट न हो है, तैसें कर्मउदय होतें केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसें सूर्यविषें प्रकाश रहै है, तैसें

आतमविषें केवलज्ञान रहै है। जातें दृष्टांत सर्वप्रकार मिलै नाहीं। जैसें पुद्गलविषें वर्णगुण है, ताकी हरित पीतादि अवस्था हैं। सो वर्तमान विषें कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभावही है। तैसें आत्माविषें चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव है।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तौ वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाहीं है तौ केवलज्ञानावरण काहेकों कहौ हौ ?

ताका उत्तर—यहाँ शक्ति है ताकों व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसें देशचारित्रका अभाव होतें शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या, तैसें जानना। बहुरि ऐसे जानौं--वस्तुविषें जो परनिमित्ततें भाव होय ताका नाम औपाधिकभाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय सो ताका नाम स्वभावभाव है। सो जैसें जलकै अग्निका निमित्त तातें उष्णपनौं भयो, तहाँ शीतलपनाका अभाव ही है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटें शीतलताही होय जाय तातें सदाकाल जल का स्वभाव शीतल कहिए, जातें ऐसी शक्ति सदा पाइए हैं। बहुरि व्यक्तभए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदाचित् व्यक्तरूप हो है। तैसें आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतें अन्यरूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव ही है। परन्तु कर्म्मका निमित्त मिटें सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातें सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातें ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसें शीतलस्वभावकरि उष्ण जलकौं शीतल मानि पानादि करै, तौ दाझना ही होय। तैसें केवल ज्ञानस्वभावकरि

अशुद्ध आत्माकौं केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तो दुःखी ही होय । ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकौं अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतैं भ्रमकरि आत्माकौं रागादिरहित मानें। सो पूछिए हैं—ए रागादिक तौ होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषैं हैं। जो शरीर वा कर्मरूपपुद्गलके अस्तित्वविषैं होंय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक कहो। सो तौ ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिएं अमूर्त्तीकभाव भासैं हैं। तातें ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषैं कह्या है—

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो—
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यनुभवाभावान्न चेयं कृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न वै पुद्गलः ।। १ ।।

(सर्ववि० ११)

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि किया नाहीं, ऐसा नाहीं है जातें यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इनि दोऊनिका भी कर्तव्य नाहीं जातें ऐसें होय तौ अचेतनकर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ,सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं जातें वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातें इस रागादिकका जीव ही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है । जातें भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना विना न होइ । अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं।

ऐसें रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषें हैं। जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्मही कौ मानि आपकौं रागादिकका अकर्त्ता मानें हैं, सो कर्त्ता तौ आप अर आपकौं निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातें कर्म्म हीका दोष ठहरावै हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशाविषें कह्या है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥

(सर्वं वि० २८)

जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषें परद्रव्यहीकौं निमित्तपनो मानै हैं, ते जीव भी शुद्धज्ञानकरि रहित हैं, अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत संतें मोहनदीकौं नाहीं उतरें हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषें जो आत्मा कौं अकर्त्ता मानै है अर यहु कहै है—कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतें हिंसा है, वेदकर्मतें अब्रह्म है, तातें कर्म ही कर्त्ता है, तिस जैनीकौ सांख्यमती कह्या है। जैसें सांख्यमती आत्माकौं शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसें ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतें यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं, आपकौं अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनंतसंसारविषें रुलै है।

यहाँ प्रश्न—जो समयसारविषें ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्यावा रागमोहादयो वा

भिन्नाभावाः सर्व्व एवास्य पुंसः* ।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातैं भिन्न हैं। बहुरि तहाँ ही रागादिककौं पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषैं भी रागादिकतैं भिन्न आत्माकौं कह्या है,सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्यके निमित्ततैं औपाधिकभाव हो हैं अर यहु जीव तिनिकौं स्वभाव जानै है। जाकौं स्वभाव जानैं, ताकौं बुरा कैसैं मानैं वा ताके नाशका उद्यम काहेकौं करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुड़ावनेकौं स्वभावकी अपेक्षा रागादिककौं भिन्न कहे हैं अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसें वैद्य रोग मेट्या चाहै है। जो शीतका आधिक्य देखै तौ उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तौ शीतल औषधि बतावै। तैसे श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहैं हैं। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय, निरुद्यमी होय ताकौं उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाहीं करै है ताकौं निमित्त कारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव है, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानैं— ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तौ नाहीं हैं कर्म के निमित्ततैं

* वर्णाद्या राग मोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमीनी दृष्टा स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥
—जीवाजी० ॥ ५ ॥

आत्मा के अस्तित्वविषैं विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटे इनका नाश होतैं स्वभावभाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाशका उद्यम करना।

यहाँ प्रश्न—जो कर्मका निमित्ततैं ए हो हैं, तौ कर्मका उदय रहै तावत् विभाव दूरि कैसैं होय? तातैं याका उद्यम करना तौ निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषैं जे कारण बुद्धिपूर्वक होंय, तिनकौं तौ उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलैं तब कार्यसिद्ध होय। जैसैं पुत्रहोनेका कारण बुद्धिपूर्वक तौ विवाहादिक करना है अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तौ उद्यम करै, अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसैं विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तौ तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तौ उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय तब रागादिक दूरि होय।

यहाँ ऐसा कहै हैं कि—जैसैं विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं तैसैं तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिककै आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तौ क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करनेयोग्य तेरै भया है। याहीतैं उपयोगकौं यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असंज्ञी जीवनिकैं क्षयोपशम नाहीं है, तौ उनकौं काहेकौं उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय, तौ तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है,तौ सर्वत्र कोई ही कार्यका उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तौ उद्यम करै, अर यहाँ होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहाँ नाहीं। मानादिक करि एसी झूंठी बातें बनावै है। या प्रकार जे रागादिकहोतें तिनकरि रहित आत्माकौं मानैं हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होतें आत्माकौं निर्बंध मानें, सो प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतैं ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बंधन कैसे नाहीं। जो बंधन न होय, तौ मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकौं करै।

यहाँ कोऊ कहै—शास्त्रनिविषैं आत्माकौं कर्म नोकर्मतैं भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसें कह्या है ?

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार हैं। तहाँ तादात्म्य संबंध अपेक्षा आत्माकौं कर्म नोकर्मतें भिन्न कह्या है। तहाँ द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्धस्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षाबंधन है ही। उनके निमित्ततैं आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातैं सर्वथा निर्बन्ध आपकौं मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ कोऊ कहै—हमकौं तौ बंध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं, जातैं शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणउ, सो बंधइ णिभंतु।"

याका अर्थ—जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है,सो निःसन्देह बंधै है ताकौं कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बंधमुक्त अवस्थाहीकौं मानैं हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करै हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्यस्वभावकौं न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानैं, सो बंध है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्धमुक्ति न होय, तौ सो जीव बंधै है, ऐसा काहेकौं कहै। अर बंधके नाशका मुक्त होनेका उद्यम काहेकौं करिए है। काहेकों आत्मानुभव करिये है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एकदशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है। ऐसैं ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतैं विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवानीविषैं तौ नाना नयअपेक्षा कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है। यह अपने अभिप्रायतैं निश्चयनयकी मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीकौं ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकौं धारै है। बहुरि जिनवानीविषैं तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञानविषैं सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषैं रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं। एक अपने आत्माकौं शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है। ताका अभ्यास करनेकौं अंतरंगविषैं ऐसा चिंतवन किया चाहै है—मैं सिद्धसमान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्ममरणादि दुःख मेरै नाहीं,

इत्यादि चितवन करे है। सो यहाँ पूछिए है—यहु चितवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हौ, तौ द्रव्य तौ शुद्ध अशुद्धसर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभव काहेकौं करो हौ। अर पर्यायदृष्टिकरि करो हो, तौ तुम्हारै तौ वर्त्तमान अशुद्धपर्याय है। तुम आपकौं शुद्ध कैसें मानौ हौ? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानौ हौ, तौ मैं ऐसा होने योग्य हौं ऐसा मानौं। ऐसे काहेकौं मानौं हौ। तातैं आपकौं शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतैं—तुम आपकौं सिद्धसमान मान्या, तौ यहु संसार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारै केवलज्ञानादिक हैं, तौ ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तौ ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं? परमानन्दमय हो, तौ अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्ममरणादि दुःख ही नाहीं, तौ दुःखी कैसें होते हो? तातैं अन्य अवस्थाविषैं अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रविषैं शुद्धचिंतवन करनेका उपदेश कैसें दिया है।

ताका उत्तर—एक तौ द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्यायअपेक्षा शुद्धपना है। तहाँ द्रव्यअपेक्षा तौ परद्रव्यतैं भिन्नपनौ वा अपने भावनितैं अभिन्नपनौ ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचिंतवनविषैं द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्याविषैं कह्या है—

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते। (गाथा० ६)

याका अर्थ—जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है। सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितैं भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः।१

(गाथा० ७३)

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातैं पारंगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेदज्ञान तन्मात्र है, तातैं शुद्ध है। तातैं ऐसैं शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। बहुरि ऐसैं ही केवल शब्द का अर्थ जानना। जो परभावतैं भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसैं ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों मानैं, वा केवली आपकौं मानैं महाविपरीति होय। तातैं आपकौं द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्य-स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि विशेष अवधारना। ऐसैं ही चिंतवन किएं सम्यग्दृष्टी हो है। जातैं सांचा अवलोके विना सम्यग्दृष्टी कैसैं नाम पावै। बहुरि मोक्षमार्गविषैं तौ रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। सो तौ विचार ही नाहीं। आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपकौं सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है।

शास्त्राभ्यासकी निरर्थकताका प्रतिषेध

शास्त्रअभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकौं विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण

१—'आत्मख्यातौ तु 'सकल' इति पाठः प्रतिभाति।

करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकौं शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्वं साधनिकौं उठाय प्रमादी होय परिणामैं है । सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तौ मुनिनकै भी तौ ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषैं उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषैं उपयोगकू लगावै है, अन्य ठिकाना बीच मैं उपयोग लगावने योग्य है नाहीं बहुरि शास्त्रकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मंद रहै । बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसैं कार्यकौं निरर्थक कैसैं मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषैं अध्यात्मउपदेश है, तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं ।

ताकौं कहिए है—जो तेरै साँची दृष्टि भई है, तौ सर्वही जैन शास्त्रकार्यकारी हैं। तहाँ भी मुख्यपनैं अध्यात्मशास्त्रनिविषैं तो आत्म-स्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तौ निर्णय होय चुकै, तब तौ ज्ञानकी निर्मलताके अर्थि वा उपयोगको मंद-कषाय रूप राखनेकै अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्म-स्वरूपका निर्णय भया है, ताकां स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्र-निका भी अभ्यास चाहिए । परन्तु अन्य शास्त्रनिविषैं अरुचि तौ न चाहिए। जाके अन्यशास्त्रनिकै अरुचि है,ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा

भी रुचितैं सुनै, वा विषयके विशेषकौं भी जानै वा विषयके आचरन-विषैं जो साधन होय, ताकौं भी हितरूप जानै वा विषयका स्वरूपकौं भी पहिचानैं, तैसैं जाकै आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानैं। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकौं गुणस्थानादिककौं भी जानैं। बहुरि आत्मआचरणविषैं जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकौं भी हितरूप मानैं। बहुरि आत्माके स्वरूपकौं भी पहिचानैं। तातैं च्यारचौं ही अनुयोग कार्यकारी हैं। बहुरि तिनिका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्दन्यायशास्त्रादिककौं भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै हैं, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषैं ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतैं निकसि बाह्य शास्त्रनिविषैं बुद्धि विचरै है,सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तौ आत्माकी है, ताकौं छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषैं अनुरागिणी भई, ताकौं व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसैं स्त्री शीलवती रहै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ उत्तम पुरुषकौं छोरि चांडालादिकका सेवन किए तौ अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसैं बुद्धि आत्मस्वरूपविषैं प्रवर्त्तै तौ योग्य ही है अर न रह्या जाय, तौ प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यनिकौं छोरि अप्रशस्त विषयादिविषैं लगै तौ महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषैं बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं, तौ तेरी कैसैं रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषैं बुद्धि लगावना युक्त है, बहुरि जो द्रव्यादिकका

वा गुणस्थानादिकका विचारकौं विकल्प ठहरावैहै, सो विकल्प तौ है परंतु निर्विकल्प उपयोग न रहै, तब इनि विकल्पनिकौं न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादिगर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातैं छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तौ अन्तर्मुहूर्त्त रहै। बहुरि तू कहैगा—मैं आत्मस्वरूपहीका चिंतवन अनेक प्रकार किया करूँगा, सो सामान्य चिंतवनविषैं तौ अनेक प्रकार बनें नाहीं। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतें तौ मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किएं मोक्षमार्ग होगा। सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जाननेंकौं जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछैं रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनकौं छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होंय तहाँ उपयोगकौं लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेकौं कारण है। इन विषैं कोई रागादिकका निमित्त नाहीं। तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछैं भी इहाँ ही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है—रागादि मिटावनेकौं कारण होंय तिनविषैं तौ उपयोग लगावना, परन्तु त्रिलोकवर्त्ती जीवनिकी गति आदि विचार करना वा कर्म्मका बंध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्य-कारी है।

ताका उत्तर—इनिके भी विचारतैं रागादिक बधते नाहीं। जातैं ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककौं कारण नाहीं। बहुरि इनको विशेष जानें तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेकौं ही कारण है। तातैं कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककौं जानें तहाँ रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तौ ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीकै होय। तहाँ पाप छोरि पुण्यकार्यविषैं लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातैं बहुत विकल्प काहेकौं कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानें, अर प्रयोजनभूतकौं न जानैं, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनकौं यहु उपदेश दिया है। बहुरि जिनकें बहुत जानने की शक्ति होयं, ताकौं तौ यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैं शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान् है। विशेषहीतैं नीकै निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकौं वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्ग भए तौ संसारी-जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेकै अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है। अर द्वेष छोड़नेके अर्थि

अनिष्ट अनशनादिककौं अंगीकार करै है । स्वाधीनपनैं ऐसा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलैं भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसैं, अर तेरै अनशनादितैं द्वेष भया। तातैं ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया। तहाँ राग आया, तौ ऐसी परिणति तौ संसारीनिकै पाईएही है। तैं मोक्षमार्गी होय, कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै हैं।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतैं तप न होय सकै है। परन्तु श्रद्धानविषैं तो तपकौं भला जानैं हैं। ताके साधनका उद्यम राखै हैं। तेरै तौ श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं। तातैं तेरै सम्यग्दृष्टी कैसे होय ?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है, तप आदिका क्लेश करै है तो करौ, ज्ञान विना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतैं परान्मुख हैं, तपहीतैं मोक्ष मानैं हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान विना केवल तपहीतैं मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तपकरनेका तौ निषेध है नाहीं। जो निषेध होय तौ गणधरादिक तप काहेकौं करैं। तातैं अपनी शक्तिअनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककौं बंधन मानै है, सो स्वच्छन्दवृत्तितो अज्ञानअवस्थाही-विषैं थी। ज्ञान पाएं तौ परिणतिकौं रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है—हमारे परिणाम तौ शुद्ध हैं बाह्य त्याग न किया तौ न किया।

ताका उत्तर—जे ए हिंसादिकार्य तेरे परिणाम विना स्वयमेव होते होंय, तौ हम ऐसें मानैं। बहुरि तू जो अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषयसेवनादि क्रिया वा प्रमादगमनादि क्रिया परिणाम विना कैसें होय। सो क्रिया तौ आप उद्यमी होय तू करै, अर तहाँ हिंसादिक होय ताकौं तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितैं तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

बहुरि वह कहै—परिणामनिकौं रोकै, ए बाह्य हिंसादिक भी घटाईए एरन्तु प्रतिज्ञा करनेमैं बंधन हो है, तातैं प्रतिज्ञारूप व्रत नाहीं अंगीकार करना।

ताका समाधान–जिस कार्य करनेकी आशा रहै, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतैं राग रहै है। तिस रागभावतैं विना कार्य किएं भी अवरतितैं कर्मका बंध हुवा करै। तातैं प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। बहुरि कार्य करनेका बंधन भए विना परिणाम कैसें रुकैंगे। प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा विना प्रयोजन पड़े भी ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै हैं—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछैं प्रतिज्ञाभंग होय, तौ महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनैं, सो बनौं, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं जाका निर्वाह होता न जानैं, तिस प्रतिज्ञाकौं तौ करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतैं ही यहु अभिप्राय

रहै, प्रयोजन पड़े छोड़िद्योंगा, तौ वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं तौ यहु परिणाम है, मरणाँत भए भी न छांड़ौंगा तौ ऐसी प्रतिज्ञाकरनी युक्तही है। विना प्रतिज्ञा किएं अविरत सम्बन्धी बंध मिटै नाहीं। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकौं विचारैं सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसें आपकौं पचाता जानैं, तितना भोजन करै। कदाचित् काहूकै भोजनतैं अजीर्ण भया होय, तौ तिस भयतैं भोजन करना छांड़ै तौ मरण ही होय। तैसें आपकै निर्वाह होता जानै, तितनी प्रतिज्ञा करै। कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातैं भ्रष्टपना भया होय, तौ तिस भयतें प्रतिज्ञा करनी छांड़ै तौ असंयम ही होय। तातैं बनैं सो प्रतिज्ञा लैंनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तौ कार्य बनैं ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकौं करै है। जो तहां उद्यम करै है, तौ त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातैं काहेकौ स्वच्छन्द होनें की युक्ति बनावै है। बनैं सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है

बहुरि वह पूजनादि कार्यकौं शुभास्रव जानि हेय मानै है। सो यहु सत्य है। परन्तु जो इनि कार्यनिकौं छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तौ भले ही है। अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै, तौ अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतैं स्वर्गादि होय वा भली वासना तें वा भला निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय, तौ सम्यक्तादिककी भी प्राप्ति होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतैं नरक निगोदादि होय, वा बुरी वास-

नातैं वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग बध जाय, तौ सम्यक्ता-दिक महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतैं कषाय मंद हो है। अशुभोयोगहोतैं तीव्र हो है। सो मंदकषायका कारण छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तौ ऐसा है, जैसैं कड़वी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं शुभ अशुभकौं समान कह्या है, तातैं हमकौं तौ विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकौं मोक्षका कारण मानि उपादेय मानैं हैं, शुभोपयोगकौं नाही पहिचानैं हैं, तिनिकौं शुभ अशुभ दोऊनिकौं अशुद्धताकी अपेक्षा वा बधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए हैं। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तौ शुभ-भावनि विषैं कषायमंद हो है, तातैं बंध हीन हो है। अशुभभावनिविषैं कषायतीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है? ऐसैं विचार किए अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषैं शुभकौं भला भी कहिए है। जैसैं रोग तौ थोरा वा बहुत बुरा ही है। परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगकों भला भी कहिए। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषैं प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकौं छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकौं अशुभरूप प्रवृत्ति तौ भए विना रहती नाहीं, अर शुभप्रवृत्ति चाहकरि करनीपरै है। ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं। तातैं शुभका उद्यम नाहीं करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषैं उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततैं विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषैं भी संक्लेश थोरा हो है। तातैं शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीड रहे हैं तौ ताके अर्थि जैसैं थोरा पाप लागै, सो करना। बहुरि शुभोपयोगकौं छोड़ि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तौ युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाह नाहीं अर शुभोपयोग चाह किएं हो है सो जैसैं पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं, परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानैं, तहाँ चाहकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसैं ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाहीं। परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानैं तहाँ चाहकरि स्तोक कषायरूप शुभकार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसैं यहु बात सिद्ध भई–जहाँ शुभोपयोग होता जानैं, तहाँ तौ शुभकार्यका निषेध ही है अर जहाँ अशुभोपयोग होता जानैं, तहाँ शुभकौं उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यकौं उथापि स्वच्छन्दपनाकौं स्थापै है, ताका निषेध किया।

केवलनिश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माकौं जानें ज्ञानी हो है—अन्य किछू चाहिए नाहीं, ऐसा जानि कबहूँ एकाँत तिष्टकरि ध्यानमुद्रा धारि मैं सर्वकर्मउपाधिरहित सिद्धसमान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसैं संभवै हैं ? असंभव हैं, ऐसा विचार नाहीं। अथवा अचल

अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकौं ध्यावें हैं, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषैं भी सम्भवै हैं। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा हैं, सो विचार नाहीं। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषैं ऐसा विचार राखि आपकौं ज्ञानी मानैं है। बहुरि ज्ञानीकै आस्रव बंध नाहीं, ऐसा आगमविषैं कह्या है तातैं कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहाँ बंध होनेंका भय नाहीं है। स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है सो आपा परकौं जाननेका तौ चिन्ह वैराग्यभाव है, समयसारविषैं कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।"※

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसौं ज्ञानवैराग्यशक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व शून्याः※ ॥५॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हूं, मेरै कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसैं रागी वैराग्य शक्ति

※ सम्यग्दृष्टे र्भवतिनियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः, स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्॥ निर्जरा० ४

※ समयसार कलशा में "शून्यः" के स्थान पर "रिक्तः" पाठ है।

रहित भी आचरण करै हैं, तौ करौ, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकों अवलम्बें हैं तौ अवलम्बो, जातैं वे ज्ञानशक्ति विना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकौं पर जान्या, तौ परद्रव्यविषैं रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है—मोहके उदयतैं रागादि हो हैं। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय कषायरूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं यहु सत्य, परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगैं करेंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाहीं, ताकै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवै है। ऐसैं श्रद्धानविना सम्यग्दृष्टी कैसें होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तौ इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायनिकी प्रवृत्ति जैसें हो है, सो भी विशेष आगे कहैंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा, तौ तेरै तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमाः*।

---

* मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये।
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च॥ —नाटक समयसार

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो हैं, ते संसारविषैं डूबें और भी तहाँ "ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्तु मुचितं"—इत्यादि कलशा विषैं वा "तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनः"—इत्यादि कलशाविषैं स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाह जो कार्य होय, सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतैं कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तौ बनै नाहीं, इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषैं पहलैं तीव्ररागादि छोड़नेके अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभकार्यविषैं लागना, पीछैं मंदरागादि भी छोड़नेके अर्थि शुभकौं भी छोरि शुद्धोपयोगरूप होना। बहुरि केई जीव अशुभविषै क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकौं भी घटावै हैं। बहुरि शुभकौं हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषैं नाहीं प्रवर्त्तैं हैं। वीतरागभावरूप शुद्धोपयोगकौं प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होतेसंते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निन्दा पंचास्तिकायकी व्याख्याविषैं कीनी है। तिनकौं दृष्टान्त दिया है—जैसैं बहुत खीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसैं वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसैं ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकौं पूछिए है—तुम बाह्य तौ शुभ अशुभकार्यनिकौं घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बनबिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहाँ रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चितवन करै है, तौ शास्त्रादिकरि अनेक प्रकारका आत्माका विचारकौं तो तुम विकल्प

ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमैं बहुत काल लागै नाहीं, बारम्बार एकरूप चिंतवनविषैं छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसैं न रहि सकै तातैं वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषैं प्रवर्तैं हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकत भी कैसैं शुद्ध भया मानिए। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसैं कोऊ व्यापारादिविषैं निरुद्यमी होय ठाला जैसैं तैसैं काल गुमावै, तैसैं तू धर्म्मविषैं निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँ ही काल गमावै है। कबहूं किछू चिंतवनसा करै, कबहूं बातैं बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकौं शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तता नाहीं। सूनासा होय प्रमादी होनेंका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहाँ क्लेश थोरा होनेतैं जैसैं कोई आलसी होय परचा रहने मैं सुख मानै, तैसैं आनन्द मानै है। अथवा जैसैं सुपनेविषैं आपकौं राजा मानि सुखी होय, तैसैं आपकौं भ्रमतैं सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसैं कहीं रति मानि सुखी हो है तैसैं किछू विचार करनेविषैं रतिमानि सुखी होय, ताकौं अनुभवजनित आनन्द कहै है। बहुरि जैसैं कहीं अरति मानि उदास होय, तैसैं व्यापारादिक पुत्रादिककौं खेदका कारण जानि तिनतैं उदास रहै है, ताकौं वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तौ कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो सांचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्रमोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोड़ि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा प्रवर्त्तै है। आपकौं तहाँ कषायरहित मानैं है, सो ऐसैं आनन्दरूप

भए तौ रौद्रध्यान हो है । जहां सुखसामग्री छोड़ि दुखसामग्रीका संयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तहां निःकषायभाव हो हैं। ऐसें भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है। या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलम्बी हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें। जैसें वेदांती वा सांख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसें ए भी जाननें। जातैं श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकौं इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनकौं इष्ट लागै है ।

स्व-द्रव्य परद्रव्य चिन्तवन-द्वारा निर्जरा व आस्रव और बंधका प्रतिषेध

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है—जो केवल शुद्धात्माका चिंतवनतें तौ संवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अंश तहां प्रगट हो है। बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप विना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किए आस्रव बंध हो है। तातैं अन्य विचारतें पराङ्मुख रहै हैं। सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाहीं, जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करौ, वा अन्य चिंतवन करौ; जो वीतरागता लिए भाव होय, तौ तहाँ संवर निर्जरा ही है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बंध हो है। जो परद्रव्यके जाननेहीतैं आस्रव बंध होय तौ केवली तो समस्त परद्रव्यकौं जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बंध होय। बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै परद्रव्य चिंतवन होतें आस्रव बंध हो है। सो भी नाहीं, जातें शुक्ल-ध्यानविषैं भी मुनिनिकै छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायनिका चिंतवन

होना निरूपण किया है वा अवधिमनःपर्ययादिविषैं परद्रव्यके जाननेहीकी विशेषता हो है। बहुरि चौथा गुणस्थानविषैं कोई अपने स्वरूपका चिंतवन करै है, ताकै भी आस्रव बंध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्टम गुणस्थानविषैं आहार विहारादि क्रिया होतैं परद्रव्य चिंतवनतैं भी आस्रव बंध थोरा हो है वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चिंतवनतैं निर्जरा बंध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है। ताकौं रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, तातैं अन्यथा मानै है।

निर्विकल्प-दशा विचार

तहाँ वह पूछै है कि ऐसैं है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविषैं नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प-करनेका निषेध किया है, सो कैसे है?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषैं लगि रहे हैं, अभेद-रूप एक आपाकौं अनुभवै नाहीं हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सवे विकल्प वस्तुका निश्चय करनेकौं कारन हैं। वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातैं इन विकल्पनिकौं भी छोड़ि अभेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछैं ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चिंतवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिएं होय, तिसहीका नाम निर्विकल्पदशा है।

तहाँ वह पूछै है—यहाँ तौ बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं है। जातैं छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका अभाव मानें ज्ञानका अभाव होय, तब जड़पना भया सो आत्माकै होता नाहीं। तातैं विचार तौ रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाहीं। तौ सामान्यका विचार तौ बहुतकाल रहता नाहीं वा विशेषको अपेक्षा विना सामान्यका स्वरूप भासता नाहीं। बहुरि कहिए—आपहीका विचार रहता है, परका नाहीं, तौ परविषें परबुद्धि भए विना आपविषें निजबुद्धि कैसें आवै ? तहाँ वह कहै है, समयसारविषें ऐसा कह्या है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥५-१३०॥

याका अर्थ यहु—भेदविज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतें छूटें ज्ञान है सो ज्ञानविषें स्थित होय। तातें भेद विज्ञान छूटैं परका जानना मिटि जाय है। केवल आपहीकौं आप जान्या करै है।

सो यहाँ तो यहु कह्या है—पूर्वें आपा परकौं एक जानें था, पीछें जुदा जाननेकौं भेदविज्ञानकौं तावत् भावना ही योग्य है, यावत्ज्ञान पररूपकौं भिन्न जानि अपनें ज्ञानस्वरूपहीविषें निश्चित होय। पीछें भेदविज्ञान करनेंका प्रयोजन रह्या नाहीं। स्वयमेव परकौं पररूप आपकौं आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना

ही मिटि जाय है। तातें परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जानने का नाम विकल्प नाहीं है। तौ कैसें है? सो कहिए है—राग द्वेषके वशतें किसी ज्ञेयके जाननेंविषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके जाननेतें छुड़ावना. ऐसें बारबार उपयोगका भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकौं जानै है, ताकौं यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकौं नाहीं भ्रमावै है तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तौ नाना ज्ञेयविषै भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसें सम्भवै है?

ताका उत्तर—जेते काल एक जाननेंरूप रहैं, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषें ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया हैं "एकाग्रचिंता-निरोधो ध्यानम्।"१ (तत्त्वा० सू० ९-२७)

एकका मुख्य चितवन होय अर अन्य चिंता रुकै, ताका नाम ध्यान है। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीकाविषें यहु विशेष कह्या है–जो सर्वचिंता रुकनेका नाम ध्यान होय तौ अचेतनपनों होय जाय। बहुरि ऐसी भी विविक्षा है जो संतानअपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगकौं भ्रमावै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै ऐसें है, तौ परद्रव्यतें छुड़ाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेकौं दिया है?

१—'उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्त्तात्' ऐसा पूरा सूत्र है।

ताका समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकौं कारण पर द्रव्य हैं, तिनविषैं उपयोग लगे जिनकैं राग द्वेष होइ आवैं हैं, अर स्वरूप-चिंतवन करै तौ राग द्वेष घटै है, ऐसैं नीचली अवस्थावारे जीवनिकौं पूर्वोक्त उपदेश है। जैसैं कोऊ स्त्री विकारभावकरि काहूके घर जाय थी, ताकौं मनैं करी—परघर मति जाय, घरमैं बैठि रहौ। बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तौ किछूदोष है नाहीं। तैसैं उपयोगरूप परणति राग-द्वेषभावकरि परद्रव्यनिविषैं प्रवर्त्तै थी, ताकौं मनैं करी—परद्रव्यनिविषैं मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषैं मग्न रहौ। बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यकौं जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तौ किछू दोष है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—ऐसैं है, तौ महामुनि परिग्रहादिक चिंतवनका त्याग काहेकौं करैं हैं।

ताका समाधान—जैसैं विकाररहित कुशीलके कारण परघर-निका त्याग करै, तैसैं वीतरागपरणति राग द्वेषके कारण परद्रव्यनि का त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जानें-का त्याग है नाहीं। तैसैं जे राग द्वेषकौं कारण नाहीं, ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जैसैं जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तौ जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाहीं। तैसैं परणतिकौं प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना। विना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं।

ताका समाधान—जैसैं स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसैं परणति तत्वनिका विशेष जाननेंके कारण गुणस्थानादिक व कर्म्मादिककौं भी जानैं। बहुरि यहाँ ऐसा जानना—जैसैं शीलवती स्त्री उद्यमकरि तौ विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तौ स्त्री शीलवती ही है। तैसैं वीतराग परणति उपायकरि तौ रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषैं न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहाँ रागादिक न करै तौ परणति शुद्ध ही है। तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिकौं जानैं ही नाहीं, अपने स्वरूपही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानैं तौ है, परन्तु रागादिक नाहीं करै है। या प्रकार परद्रव्यकौं जानतैं भी वीतराग-भाव हो है ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसैं है तौ शास्त्रविषैं ऐसैं कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितैं परद्रव्यविषैं आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावनेकौं यहु उपदेश है। आपही विषैं आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषैं रागद्वेषादि परणतिकरनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतैं सम्यग्दर्शनादि न होते होंय, तौ केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहाँ परद्रव्यकौं बुरा जानना, निज द्रव्यकौं भला जानना, तहाँ तौ रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकौं आपरूप परकौं पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसैं ही

श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो है, ऐसैं जानना। तातैं बहुत कहा कहिए, जैसैं रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसैं रागादि मिटावनेका जानना होय सो ही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसैं रागादि मिटैं सो ही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्वका निरूपण किया।

एकान्तपक्षी व्यवहारावलम्बी जैनाभास

अब व्यवहाराभास पक्षके जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है—जिनआगमविषैं जहाँ व्यवहारकी मुख्यताकरि उपदेश है, ताकौं मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकौं प्राप्त होय हैं सो विशेष कहिए हैं। यहाँ ऐसा जानि लैना; व्यवहारधर्मकी प्रवृत्तितैं पुण्यबंध होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तौ याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्तिहीकरि सन्तुष्ट होय, साँचा मोक्षमार्गविषैं उद्यमी न होय है, ताकौं मोक्षमार्गविषैं सन्मुख करनेकौं तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकौं सुनि जो शुभप्रवृत्ति छोड़ि अशुभविषैं प्रवृत्ति करोगे, तौ तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्तौगे, तौ तुम्हारा भला होगा। जैसैं कोऊ रोगी निर्गुण औषधि का निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करेगा, तौ वह मरेगा, वैद्यका किछू दोष है नाहीं। तैसैं ही कोउ संसारी पुण्यरूपधर्मका

निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषय कषायरूप प्रवर्त्तेगा, तौ वह ही नरकादिविषैं दुःख पावेगा। उपदेश दाताका तौ दोष नाहीं। उपदेश देनेवालेका तौ अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्गविषैं लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतैं इहाँ निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म विचार

इहाँ कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी हैं, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषैं जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसैं प्रवर्त्तैं हैं। सो जैसैं अन्यमती अपने कुलधर्मविषैं प्रवर्त्तैं हैं, तैसैं ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहीतैं धर्म होय, तौ मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्म विशेष कहा रह्या? सोई कह्या है।

लोयम्मि रायणीई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥

(उप. सि. र. गा. ७)

याका अर्थ—लोकविषैं यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाहीं होय है। जाका कुल चोर होय, ताकौं चोरी करता पकरैं, तौ वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाहीं, दंड ही दे। तौ त्रिलोकप्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषैं कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहाँ तो कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाहीं तो धर्मविषैं कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कैसैं रह्या? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तौ पुत्र भी नरकगामी होय। तातैं धर्मविषैं कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाहीं। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो

कालदोष तें जिनधर्म विषैं भी पापी पुरुषनिकरि कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषयकषायपोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्याग करि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहाँ कोऊ कहै—परम्परा छोड़ि नवीन मार्गविषैं प्रवर्तना योग्य नाहीं। ताकौं कहिए है—

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै, तौ युक्त नाहीं। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषैं लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमें पापीपुरुषां अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तौ ताकौं परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताकों छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनि-विषैं जैसा धर्म लिख्या था, तैसें प्रवर्त्तै, तौ ताकौं नवीन मार्ग कैसें कहिए। बहुरि जो कुलविषैं जैसे जिनदेवकी आज्ञा है, तैसें ही धर्म्म प्रवृत्ति है, तौ आपको भी तैसें ही प्रवर्तना योग्य है। परन्तु ताकों कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगीकार करना। जो सांचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है, तौ वाकौं धर्मात्मा न कहिए। जातैं सर्व कुलके उस आचरणको छोड़ें, तौ आप भी छोड़ि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है, सो कुलका भयकरि करै है। किछू धर्मबुद्धितें नाहीं करै है, तातें वह धर्मात्मा नाहीं। तातैं विवाहादि कुलसम्बन्धी कार्यनिविषैं तौ कुलक्रमका विचार करना और धर्मसम्बन्धी कार्यविषैं कुलका विचार न करना। जैसैं धर्ममार्ग साँचा है, तैसें प्रवर्तना योग्य है।

परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्वका प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो हैं। जैसें शास्त्रविषैं

आज्ञा है, तैसें मानें हैं। परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाहीं। सो आज्ञा ही मानना धर्म होय, तौ सर्व मतवाले अपने २ शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होंय। तातें परीक्षाकरि जिनवचननिकौं सत्यपनो पहिचानि जिनआज्ञा माननी योग्य है। विना परीक्षा किए सत्य असत्य का निर्णय कैसें होय ! अर विना निर्णय किए जैसें अन्यमती अपने अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानै है, तैसें यानें जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषैं दश प्रकार सम्यक्त्वविषें आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है, वा आज्ञाविचय धर्मध्यानका भेद कह्या है, वा निःशंकित अंगविषैं जिनवचनविषैं संशय करना निषेध्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषैं कथन केईतौ ऐसे हैं,जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं। तातें आज्ञाहीकरि प्रमाण होय हैं। तहाँ नाना शास्त्रनिविषैं जो कथन समान होय, तिनकी तौ परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि जो कथन परस्परविरुद्ध होइ, तिनिविषैं जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, तिनकी तौ परीक्षा करनी। तहाँ जिन शास्त्रके कथनकी प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषैं जो प्रत्यक्ष अनुमानगोचर नाहीं, ऐसे कथन किए होंय, तिनकी भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिन शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहाँ कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषैं प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषैं अप्रमाण भासै तौ कहा करिए?

ताका समाधान—जो आप्तके भासे शास्त्र हैं, तिनिविषैं कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होंय। जातैं कै तौ जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय,तौ असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातैं परीक्षा नीकी नाहीं करी है, तातैं भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय, तौ कहा करै ?

ताका समाधान—सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिकौं मीड़े अर प्रमाद छोड़ि परीक्षा किए तौ सांची ही परीक्षा होय । जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहाँ ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषैं परस्पर विरुद्ध कथन तौ घनें, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषैं देव गुरू धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लैनी। जिन शास्त्रनिविषैं ए सांचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी । जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी । जैसें लोकविषैं जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषैं झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषैं कैसे झूठ बोलेगा। तैसें जिस शास्त्रविषैं प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिसविषैं प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसें होय ? जातैं देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जाँय हैं।

इहाँ प्रश्न—देवादिकका कथन तौ अन्यथा विषयकषायतैं किया, तिस ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकौं किया ?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहाँ तुच्छ बुद्धि भ्रममें पड़ि जाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापनाका मेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घनें किए। बहुरि प्रतीति अनावने के अर्थि कोई२ साँचा भी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम में परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहाँ सांच भासै, तिस मतकी सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमतही सांचा भासै है। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेकौं कहै। ऐसें जिन आज्ञा मानै,सो साँचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है। बहुरि तहाँ एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्म ध्यान है। जो ऐसें न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तौ जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसें रह्या? तातैं किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषैं भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तैं कह्या—जिनवचनविषैं संशय करनेतैं सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानैं यह कैसें है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहाँ शंका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तौ अष्टसहस्रीविषैं आज्ञाप्रधानतैं परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेकौं कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसें कहे। प्रमाण नयतैं पदार्थनिका

निर्णय करनेका उपदेश काहेकौं दिया। तातैं परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषाँ अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकों जिनवचन ठहराया है, तिनकौं जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहाँ भी प्रमाणादिकतैं परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितैं विधि मिलाय वा ऐसैं सम्भवै है कि नाहीं,ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकों मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामैं लिखनेवालेका नाम किसी साहूकारका धरचा, तिस नामके भ्रमतैं धनको ठिगावै, तौ दरिद्री होय। तैसैं पापी आप ग्रंथादि बनाय, तहाँ कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरचा, तिस नामके भ्रमत्तैं झूंठा श्रद्धान करै, तौ मिथ्यादृष्टी ही होय।

बहुरि वह कहै है—**गोम्मटसार*** विषैं ऐसा कह्या है—सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानगुरुके निमित्ततैं झूंठ भी श्रद्धान करै तौ आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि ही होय है। सो यहु कथन कैसैं किया है ?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनेंतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तौ सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तातैं बिना परीक्षा किए केवल आज्ञाही करि जैनी हैं, ते भी मिथ्यादृष्टि जाननें। बहुरि केई परीक्षा करि भी जैनी हैं, परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै हैं। दया शील तपसंयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अति-

* सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ २७ ॥

शय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतैं इष्टप्राप्ति होनेकरि जिनमतकौं उत्तम जानि प्रीतवंत होय जैनी होय हैं । सो अन्यमतविषैं भी तो ए कार्य पाईए हैं, तातैं इन लक्षणनिविषैं अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै—जैसैं जिनधर्मविषैं ए कार्य हैं, तैसैं अन्यमतविषैं नाहीं पाइए हैं। तातैं अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका समाधान—यहु तौ सत्य है, ऐसैं ही है । परन्तु जैसैं तू दयादिक मानैं है, तैसैं तौ वे भी निरूपैं हैं। परजीवनिकी रक्षाकौं दया तू कहै, सोई वे कहैं हैं। ऐसे ही अन्य जाननें।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाहीं। कबहूं दया प्ररूपैं, कबहूं हिंसा प्ररूपैं।

ताका उत्तर—तहाँ दयादिकका अंशमात्र तौ आया। तातैं अतिव्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है। इनकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। तौ कैसैं होय। जिनधर्मविषैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है। तहाँ सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनकौं जानें सम्यग्ज्ञान होय वा सांचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसैं जिनमतविषैं निरूपण किया है, तैसैं कहीं निरूपण किया नाहीं वा जैनीविना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाहीं। तातैं यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षण कौं पहचानि जे परीक्षा करैं, तेई श्रद्धानी हैं । इस विना अन्यप्रकार करि परीक्षा करै हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं । केई महान्पुरुषको जिनधर्मविषैं प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तैं हैं। केई देखा देखी

जिनधर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषैं प्रवर्त्तें हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानें हैं अर जैनी नाम धरावै हैं,ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जाननें। इतना तो है, जिनमतविषैं पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने हैं। अर सांचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे हैं। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी हैं, ते भी औरनितैं तौ भले ही हैं।

आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बड़ाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसम्बन्धी प्रयोजनविचारि जैनी होहैं,ते तौ पापी ही हैं। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तौ संसारका नाशिके अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै, सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

इहाँ कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यकौं करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए, तौ बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधे।

ताकौं कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसें कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकौं स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तौ पापा ही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै,तौ बनावो। परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसे धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीकौं आजीविका आदि पापका भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करे तौ करौ

परन्तु पूजादि कार्यनिविषैं तौ आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसैं है तौ मुनि भी धर्म साधि पर घर भोजन करैं हैं वा साधर्मीका उपकार करैं करावैं हैं, सो कैसैं बनै ?

ताका उत्तर—जो आप तौ किछू आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि धर्म नाहीं साधै हैं, आपकौं धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै हैं,तौ किछू दोष है नाहीं। बहुरि जो आप ही भोजनादिकका प्रयोजन विचारि धर्मसाधै है,तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अंगीकार करै हैं,तिनिकै भोजनादिकका प्रयोजन नाहीं, शरीर की स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तौ लें, नाहीं तौ समता राखैं। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै हैं। उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। आपकै जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तौ करो अर न करै तौ आपके किछू संक्लेश होता नाहीं। सो ऐसैं तौ योग्य है। अर आप ही आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादिक उपकार कोई न करै,तहाँ संक्लेश करै, याचना करै, उपाय करै वा धर्मसाधनविषैं शिथिल होय जाय, सो पापी ही जानना। ऐसैं संसारीक प्रयोजन लिएं जे धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टी हैं ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जाननें। अब इनकै धर्मका साधन कैसैं पाइए हैं, सो विशेष दिखाइए है—

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखी लोभादिकका अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं, तिनिकै तौ धर्मदृष्टि नाहीं। जो भक्ति करै हैं

तौ चित्त तौ कहीं है, दृष्टि फिरया करै है। अर मुखतैं पाठादि करै है वा नमस्कारादि करै है। परन्तु यहु ठीक नाहीं—मैं कौन हूँ, किसकी स्तुति करूँ हूं, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करूं हूं, पाठविषैं कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाहीं। बहुरि कदाचित् कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहां सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरुकुशास्त्रादि विषैं विशेष पहिचान नाहीं। बहुरि जो दान दे है, तौ पात्र अपात्रका विचाररहित जैसैं अपनी प्रशंसा होय तैसैं दान दे है। बहुरि तप करै है तौ भूखा रहनेकरि महंतपनौ होय सो कार्य करै है। परिणामनिकी पहिचान नाहीं। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहां बाह्यक्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई सांची क्रिया करै है, कोई झूंठी करै है। अर अंतरंग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाहीं वा बाह्य भी रागादि पोषनेका साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है। तहां जैसे लोकविषैं बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जांय, तैसैं कार्य करै है। बहुरि हिंसादिक निपजावै है। सो ए कार्य तौ अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारनेके अर्थि कहे हैं। बहुरि तहाँ किंचित् हिंसादिक भी निपजै है, तौ थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचान नाहीं। अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफ़ा टोटाका ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है। तहाँ पद्धतिरूप प्रवर्त्तै है। जो वाँचै है तौ औरनिकौं सुनाय दे है। जो पढ़ै है तौ आप पढ़ि जाय है। सुनै है तौ कहै है सो सुनि लें है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है,ताकौं आप अंतरंग विषैं

नाहीं अवधारै है। इत्यादि धर्म्मकार्यनिका धर्मकौं नाहीं पहिचानै। केईकै तौ कुलविषैं जैसैं बड़े प्रवर्त्तै, तैसैं हमकौं भी करना अथवा और करै हैं, तैसैं हमकौं भी करना वा ऐसैं किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होगी, इत्यादि विचार लिएं अभूतार्थ धर्मकौं साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं, जिनकै किछू तौ कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है,तातैं पूर्वोक्तप्रकार भी धर्मका साधन करै हैं अर किछू आगैं कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकौं भी सुधारै है। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म्म साधै हैं परन्तु निश्चय धर्म्मकौं न जानैं हैं। तातैं अभूतार्थ रूप धर्मकौं साधै हैं। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकों मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहाँ शास्त्रविषैं देव गुरु धर्मकी प्रतीति लिए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहंतदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकौं नमस्कारादि करनेका त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै हैं। अथवा परीक्षा भी करै हैं तो तत्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाहीं करै हैं, बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै हैं। ऐसैं प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषैं प्रवर्त्तै हैं।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहां अरहंत देव हैं, सो इन्द्रादिकरि पूज्य हैं, अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरैं हैं, स्त्रीसंगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहै हैं। तहाँ इनविषैं केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनकौं

भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानैं है । जैसें असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषैं जीव पुद्गलके विशेषणकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है, तैसें यह असमान जातीय अरहंतपर्यायविषैं जीव पुद्गलके विशेषणनिकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरैं है। बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं, तिनकौं तौ जानि तिनकरि अरहंतदेवकौं महंतपनो विशेष मानै है । अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकौं यथावत् न जानि तिनकरि अरहंतदेवको महंतपनो आज्ञा अनुसार मानैं है अथवा अन्यथा मानै है । जातैं यथावत् जीवका विशेषण जानें मिथ्यादृष्टी रहै नाहीं । बहुरि तिनि अरहंतनिकौं स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन मानैं है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितं ईश्वरकौं जैसें मानैं हैं, तैसें यहु अरहंतकौं मानें है । ऐसा नाहीं जानें है—फलतौ अपने परिणामनिका लागै है, अरहंतनिकौं निमित्त मानै है, तातैं उपचारकरि वे विशेषण सम्भवै हैं । अपनें परिणाम शुद्ध भए विना अरहंत हू स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं । बहुरि अरहंतादिकके नामादिकतैं श्वानादिक स्वर्ग पाया तहां नामादिकका ही अतिशय मानैं है। विना परिणाम नाम लेनेवालौंकै भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तौ सुननेवालेकै कैसें होय । श्वानादिककैं नाम सुननेके निमित्ततें मंदकषायरूप भाव भए हैं, तिनका फल स्वर्ग भया है । उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है । बहुरि अरहंतादिकके नाम पूजनादिकतैं अनिष्टसामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिककी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट अनिष्टका तौ कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहंत तौ कर्त्ता है नाहीं।

अरहंतादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितैं पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है । तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशकौं, इष्टकी प्राप्तिकौं कारण अरहंतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलैंही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताकै तौ पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसैं होय ? बहुरि तिनका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिकौं मुक्तिका कारण जानि तहाँ अति अनुरागी होय प्रवर्त्तैं हैं सो अन्यमती जैसे भक्ति तैं मुक्ति मानैं हैं तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तौ रागरूप है । रागतैं बंध है । तातैं मोक्षका कारण नाहीं। जब रागका उदय आवै, तब भक्ति न करै तौ पापानुराग होय। तातैं अशुभ राग छोड़नेकौं ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तैं है वा मोक्षमार्गकौं बाह्य निमित्तमात्र भी जानैं है । परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानि संतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है । सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या है:—

इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति । तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति ॥

याका अर्थ—यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्र रागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानैं रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित ज्ञानीकै भी हो है।

---

१ अयं हि स्थल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्यज्ञानिनो भवति । उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिन्ज्ञानिनोऽपि भवतीति० ॥ गा०१३६ ॥

तहा वह पूछै है, ऐसं है तौ अज्ञानीकैं भक्तिकी विशेषता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेंकी अपेक्षा तौ ज्ञानीकै सांची भक्ति है, अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिका कारण जाननेतैं अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषैं शुभबंधका कारण जाननेंतैं तैसा अनुराग नाहीं है। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना। ऐसैं देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

गुरुभक्ति का अन्यथा रूप

अब गुरुभक्तिका स्वरूप कैसें हो है, सो कहिए हैः—

केई जीव आज्ञानुसारी हैं। ते तौ ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातैं इनिकी भक्ती करनी, ऐसैं विचार तिनकी भक्ति करैं हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करैं हैं। तहां ए मुनि दया पालैं हैं, शील पालैं हैं, धनादि नाहीं राखैं हैं, उपवासादि तप करैं हैं, क्षुधादि परीषह सहैं हैं, किसीसौं क्रोधादि नाहीं करैं हैं, उपदेश देय औरनिकौं धर्मविषैं लगावैं हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषैं भक्तिभाव करैं हैं। सो ऐसे गुण तौ परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषैं वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषैं भी पाईए हैं। तातैं इनिविषैं अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि जिन गुणोंको विचारै है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानना, असमानजातीय मुनिपर्यायविषैं एकत्व बुद्धितैं मिथ्यादृष्टि ही रहै है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका

साँचा लक्षण है, ताकौं पहिचानैं नाहीं। जातैं यहु पहिचानिभए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं। ऐसैं मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानैं, तौ सांची भक्ति कैसैं होय? पुण्यबंधकौं कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकौं पहचानि तिनकी सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषैं अनुरागी होय भक्ति करै है। ऐसैं गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है:—

केई जीव तौ यहु केवली भगवान्‌की वानी है, तातैं केवलीके पूज्य होनेतैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। बहुरि केई ऐसैं परीक्षा करैं हैं—इन शास्त्रनिविषैं विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातैं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। सो ऐसा कथन तौ अन्य शास्त्र वेदादिक तिनविषैं भी पाईए है। बहुरि इन शास्त्रनिविषैं त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करैं हैं। सो इहाँ अनुमानादिकका तौ प्रवेश नाहीं। सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसैं जानिए। तातै ऐसैं सांची परीक्षा होय नाहीं। इहां अनेकान्तरूप सांचा जीवादितत्वनिका निरूपण है अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताकौं नाहीं पहिचानै हैं। जातैं यहु पहचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं। ऐसैं शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकैं देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है। परन्तु उनका सांचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी सांची भई नाहीं। साँची प्रतीति विना सम्यक्तकी

प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी ही है। बहुरि शास्त्रविषं 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' (तत्वा० सू० १-२) ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसें शास्त्रनिविषैं जीवादि तत्व लिखे हैं,तैसें आप सीखिले है। तहाँ उपयोग लगावै है। औरनिकौं उपदेशै है, परन्तु तिन तत्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कह्या। सो भाव भासें विना तत्वार्थश्रद्धान कैसें होय ? भावभासना कह्या ? सो कहिए है:—

जैसें कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकौं सीखै है। परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है। स्वरूपपहिचान भए विना अन्य स्वरादिककौं अन्य स्वरादिकरूप मानें है वा सत्य भी मानें है तौ निर्णयकरि नाहीं मानें है। तातें वाकै चतुरपनों होय नाहीं। तैसें कोऊ जीव सम्यक्ती होनेंके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकौं सीखै है। परन्तु तिनके स्वरूपकौं नाहीं पहिचानें है। स्वरूप पहिचानें बिना अन्य तत्त्वनिकौं अन्य तत्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानें है तौ निर्णयकरि नाहीं मानें है। तातें वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ़्या है वा न पढ़्या है,जो स्वरादिकका स्वरूपकौं पहिचानें है, तौ वह चतुर ही है। तैसें शास्त्र पढ़्या है वा न पढ़्या हैं,जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानें है तौ वह सम्यग्दृष्टी हो है। जैसें हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानें है अर ताका स्वरूप कौं पहिचानें है तैसें तुच्छबुद्धि जीवादिकका नाम न जानें हैं अर तिनका स्वरूपकौं पहिचानें है। यहु मैं हूं, यहु पर है; ए भाव बुरे हैं, ए

भले हैं, ऐसें स्वरूप पहिचानें ताका नाम भावभासना है । शिवभूति* मुनि जीवादिकका नाम न जानें था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषः. लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरू. ध्यान किया, तातें केवली भया । अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादि तत्वनिका विशेषभेद जानें परन्तु भाव भासै नाहीं, तातें मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं। अब याकै तत्वश्रद्धांन किस प्रकार हो है सो कहिए है—

जीव अजीव तत्व का अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनिविषैं कहे जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणादिरूप भेदनिकौं जानैं है, अर अजीवके पुद्गलादि भेदनिकौं वा तिनके वर्णादि विशेषनिकौं जानैं है । परन्तु अध्यात्मशास्त्र विषैं भेदविज्ञानकौं कारणभूत वा वीतरागदशा होनेकौं कारणभूत जैसें निरूपण किया है, तैसें न जानैं है । बहुरि किसी प्रसंगतें तैसें भी जानना होय,तौ शास्त्र अनुसारि जानि तौ ले है। परन्तु आपकौं आप जानि परका अंश भी न मिलावना अर आपका अंश भी परविषैं न मिलावना, ऐसा साँचा श्रद्धान नाहीं करै है । जैसें अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपनाविषैं वा वर्णादिविषैं अहंबुद्धि धारै है, तैसें यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषैं वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषैं आपो मानैं है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ साँची बात भी बनावै परन्तु अंतरग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं । तातें जैसें मतवाला माताकों माता भी कहै, तौ स्याना नाहीं । तैसें याकौं

---

* तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावोय ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ॥ —भावपा० ५३ ॥

सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरही की बातें करता होय,तैसें आत्माका कथन करै; परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाहीं भासै। बहुरि जैसें कोई औरकूं औरतें भिन्न बतावता होय, तैसें आत्मा शरीरकी भिन्नता प्ररूपै। परन्तु मैं इस शरीरादिकतें भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषैं जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततें अनेक क्रिया हो हैं, तिनकौं दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका साँचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तौ यह ही प्रयोजन था, सो भया नाहीं।

आश्रव तत्व का अन्यथा रूप

बहुरि आस्रव तत्वविषैं जे हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनकौं हेय जानैं है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव हैं, तिनकौं उपादेय मानैं है। सो ए तौ दोऊ ही कर्मबंधके कारण इन विषैं उपादेयपनौं माननों, सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसार बंधाधिकारविषैं कह्या है*—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततें हो हैं। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय, सोई मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है‡। तहाँ अन्य जीवनिकौं जिवावनेका

---

* समयसार गा० २५४ से २५६

‡ सर्वं सदेव नियतं भवति स्वकीय,
कर्मोदयान्मरण-जीवित-दुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य

वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तौ पुण्यबंधका कारण है, अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसें अहिंसावत् सत्यादिक तौ पुण्यबंधकौं कारण हैं, अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकौं कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं, ते त्याज्य हैं। तातैं हिंसादिवत् अहिंसादिककौं भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषैं मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मरै नाहीं, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषैं रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसैं ए दोऊ हेय हैं। जहाँ वीतराग होय ज्ञाता दृष्टा प्रवर्त्तें, तहाँ निर्बन्ध है। सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त रागरूप प्रवर्त्तें। परन्तु श्रद्धान तौ ऐसा राखौ—यहु भी बंधका कारण है—हेय है। श्रद्धानविषैं याकौं मोक्षमार्ग जानें मिथ्यादृष्टी ही है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं, तिनकौं बाह्यरूप तो मानें, अंतरंग इन भावनिकी जातिकौं पहिचानें नाहीं। तहां अन्य देवादिकसेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकौं मिथ्यात्व जानें, अर अनादिअगृहीतमिथ्यात्व है ताकौं न पहिचानें। बहुरि बाह्य त्रस-

---

कुर्यात्पुमान मरण जीवित दुःख सौख्यम् ॥६॥

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य,
पश्यन्ति ये मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
कर्म्मण्यहं कृतिरसेन चिकीर्षवस्ते,
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥७॥

—समयसार कलशा बंधाधिकार

स्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषैं प्रवृत्ति ताकौं अविरत जानै। हिंसाविषैं प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषैं अभिलाषा मूल है, ताकौं न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकौं कषाय जानें, अभिप्रायविषैं रागद्वेष बसै ताकौं न पहिचानें। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताकौं योग जानें, शक्तिभूत योगनिकों न जानें। ऐसें आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै। बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तौ नाश करनेकी चिंता नाहीं। अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै, सो तिनके मेटैं आश्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिंगीमुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषैं न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायकौं रोकै है; तौ वाकै मिथ्यात्वादि च्यारौं आस्रव पाईए है। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै, तौ ग्रैवेयक पर्यंत कैसैं पहुँचैं। तातैं जो अंतरंग अभिप्रायविषैं मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं, सोही आस्रव हैं। ताकौं न पहिचानैं, तातैं याकै आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं।

बंध तत्व का अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्वविषैं जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकौं तौ बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकौं भला जानें। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषैं द्वेष, सुख सामग्रीविषैं राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषैं राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबधी सुखदुःखसामग्रीविषैं राग द्वेष करना।

बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तौ अघाति कर्मनिविषैं हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषैं घातिकर्मनिका तौ निरंतरबंध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं। तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषैं भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसैं श्रद्धानतैं बंधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाहीं।

संवर तत्वका अन्यथा रूप

बहुरि संवरतत्वविषैं अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकौं संवर जानैं है। सो एक कारणतैं पुण्यबंध भी मानैं अर संवर भी मानैं, सो बनैं नाहीं।

यहाँ प्रश्न—जो मुनिनकैं एकै काल एकभाव हो है, तहाँ उनकै बंध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसैं है ?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बंध है। सो एक भावतैं तौ दोय कार्य बनैं परन्तु एक प्रशस्तरागहीतैं पुण्यास्रव भी मानना अर संवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषैं भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकैं होय। तातैं अवशेष सरागताकौं हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाहीं, तातैं सरागभाव विषैं संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकौं उपादेय श्रद्धै है। बहुरि सिद्धांतविषैं गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र

इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या* है । सो इनकौं भी यथार्थ न श्रद्धै है । कैसैं, सो कहिए है: —

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै,सो गुप्ति मानें है । सो यहां तौ मनविषैं भक्तिआदिरूप प्रशस्तरागादि नानाविकल्प हो हैं, वचन काय की चेष्टा आप रोकि राखी है तहाँ शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषैं गुप्तिपनो बनें नाहीं । तातें वीतरागभाव भए जहाँ मन वचन काय की चेष्टा न होय, सो ही सांची गुप्ति है । बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकौं समिति मानें है । सो हिंसाके परिणामनितैं तौ पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे तौ पुण्यबंधका कारण कौन ठहरेगा । बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है । तहाँ रक्षाका प्रयोजन है नाहीं । तातें रक्षाहीके अर्थ समिति नाहीं है । तौ समिति कैसैं हो है—मुनिन कै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो हैं । तहाँ तिन क्रियानिविषैं अति आसक्तताके अभावतें प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है । बहुरि और जीवनिकौं दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधैं हैं तातें स्वय-मेव ही दया पलै है । ऐसैं सांची समिति है । बहुरि बंधादिकके भयतैं वा स्वर्गमोक्षकी चाहतैं क्रोधादि न करै है, सो यहाँ क्रोधादि करनेका अभिप्राय तौ गया नाहीं । जैसैं कोई राजादिकका भयतें वा महंतपना का लोभतें परस्त्री न सेवै है, तौ वाकौं त्यागी न कहिए । तैसैं ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं । तौ कैसें त्यागी होय ? पदार्थ अनिष्ट इष्ट

---

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः । —तत्वा० सू० ९-२

भासैं क्रोधादि हो है। जब तत्वज्ञानके अभ्यासतैं कोई इष्ट अनिष्ट न भासैं, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजैं, तब साँचा धर्म हो है। बहुरि अनित्यादि चिंतवनतैं शरीरादिककौं बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतैं उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तौ जैसैं कोऊ मित्र था, तब उसतैं राग था, पीछैं वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसैं शरीरादिकतैं राग था, पीछैं अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तौ द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमकौं मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चिंतवन सोई सांची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकौं परीषह सहना कहै है। सो उपाय तौ न किया अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुःखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया, तौ सो दुःख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान हैं। ऐसे भावनितैं संवर कैसैं होय? तातैं दुःखका कारण मिले दुःखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई साँची परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकौं चारित्र मानैं है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगकौं उपादेयपनैंकरि ग्राह्य मानैं है। सो तत्त्वार्थ-सूत्रविषैं आस्रव-पदार्थका निरूपण करतैं महाव्रत अणुव्रत भी आस्रव-रूप कहे हैं। ए उपादेय कैसैं होय? अर आस्रव तौ बंधका साधक है,

चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकौं चारित्रपनौं सम्भवै नाहीं, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतैं महा-मंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकौं छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोग हीका त्याग करै है। परन्तु जैसैं कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिकौं भखै है परन्तु याकौं धर्म न मानै है। तैसैं मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करैं हैं अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकौं पालैं हैं परन्तु ताकौं मोक्षमार्ग न मानैं हैं।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ चारित्रके तेरह भेदनिविषैं महाव्रतादि कैसैं कहे हैं?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषैं चारित्रका उपचार किया है। निश्चय-करि निःकषाय भाव है, सोई साँचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकौं अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

बहुरि यहु अनशनादि तपतैं निर्जरा मानैं है। सो केवल बाह्यतप ही तौ किए निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तौ शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातैं उपचारकरि तपकौं भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुःख सहना ही निर्जराका कारण होय, तौ तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं हैं।

तब वह कहै हैं—वे तौ पराधीन सहैं हैं, स्वाधीनपनैं धर्मबुद्धि

उपवासादिरूप तप करै, ताकैं निर्जरा हो है ?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितैं बाह्य उपवासादि तौ किए, बहुरि तहाँ उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसैं परिणमै तैसैं परिणमो । घनें उपवासादि किएं घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय; जो ऐसें नियम ठहरै तौ उपवासादि ही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै, सो तौ बनैं नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादितैं निर्जरा होनी कैसैं सम्भवै ? बहुरि जो कहिए—जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै, ताके अनुसार बंध निर्जरा है। तौ उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसें रह्या ? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे ।

यहाँ प्रश्न—जो तत्वार्थसूत्रविषैं "तपसा निर्जरा च" [९-३] ऐसा कैसें कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषैं "इच्छानिरोधस्तपः" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है । सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तहाँ निर्जरा हो है। तातैं तपकरि निर्जरा कही है।

यहाँ कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तौ इच्छा दूरि भए ही तप होय। परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ काय हैं, तिनकी इच्छा तौ रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातैं उपवासादि करै हैं । बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीरकी वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानैं, तहाँ

आहारादिक ग्रहै है। जो उपवासादिकहीतैं सिद्धि होय, तौ अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसें धरते ? उनकी तौ शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसें परिणाम भए तैसें बांह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसें है तौ अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसें भई ?

ताका समाधान—इनिकौं बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु, जो बाह्य औरनिकौं दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तौ फल जैसा अन्तरंग परिणाम होगा, तैसा ही पावेगा। जातैं परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाहीं।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो शास्त्रविषैं तौ अकामनिर्जरा कही है। तहाँ बिना चाह भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है। तौ उपवासादिकरि कष्ट सहैं कैसें निर्जरा न होय ?

ताका समाधान—अकामनिर्जराविषैं भी बाह्य निमित्त तौ विना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहाँ मंद कषायरूप भाव होय तौ पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तौ सर्व तिर्यंचादिक देव ही होंय। सो बनैं नाहीं। तैसें ही चाहकरि उपवासादि किए तहाँ भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहाँ जैसा परिणाम होय, तैसा फल पावै है। जैसें अन्नकौं प्राण कह्या। बहुरि ऐसें बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है तातैं उपचारकरि इनकौं तप कहे हैं। जो बाह्य तप तौ करै अर अंतरंग तप न होय, तौ उपचारतैं भी वाकौं तपसंज्ञा नाहीं। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते ।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषकौं श्रीगुरु लंघन कहैं हैं।

यहाँ कहेगा—जो ऐसैं है, तौ हम उपवासादि न करैंगे ?

ताकौं कहिए है—उपदेश तौ ऊँचा चढ़नेकौं दीजिए है। तू उलटा नीचा पड़ेगा, तौ हम कहा करैंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है, तौ करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोड़ै है, तौ जेता राग छूट्या तेता ही छूट्या। परन्तु इसहीकौं तप जानि इसतैं निर्जरामानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरंग तपनिविषैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषैं बाह्य प्रवर्त्तन सो तौ बाह्य तपवत् ही जानना। जैसैं अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसैं ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अंतरंग तप नाहीं हैं। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होतैं जो अंतरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहाँ भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ, तहाँ तौ निर्जरा ही है, बंध नाहीं हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तौ जेती शुद्धता भई ताकरि तौ निर्जरा है। अर जेता शुभ भाव है ताकरि बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहाँ बंध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ कोऊ कहै, शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बंध

हो है; शुद्ध भावनितैं दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यौं न कहो ?

ताका उत्तर —मोक्षमार्गविषैं स्थितिका तौ घटना सर्व ही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्यपापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबंध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय ऐसा संक्रमण शुभ शुद्ध दोऊ भाव होतैं होय। तातैं पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाहीं। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय-सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचम गुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै,तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा घनी। उसतैं भी बंध थोरा होय। तातैं बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाहीं है। अंतरंग कषायशक्ति घटैं विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करैंगे, तहाँ जानना। ऐसैं अनशनादि क्रियाकौं तपसंज्ञा उपचारतैं जाननी। याहीतैं इनकौं व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतैं जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो सांचा तप निर्जराका कारण जानना। यहां दृष्टांत — जैसैं धनकौं वा अन्नकौं प्राण कह्या है। सो धनतैं अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जाँय,तातैं धन अन्नकौं प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक

प्राणनिकौं न जानैं. अर इनहीकौं प्राण जानि संग्रह करै, तौ मरण ही पावै। तैसैं अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या, सो अनशनादि साधनतैं प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्तै वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातैं उपचारकरि अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकौं न जानैं अर इनिहीकौं तप जानि संग्रह करै, तो संसारहीमैं भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लैंना, निश्चय धर्म्मतौ वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष वा साधन अपेक्षा उपचारतैं किए हैं, तिनकौं व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यकौं न जानैं, तातैं वाकै निर्जराका भी साँचा श्रद्धान नाहीं है।

बहुरि सिद्ध होना ताकौं मोक्ष मानैं है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानैं है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेंकी वा पूज्य होनेकी चाह है। इनिहीके अर्थं मोक्षकी चाह कीनी, तौ याकै और जीवनिका श्रद्धानतैं कहा विशेषता भई। बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषैं सुख है, तिनितैं अनन्तगुणों मोक्षविषैं सुख है। सो इस गुणकारविषैं स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानैं है। तहाँ स्वर्गविषैं तौ विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकौं भासै है अर मोक्षविषैं विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहाँका सुखकी जाति याको भासै तौ नाहीं परन्तु स्वर्गतैं भी मोक्षकौं उत्तम महापुरुष कहै हैं, तातैं यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै, परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं आप भी सराहै है। तैसे यहु

मोक्षकौं उत्तम मानैं है।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषैं भी तौ इन्द्रादिकतैं अनंत गुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं?

ताका उत्तर—जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाकौं सूर्यप्रभातैं कोट्यां गुणी कही तहाँ तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं सूर्यप्रभा की महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेकौं उपमालंकार कीजिए है। तैसे सिद्ध सुखकौं इन्द्रादिसुखतैं अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषैं इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेंकौं उपमालंकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्धसुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसें किया?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानैं है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहाँ तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानैं। ऐसा तौ मानैं, जाकै साधन थोरा हो है, सो इन्द्रादिपद पावै है; जाकै सम्पूर्ण साधन होय, सो मोक्ष पावै है। परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानैं, ताकौं कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातैं कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातैं हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषैं इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततैं आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतैं शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसैं परमाणु स्कंधतैं विछुरें

शुद्ध हो हैं, तैसें यहु कर्मादिकतैं भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना—वह दोऊ अवस्थाविषैं दुःखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषैं दुःखी था, अब ताके अभाव होनेतैं निराकुललक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है,सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतैं दुःखी ही है। तातैं वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातैं कारणविषैं भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकौं भासै नाहीं। तातैं मोक्षका भी याकै सांचा श्रद्धान नाहीं है। या प्रकार याकै सांचा तत्वश्रद्धान नाहीं है। इस ही वास्ते समयसारविषैं* कह्या है—"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषैं‡ कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं।"

बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं, तिनिकौं पालै है। पचीस दोष कहे हैं, तिनिकौं टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकौं धारै है। परन्तु जैसें बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसें सांचा तत्वश्रद्धान भए विना सम्यक्त होता नाहीं। सो पंचास्तिकायव्याख्याविषैं जहाँ अन्तविषैं

---

* सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥२७५॥

‡ अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्य-किंचित्करमेव ॥ ३-३९ ॥

व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करतें भी सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञानका अन्यथा स्वरूप

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषें शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातें शास्त्राभ्यासविषें तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बांचना, पढ़ना आदि क्रियाविषै तौ उपयोगकौं रमावै है परन्तु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषै मुझकौं कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं है। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिकौं सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानें तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तौ आपके अर्थि कीजिए है अर प्रसंग पाय परका भी भला होय तौ परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तौ मति सुनो, आप काहेकौं विषाद कीजिए। शास्त्रार्थ का भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषें भी केई तौ व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकौं बहुत अभ्यासै हैं। सो ए तौ लोकविषें पंडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषें आत्महित निरूपण तौ है नाहीं। इनका तौ प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तौ थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछैं आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तौ आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करतें करतें आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनें।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसें है तौ व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताकौं कहिए है—

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाहीं। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहाँ प्रश्न—महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तौ था नाहीं?

ताका समाधान—भाषाविषैं भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिए हैं। बहुरि देश देशनिविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार हैं सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं अपभ्रंश शब्द कैसें लिखैं। बालक तोतला बोलै, तौ बड़े तो न बोलैं। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषैं जाय, तौ तहाँ ताका अर्थ कैसें भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रंथ जोड़े। बहुरि व्याकरण विना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्याय विना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया। भाषाविषैं भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतैं नीकैं निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहोगे—ऐसें है, तौ अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकौं बनाईए है।

ताका समाधान—कालदोषतैं जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिकका अभ्यास न करि सकैं, तिनकौं ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिएं अर्थकरनेकौं ही व्याकरण अवगाहैं हैं, वादादिकरि महंत होनेकौं न्याय अवगाहैं हैं, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहैं हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिएं इनिका अभ्यास करैं हैं ते धर्मात्मा नाहीं। बनैं जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करैं हैं, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करैं हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तौ सूवाकासा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पापकौं बुरा जानना, पुण्यकौं भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे, तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचार्या सो इसतैं इतना तौ होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गकी तौ प्राप्ति होय नाहीं। पहलैं सांचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछैं पुण्यपापका फलकौं संसार जानैं, शुद्धोपयोगतैं मोक्ष मानैं, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानैं, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनका अभ्यास करै तौ सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानकौं कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

शास्त्रनिका भी अभ्यास करैं हैं। परन्तु तहाँ जैसें लिख्या है, तैसें आप निर्णय करि आपकौं आपरूप, परकौं पररूप आस्रवादिक कौं आस्रवादिरूप न श्रद्धान करै हैं। मुखतैं तौ यथावत् निरूपण ऐसा भी करैं, जाके उपदेशतैं और जीव सम्यग्दृष्टी होय जाँय। परन्तु जैसें लड़का स्त्रीका स्वांगकरि ऐसा गान करै, जाकौं सुनतैं अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जाँय। परन्तु वह जैसें सीख्या तैसें कहै है, वाकौं किछू भाव भासै नाहीं, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसें यहु जैसे लिख्या तैसें उपदेश दे, परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता, तौ और तत्वका अंश और तत्वविषैं न मिलावता। सो याकै थल नाहीं, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाहीं। ऐसें यहु ग्यारह अंग-पर्यंत पढ़ै, तौ भी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिविषैं मिथ्या-दृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तौ इतना हो है, परन्तु जैसें अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसें हो है?

ताका समाधान—वह तौ पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाहीं। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषैं जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तौ श्रद्धानरहित नाहीं; वाकै तौ ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ सांचे हैं परन्तु तत्वश्रद्धान साँचा न भया। समयसारविषैं* एकही

---

* मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।

पाठो ण करेदि गुणं असदहंतस्स णाणं तु ॥ २७४ ॥

मोक्षोहि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते, ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि

जीवकै धर्म्मका श्रद्धान,एकदशांगका ज्ञान अर महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषैं§ ऐसा लिख्या है-आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिकौं हस्तामलकवत् जानैं है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मैं हूँ। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा आपकौं परद्रव्यतैं भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातैं आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तौ भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

सम्यक्चारित्रका अन्यथारूप

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसैं प्रवृत्ति है, सो कहिए है— बाह्यक्रिया ऊपरि तौ इनकैं दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तो जैसा अपना परिणाम होता दीसै, तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परंपरा विचारैं अभिप्रायविषै जो वासना है, ताकौं न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषैं वासना है, ताका फल लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगैं करैंगे। तहाँ स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है तहाँ केई

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात् स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य याद्विवक्त-वस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुता-ध्ययनेन न विधातुं शक्यते ततस्तस्य तद्गुणाभावः, ततश्च ज्ञानश्रद्धाना-भावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः॥

§ परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि॥ ३, ३९॥

जीव तौ कुलक्रमकरि वा देखांदेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतैं आचरण आचरै हैं। सो इनकैं तौ धर्मबुद्धि ही नाहीं। सम्यक्‌चारित्र कहाँतैं होय। ए जीव कोई तौ भोले हैं वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होतैं सम्यक्‌चारित्र होता नाहीं। बहुरि केई जीव ऐसा मानैं हैं, जो जाननेमैं कहा है अर माननेमैं कहा है, किछू करेगा तौ फल लागेगा। ऐसें विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै हैं अर तत्वज्ञानका उपाय न करै हैं। सो तत्वज्ञान विना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाहीं है, तौ भी असंयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है। तातैं पहलैं तत्वज्ञानका उपाय करना, पीछैं कषाय घटावनेकौं बाह्य साधन करना। सो ही योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै कह्या है—

"दंसणभूमिहं बाहिरा, जिय वयरुक्ख ण हुँति।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका विना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। भावार्थ—जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाहीं, ते यथार्थ आचरण न आचरै हैं। सोई विशेष दिखाईए है—

केई जीव पहलैं तौ बड़ी प्रतिज्ञा धरि बैठैं अर अंतरग विषय कषायवासना मिटी नाहीं। तब जैसैं तैसैं प्रतिज्ञा पूरी किया चाहैं, तहाँ तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुःखी हो हैं। जैसैं बहुत उपवासकरि बैठै, पीछैं पीड़ातैं दुःखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलैं ही सधती जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिए। दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसै लागेगा। अथवा

उस प्रतिज्ञाका दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेंकौं अन्य उपाय करै। जैसें तृषा लागै तब पानी तौ न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै। वा घृत तौ छोड़ै अर अन्य स्निग्ध वस्तुकौं उपायकरि भखै। ऐसें ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तौ ऐसी प्रतिज्ञा काहेकौं करी। सुगम विषय छोड़ि विषम विषयनिका उपाय करना पड़ै, ऐसा कार्य काहेकौं कीजिए। यहाँ तौ उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषैं दुःख होय तब परिणाम लगावनेकौं कोई आलम्बन विचारै। जैसें उपवासकरि पीछैं क्रीड़ा करें। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषैं लगै हैं अथवा सोय रह्या चाहैं। यहु जानैं, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसें ही अन्य प्रतिज्ञाविषैं जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलैं प्रतिज्ञा करें, पीछैं तिसतैं दुःखी होंय तब प्रतिज्ञा छोड़िदें। प्रतिज्ञा लैना छोड़ना तिनके ख्याल-मात्र है। सो प्रतिज्ञा भंग करनेंका महापाप है। इसतैं तौ प्रतिज्ञा न लैंनी ही भली है। या प्रकार पहलैं तौ निर्विचार होय प्रतिज्ञा करें, पीछैं ऐसी इच्छा होय। सो जैनधर्मविषैं प्रतिज्ञा न लेनेका दंड तौ है नाहीं। जैनधर्मविषैं तौ यहु उपदेश है, पहले तौ तत्वज्ञानी होय। पीछैं जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानैं। त्याग किएं गुण होय, ताकौं जानैं। बहुरि अपने परिणामनिकी ठीक करै। वर्त्तमान परिणाम-निहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानैं, तौ प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसें विचारि पीछं प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी

जिस प्रतिज्ञातैं निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहैं। ऐसी जैनधर्मकी आम्नाय है।

यहाँ कोऊ कहै—चांडालादिकौंनै प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहां हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यंत कष्ट होय तौ होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी ऐसा विचारकरि प्रतिज्ञा करै हैं, प्रतिज्ञाविषैं निरादरपना नाहीं। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै हैं, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करै हैं। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरैं हैं, ते प्रतिज्ञाके पहलैं वा पीछैं जाकी प्रतिज्ञा करैं, ताविषैं अति आसक्त होय लागैं हैं। जैसैं उपवासके धारनै पारनै भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करैं, शीघ्रता घनी करैं। सो जैसैं जलकौं मूंदि राख्या था, छूटचा तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसैं प्रतिज्ञाकरि विषयप्रवृत्ति मूंदि, अंतरंग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होतैं ही अत्यंत विषयप्रवृत्ति होनें लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषैं विषयवासना मिटी नाहीं। आगैं पीछैं तिसकी एवज अधिक राग किया, तौ फल तौ रागभाव मिटैं होगा। तातैं जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करै, पीछैं आहारादिविषैं उछटि करैं। अर बड़ी प्रतिज्ञा करैहैं, सो अपनी शक्ति देखकरि करैहैं। जैसैं परिणाम चढ़ते रहैं, सो करैहैं, प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी। बहुरि जिनकैं धर्म ऊपरि दृष्टि नाहीं, ते कबहूं तौ बड़ा धर्म आचरैं, कबहूँ अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तैं। जैसैं कोई धर्म पर्वविषैं तो बहुत उपवासादि

करैं, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करैं। सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषैं यथायोग्य संयमादि धरैं। बहुरि कबहूँ तो कोई धर्मकार्यविषैं बहुत धन खरचैं, कबहूँ कोई धर्मकार्यग्रादि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचैं। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसैं ही अन्य जानना। बहुरि जिनकै साँचा धर्मसाधन नाहीं,ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करैं अर कोई हीनक्रिया किया करैं। जैसैं धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषैं विशेष प्रवर्त्तैं। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करैं अर पीछैं खोटे व्यापारादि कार्य करैं, तहाँ लोकनिंद्य पापक्रियाविषैं प्रवर्त्तैं; ऐसें ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करैं। तहाँ लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावैं। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसैं कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै, तौ हास्य ही होय। तैसैं यहु हास्य पावै है। सांचा धर्मकी तौ यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषैं जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय, तो नीचा ही पदविषैं प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहाँ प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरकी प्रतिमाविषैं कह्या है,सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै। ताका

समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातैं ऊपरकी प्रतिमाविषैं त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै, तैसा नीचली अवस्था-वाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है। जैसैं कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तौ कैसें बनैं ? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलैं सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसैं ही अन्य जाननें। बहुरि सर्व प्रकार धर्मकौं न जानें, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगकौं मुख्यकरि अन्य धर्मनिकौं गौण करै है। जैसें केई जीव दयाधर्मकौं मुख्यकरि पूजा प्रभावनादि कार्यकौं उथापै हैं, केई पूजा प्रभावनादि धर्मकौं मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखैं हैं, केई तपकी मुख्यताकरि आर्तध्यानादिकरिकें भी उपवासादि करें वा आपकौं तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करें, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिकें भी धन उपजाय दान दे हैं, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करै हैं*, केई जीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाहीं करै हैं वा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जांय इत्यादि करै हैं। इत्यादि प्रकारकरि कोई धर्मकौं मुख्यकरि अन्य धर्मकौं न गिनै हैं वा वाके आसरैं पाप आचरैं हैं। सो जैसें अविवेकी व्यापारीकों कोई व्यापारके नफ़ेके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा

* यहाँ खरडा प्रति में अन्य कुछ और लिखने के लिये संकेत किया है पर लिखा नहीं।

पाड़ै तैसें यहु कार्य भया। चाहिए तो ऐसें, जैसें व्यापारीका प्रयोजन नफ़ा है, सर्व विचारकरि जैसें नफ़ा घना होय तैसें करै। तैसें ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसें वीतरागभाव घना होय तैसें करै। जातैं मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै हैं, तिनकै तो सम्यक्-चारित्रका आभास भी न होय। बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करै हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाहीं है। इनिकौं धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखैं हैं परन्तु तत्वज्ञान पहलें न भया, तातैं आप तो जानैं मोक्षका साधन करूं हूं अर मोक्षका साधन जो है ताकौं जानैं भी नाहीं। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करै। सो मिश्री कौं अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—चारित्रविषैं 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातैं पहलें तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछें चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसें कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाहीं अर अन्य साधन करै, तो अन्न-प्राप्ति कैसें होय। घास फूस ही होय। तैसें अज्ञानी तत्वज्ञानका तो अभ्यास करै नाहीं अर अन्य साधन करै, तो मोक्षप्राप्ति कैसें होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे हैं जो तत्वादिकका नीकें नाम भी न जानैं, केवल व्रतादिकविषैं ही प्रवर्तै है। केई जीव ऐसे

हैं जो पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि-विषं प्रवर्त्तैं हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरें, तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समय-सारका कलशाविषें कह्या है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्षमिदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१॥

—निर्जराधिकार ॥१०॥

याका अर्थ—मोक्षतें पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आप ही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपं आप अनुभवमैं आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेकों समर्थ नाहीं है। बहुरि पंचास्तिकायविषें जहाँ अंतविषें व्यवहाराभास वालेका कथन किया है, तहाँ तेरहप्रकार चारित्र होतें भी ताका मोक्षमार्गविषैं निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषें आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषैं वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषें इस प्रयोजन लिए जहाँ तहाँ निरूपण है। तातें पहले तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहाँ कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधैं हैं, अंतरंग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै हैं, सो ऐसें साधे तो पापबंध होय। द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है। परावर्त्तनिविषैं इकतीस सागर पर्यन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊँचेपद तो तब ही पावै जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितैं मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातैं द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनों है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनों है सो सम्यग्दृष्टीकौं भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसें है अर तामैं अन्यथापनों कैसें है? सो कहिए हैं—

प्रथम तो संसारविषैं नरकादिकका दुःख जानि, स्वर्गादिविषैं भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि,संसारतें उदास होय मोक्षकौं चाहै हैं। सो इन दुःखनिकौं तो दुःख सब ही जानें हैं। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतें इन्द्रियजनित सुख भोगवें हैं ताकौं भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाकौं पहचानि मोक्ष चाहै हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषनेंयोग्य नाहीं, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता हैं,तिन करि शरीर सोखनें योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीकों अंगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकौं बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य

कौं भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषें इष्ट अनिष्ट रूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतें याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि-रूप हो है। जातें काहूकों बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहेगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यकौं त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिकौं बुरा न जानें है। अपना रागभावकौं बुरा जानें है। आप रागभावकौं छोरै, तातें ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारें कोई परद्रव्य तो भला बुरा है नाहीं।

कोऊ कहेगा, निमित्तमात्र तौ है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाहीं। अपने भाव बिगरें तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त विना भी भाव बिगरै हैं। तातें नियमरूप निमित्त भी नाहीं। ऐसें परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे हैं सो याकै ऐसी समझि नाहीं। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषें द्वेषरूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तो वाका नाम है कि कोई ही परद्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातें काहूकौं बुरा भला न जानै। आपकौं आप जानें परकौं परजानें, परतें किछू भी प्रयोजन मेरा नाहीं ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषें व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कह्या है, ताकौं अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापकौं छांड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषें प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसें पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषै कर्त्तापना माने था तैसें ही अब पर्या-

याश्रित पुण्यकार्यनिविषैं कर्त्तापना अपना माननें लागा, ऐसैं पर्याया-श्रित कार्यनिविषैं अहंबुद्धि माननेकी समानता भई । जैसें मैं जीव मारूं हूं, मैं परिग्रहधारी हूं, इत्यादिरूप मानि थी, तैसैंही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूँ, मैं नग्न परिग्रह रहित हूँ, ऐसी मानि भई । सो पर्यायाश्रित कार्यविषैं अहंबुद्धि है, सो ही मिथ्यादृष्टि है । सोई समय-सारविषैं कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसावृताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥

(सर्व वि० श्लो०७)

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते संते आपकौं पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानें हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसें अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसें मोक्ष न हो है । जातें कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है । बहुरि ऐसें आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषें मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै हैं । जैसें उन क्रियानिविषें भंग न होय, तैसें प्रवर्त्तें हैं । सो ऐसे भाव तो सराग हैं । चारित्र है सो वीतरागभाव-रूप है । तातें ऐसे साधनकौं मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है ।

यहाँ प्रश्न—जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है, सो कैसें है ?

ताका उत्तर—जैसें तन्दुल दोय प्रकारके हैं—एक तुषसहित हैं एक तुषरहित हैं, तहाँ ऐसा जानना—तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषें दोष है । अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै

था, ताकौं देखि कोई भोला तुषनिहीकौं तन्दुल मानि संग्रह करै, तो वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसें चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहाँ ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाहीं, चारित्रविषें दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनकौं देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकौं चारित्र मानि संग्रह करै, तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा—पापक्रिया करतें तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकौं करते मंदराग भया। तातैं जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तो चारित्र कहो। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहो। ऐसें याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान—जो तत्वज्ञानपूर्वक ऐसें होय, तौ कहो हो तैसें ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट ग्राचरण होतें भी असंयम ही नाम पावै है। जातें रागभाव करनेका अभिप्राय नाहीं मिटै है। सोई दिखाईए है—

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोड़ि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिकौं पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घनां तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत-भंगके कारण अनेक मिलें तौ भी दृढ़ रहै है, कोईसेती क्रोध न करै हैं, ऐसा साधनका मान न करै है; ऐसे साधनविषें कोई कपटाई नाहीं हैं, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषयसुखकौं न चाहै है; ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय, तौ ग्रैवेयकपर्यंन्त कैसें पहुँचे। परन्तु याकौं मिथ्यादृष्टी असंयमी ही शास्त्रविषें कह्या। सो ताका

कारण यहु है—याकै तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं। पूर्वं वर्णन किया, तैसें तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्राय तें सर्व साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकौं विचारें कषायनिका अभिप्राय आवै है। सो कैसें ? सो सुनहु—यहु पापको कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यको कारण प्रशस्तरागकों उपादेय मानैं है। ताके बधनेंका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायकों उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषैं राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषैं साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसें काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानैं है परन्तु श्रद्धानविषैं दंड देना अनिष्ट ही मानैं है। तैसें सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धान विषैं कषायकों हेय ही मानै है। बहुरि जैसें कोऊ कुमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसें द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्तरागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानैं है। ऐसें प्रशस्तरागका उपायविषैं वा हर्षविषैं समानता होतें भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै

व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है । तातैं अभिप्रायविषैं विशेष भया ।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततैं दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है । सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहाँ वीतरागता हो है, तहाँ तो जैसैं अन्य ज्ञेयकौं जानैं है तैसैं ही दुःखका कारण ज्ञेयकौं जानैं है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकौं सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतैं सहै है। सो विचार ऐसा हो है—जो परवशपनें नरकादिकविषैं बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिकका दुःख तो थोरा है । याकौं स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। जो इनकौं न सहिए अर विषयसुख सेइए, तो नरकादिककी प्राप्ति होसी तहाँ बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचारविषैं परीषहनिविषैं अनिष्टबुद्धि रहै है । केवल नरकादिकके भयतैं वा सुखके लोभतैं तिनकौं सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है—जे कर्म बांधे थे, ते भोगे विना छूटते नाहीं। तातैं मोकौं सहनें आए। सो ऐसे विचारतैं कर्मफल चेतना रूप प्रवर्त्तै है। बहुरि पर्यायदृष्टितैं जो परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताकौं आपकै भई मानैं है । द्रव्यदृष्टितैं अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाकौं भिन्न न पहिचानै है। ऐसैं ही नानाप्रकार व्यवहार विचारतैं परीषहादिक सहै है । बहुरि यानैं राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है । सो जैसैं कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतैं शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए । तैसैं रागसहित जीव नरकादिकके भयतैं

विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् विषयसेवन रुचै तावत् रोगका अभाव न कहिए। बहुरि जैसें अमृतका आस्वादी देवकौं अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसका आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिककी अपेक्षा परीषहसहनादिकौं सुखका कारण जानें है अर विषयसेवनादिकौं दुःखका कारण जानें है। बहुरि तत्कालविषें परीषह सहनादिकतें दुःख होना मानें है, विषयसेवनादिकतें सुख मानें है। बहुरि जिनतें सुख दुःख होना मानिए, तिनविषें इष्ट अनिष्ट बुद्धितें रागद्वेष रूप अभिप्राय का अभाव होय नाहीं। बहुरि जहाँ रागद्वेष है,तहाँ चारित्र होय नाहीं। तातें यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तपश्चरणादि करै है, तथापि असंयमी ही है। सिद्धांतविषें असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतें भी याकौं हीन कह्या है। जातें उनकै चौथा पाँचवाँ गुणस्थान है, याकें पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतें असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवाँ स्वर्गपर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातैं भावलिंगी मुनितें तो द्रव्यलिंगीकौं हीन कहो, असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं याकौं हीन कैसें कहिए ?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेंका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभकषाय करनेंका अभिप्राय पाईए है। श्रद्धानविषें तिनकौं भले जानै है। तातें श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टीतें भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकी

प्रवृत्ति शुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषैं पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचै है, सो किछू कार्यकारी नाहीं। जातैं अघातिया कर्म आत्मगुण के घातक नाहीं। इनके उदयतैं ऊँचे नीचेपद पाए तौ कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र संसारदशाके स्वाँग हैं। आप तो आत्मा है, तातैं आत्मगुणके घातक ए कर्म्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातिया कर्मनिका बंध बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार नाहीं। अंतरंग कषाय शक्तिके अनुसार है। याहीतैं द्रव्यलिंगीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बंध थोरा है। द्रव्यलिंगीकै तो सर्व-घातिकर्मनिका बंध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनंतानुबंधी आदि कर्मका तो बंध है ही नाहीं, अवशेषनिका बंध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल संयम भए निरन्तर हो है। याहीतैं यहु मोक्षमार्गी भया है। तातैं द्रव्यलिंगी मुनि असंयत देशसंयतसम्यग्दृष्टीतैं हीन शास्त्रविषैं कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषैं द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीका कलशानिविषैं प्रगट किया है। बहुरि पंचास्तिकायकी टीकाविषैं जहाँ केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहाँ व्यवहार पंचाचार होतेंभी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं संसारतत्व द्रव्यलिंगीकौं कह्या। बहुरि परमात्म प्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषैं भी इस व्याख्यानकौं स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै जो जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए हैं,

तिनकौं भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषैं जहाँ दिखाए हैं, सो तहाँ देखि लेना। यहाँ ग्रन्थ बधनेके भयतैं नाहीं लिखिए हैं। ऐसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

निश्चय व्यवहारावलम्बी जैनाभास

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासकौं अवलम्बै हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

जे जीव ऐसा मानें हैं—जिनमतविषें निश्चय व्यवहार दोय नय कहै हैं, तातें हमकौं तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसें विचारि जैसें केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें तौ निश्चयका अंगीकार करै हैं अर जैसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें व्यवहारका अंगीकार करै हैं। यद्यपि ऐसें अंगीकार करने विषैं दोऊं नयनिविषैं परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, सांचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहीं अर जिनमतविषै दोय नय कहे, तिनिविषैं काहूकौं छोड़ी भी जाती नाहीं। तातें भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै हैं, ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जाननें।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अंतरगविषैं आप तो निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकौं पहिचान्या नाहीं। जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है। सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहाँ सांचा मोक्षमार्गकौं मोक्षमार्ग निरूपण सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है

वा सहचारी है, ताकौं उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है जातैं निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चयमोक्ष मार्ग है, एक व्यवहारमोक्षमार्ग है; ऐसें दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातैं निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातैं समयसार विषैं ऐसा कह्या है—

"व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिऊण सुद्धणओ* ।" ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपकौं न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्ध नय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसें इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है। बहुरि तू ऐसें मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाहीं। जातैं कोईद्रव्यभावका नाम निश्चय,कोईका नाम व्यवहार ऐसें है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावकौं तिसस्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकौं अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना, सो व्यवहार है। जैसें माटीके घड़ेकौं माटीका घड़ा

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११॥

निरूपिए सो निश्चय अर घृतसंयोगका उपचारकरि वाकौं ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार । ऐसें ही अन्यत्र जानना । तातें तू किसी को निश्चय मानें, किसीकौं व्यवहार मानें सो भ्रम है । बहुरि तेरे माननें विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया । जो तू आपकौं सिद्ध मान शुद्ध मानें है, तो व्रतादिक काहेकौं करै है । जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्त्तमानविषें शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया । ऐसें दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है । तातैं दोऊ नयनिका उपादेयपना बनैं नाहीं ।

यहाँ प्रश्न—जो समयसारादिविषैं शुद्ध आत्माका अनुभवकौं निश्चय कह्या है, व्रत तप संयमादिककौं व्यवहार कह्या है तैसें ही हम मानें हैं ।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है तातें वाकौं निश्चय कह्या । यहाँ स्वभावतें अभिन्न, परभावतें भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । संसारीकौं सिद्ध मानना ऐसा भ्रम-रूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतें इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातें इनकौं व्यवहार कह्या । ऐसें भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकौं निश्चय व्यवहार कहे हैं । सो ऐसें ही मानना । बहुरि ए दोऊ ही साँचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिकौं उपादेय मानना सो तो मिथ्या-बुद्धि ही है । तहाँ वह कहै है—श्रद्धान तो निश्चयका राखे हैं अर प्रवृत्ति व्यवहाररूप राखैं हैं, ऐसें हम दोऊनिकौं अंगीकार करें हैं । सो भी बनैं नाहीं, जातें निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका

व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषैं नयका प्रयोजन ही नाहीं। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय, ताकौं तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकौं अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यवहारनय, ऐसैं अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतैं तिस प्रवृत्तिविषैं दोऊ नय बनें हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाहीं। तातैं या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए हैं—निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोड़ना। सो ही समयसारविषै कह्या है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै—
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव परमं निष्कम्प्यमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥

समयसार कलशा निर्जरा०—११

याका अर्थ—जातैं सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषैं अध्यवसाय हैं सो समस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातैं मैं ऐसैं मानूं हूँ, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया हैं। सन्त पुरुष एक निश्चयहीकौं भले प्रकार निश्चयपनें अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषै स्थिति क्यों न करै हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तौ त्याग कराया, तातैं निश्चयकौं अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषैं कह्या है—

जो सुत्ता ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्ता अप्पणो कज्जे* ॥१॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषैं सूता है, सो जोगी अपने कार्यविषैं जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है, सो अपने कार्यविषैं सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यकौं वा तिनके भावनिकौं वा कारण कार्यादिककौं काहूकौं काहूविषैं मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही कौं यथावत् निरूपै है, काहूकौं काहूविषैं न मिलावै है। सो ऐसेही श्रद्धान तैं सम्यक्त्व हो है तातैं याका श्रद्धान करना। यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है, सो कैसें?

ताका समाधान—जिनमार्गविषैं कहीं तौ निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं तौ 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है, ताकौं 'ऐसैं है नाहीं, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जाननें का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकौं समान सत्यार्थ जानि ऐसें भी है, ऐसैं भी है, ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेंकरि तौ दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

* या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।'—गीता २–६९

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है, तौ ताका उपदेश जिनमार्गविषैं काहेकौं दिया—एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था ?

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषैं किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥ १,८ ॥

याका अर्थ—जैसैं अनार्य जो म्लेछ सो ताहि म्लेछभाषा विना अर्थ ग्रहण करावनेकौं समर्थ न हूजे। तैसैं व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातैं व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषैं ऐसा कह्या है—'व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अंगीकार करावनेकौं व्यवहारकरि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है, सो अंगीकार करने योग्य नाहीं।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चयका उपदेश कैसे न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसें अंगीकार करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तौ आत्मा परद्रव्यनितैं भिन्न स्वभावनितैं अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है ताकौं जे न पहिचानैं, तिनकौं ऐसैं ही कह्या करिए तौ वह समझै नाहीं। तब उनकौं व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषैं भेद

उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकौं जे न पहिचानें, तिनिको ऐसें ही कह्या करिए,तौ वे समझैं नाहीं। तब उनकौं व्यवहारनयकरि तत्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेंका सापेक्षकरि व्रत शील संयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चयका उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीकौं जीव कह्या, सो पर्यायहीकौं जीव न मानि लेना। पर्याय तौ जीव पुद्‌गलका संयोगरूप है। तहाँ निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकौं जीव मानना। जीवका संयोगतैं शरीरादिककौं भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतैं शरीरादिक जीव होते नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषैं ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकौं भेदरूप ही न मानि लेनें। भेद तौ समझावने के अर्थ हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है। तिसहीकौं जीव वस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही हैं। परमार्थतैं जुदे जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्यका निमित्त मेटनेकी अपेक्षा व्रतशीलसंयमादिककौं मोक्षमार्ग कह्या। सो इनहीकौं मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तौ आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने भाव

रागादिक हैं,तिनकौं छोड़ि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्य कारणपनो है। तातैं व्रतादिककौं मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही हैं। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं,ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसें ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार करना जानि लेना।

यहाँ प्रश्न—जो व्यवहारनय परकौं उपदेशविषैं ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यथावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकौं न पहिचानैं, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषैं आपकौं भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारकौं उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका श्रद्धान ठीक करै, तौ कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसें ही है, ऐसा श्रद्धान करै, तौ उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं कह्या है—

अबुधस्य वोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकौं असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकौं उपदेशैं हैं। जो केवल व्यवहारहीकौं जानै है, ताकौं उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसें जो साँचा सिंहकौं न

जानें, ताकै बिलाव ही सिंह है, तैसें जो निश्चयकौं न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकौं प्राप्त हो है।

तहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसें कहै—तुम व्यवहारकौं असत्यार्थ हेय कहो हो, तौ हम व्रत शील संयमादिका व्यवहार कार्य काहेकौं करें—सर्व छोड़ि देवेंगे। ताकौं कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाहीं है। इनकौं मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, सो छोड़ि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकर जो इनकों तौ बाह्य सहकारी जानि उपचारतें मोक्षमार्ग कह्या है। ए तौ परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसें व्यवहारकौं असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककौं छोड़नेतें तौ व्यवहारका हेयपनौं होता है नाहीं। बहुरि हम पूछें हैं—व्रतादिककौं छोडि कहा करेगा? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तैगा, तौ तहाँ तौ मोक्षमार्गका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तहाँ प्रवर्त्तनेतें कहा भला होयगा, नरकादिक पावेगा। तातें ऐसें करना तौ निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनें, तौ भलैं ही है। सो नीचली दशाविषैं होय सकै नाहीं। तातें व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषें निश्चयकौं, प्रवृत्तिविषें व्यवहारकौं उपादेय मानना, सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकौं शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषें लागै है। सो ऐसा आप नाहीं, परन्तु भ्रमकरि मैं ऐसा ही हूं,ऐसा मानि सन्तुष्ट हो है। कदाचित्

वचनद्वारि निरूपण ऐसा ही करै है। सो निश्चय तौ यथावत् वस्तुकौं प्ररूपै, प्रत्यक्ष जैसा आप नाहीं तैसा आपकौं मानना, सो निश्चय नाम कैसें पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै जानना। अथवा यह ऐसें मानैं है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा हैं, सो आत्मा तौ जैसा है तैसा ही है, तिसविषैं नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताकौं न पहिचानैं है। जैसें आत्मा निश्चयकरि तौ सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्मरहित है, व्यवहारनय करि संसारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्मसहित है, ऐसा मानैं है। सो एक आत्माके ऐसे दोय स्वरूप तो होय नाहीं। जिस भाव हीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषैं कैसें सम्भवै? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तौ कैसें है—जैसें राजा रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, तैसें सिद्ध संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे हैं। केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए, सो है नाहीं। संसारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादि ही हैं। सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है—संसारीकै मतिज्ञानादिक कर्मका निमित्ततैं हैं, तातैं स्वभावअपेक्षा संसारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाहीं। जैसें रंक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसें यहु शक्ति जाननी। बहुरि द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातैं निश्चयकरि संसारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण—कार्यसम्बन्ध भी न मानैं, तौ भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तें हो है, तातें व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादि न मानना, कर्महीका मानना यहु भी भ्रम ही है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकौं एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है,ऐसें मानि यथासम्भव वस्तुकौं मानना सो साँचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकौं मानैं, परन्तु यथार्थ भावकौं पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्षके कारण हैं'ऐसा मानि तिनकौं उपादेय मानैं है। सो जैसें केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यहु ऐसें भी मानं है—जो यथायोग्य व्रतादि क्रिया तौ करनी योग्य है, परन्तु इनविषैं ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसें न कहिए। अर आप कर्त्ता न है, तौ मुझकौं करनी योग्य है, ऐसा भाव कैसें किया। अर जो कर्त्ता है,तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ता कर्मसम्बन्ध स्वयमेव ही भया। ऐसी मान्यता तौ भ्रम है। तौ कैसें है—बाह्य व्रतादिक हैं, सो तौ शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं, तातैं तिसविषैंकर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषैं ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय,सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है,तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगकौं बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना जातैं बंध अर मोक्षकैं तौ प्रतिपक्षीपना है। तातैं एक ही भाव पुण्यकौं भी कारण होय अर मोक्षकौं भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्यके ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्षमार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषैं केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धोपयोगका युक्तपना पाईए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगकौं मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारतैं शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं बंधकौं कारण सोई मोक्षका घातक है ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकौं उपादेय मानि ताका उपाय करना। शुभोपयोग कौं हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहाँ शुद्धोपयोग न होय सकै, तहाँ अशुभोपयोगकौं छोड़ि शुभही विषैं प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषैं अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तौ परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तौ किछू परद्रव्यका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रतादिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। बहुरि पहलैं अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है। बहुरि कोई ऐसैं मानैं कि शुभोपयोग है, सो शुद्धोपयोगकौं कारण है। सो जैसैं अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है। ऐसैं ही कायकारणपना होय, तौ

शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तौ उत्कृष्ट हो है,शुद्धोपयोग होता ही नाहीं। तातैं परमार्थतैं इन कै कारणपना है नाहीं। जैसें रोगीकै बहुत रोग था, पीछैं स्तोक रोग भया, तौ वह स्तोक रोग तो निरोग होनेंका कारण है नाहीं। इतना है, स्तोक रोग रहैं निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकौं भला जानि ताका राखनेका यत्न करै,तौ निरोग कैसें होय। तैसें कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछें मंद-कषायरूप शुभोपयोग भया, तौ वह शुभोपयोग तौ निःकषाय शुद्धोपयोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै, तौ होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकौं भला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसें होय। तातैं मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगकौं कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकौं शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है,ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपकौं निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानैं है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माकौं शुद्ध मान्या सो तौ सम्यग्दर्शन भया। तैसेंही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसेंही विचारविषैं प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसें तौ आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानैं सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसें मानूं, जानूं, विचारूं हूँ, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतें सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिककौं न मानैं है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीख लिए हैं तिनहीकौं मानैं है औरकौं न मानैं, सो तौ सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषैं बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै है,सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसें आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानें। सो व्यवहार तौ उपचारका नाम है। सो उपचार भी तौ तब बनें, जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसें निश्चय रत्नत्रय सधै तैसें इनकौं साधै, तौ व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तौ सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाहीं। यहु ऐसैं कैसें साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्यांदेखी साधन करै है। तातैं याकैं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगैं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा। ऐसैं यहु जीव निश्चयाभासकौं मानैं जानैं है। परन्तु व्यवहार साधनकौं भी भला जानैं है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदकौं पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुगतिविषैं भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है। परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदकौं न पावै है। ऐसें निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्वविचार करनेकी शक्ति भई। अर मोह मंद भया, तातैं तत्वादिविचारविषैं उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि सांचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्वनिका वा आपा परका वा आपकौं अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय ऐसा विचार किया— अहो मुझकौं तौ इन बातनिकी खबरि नाहीं, मैं भ्रमतैं भूलि पर्याय ही विषैं तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तौ थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोकौं सर्व निमित्त मिले हैं। तातैं मोकौं इन बातनिका ठीक करना। जातैं इनविषैं तौ मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसैं विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातैं पहलै तौ तिनके नाम सीखै, सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानैं। बहुरि ऐसैं सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीख लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तौ उपदेशके अनुसार हो है। जैसैं उपदेश दिया तैसैं याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषैं अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपनें उपयोगविषै विचारै, जैसैं उपदेश दिया तैसैं ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तौ ऐसैं है अर ऐसैं न मानिए तौ ऐसैं होय। सो इनविषैं प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है, जो प्रबल भासै, ताकौं सांच जानैं। बहुरि

जो उपदेशतैं अन्यथा साँच भासैं वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तौ बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकौं पूछै । बहुरि वह उत्तर दे, वाकौं विचारै। ऐसें ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै। अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनकौं आपकै जैसा विचार भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै। बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषैं निरूपण भया होय, ताकौं एकान्तविषैं विचारै । याही प्रकार अपनें अन्तरंगविषैं जैसें उपदेश दिया था, तैसें ही निर्णय होय भाव न भासै,तावत् ऐसें ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है,ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै, सन्देह होय, तौ भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसें उद्यम किए जैसें जिनदेवका उपदेश है तैसें ही साँच है,मुझकौं भी ऐसें ही भासै है, ऐसा निर्णय होय। जातैं जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव अन्यथावादी नाहीं हैं तौ जैसें उनका उपदेश है तैसें श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकौं कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तौ मानना होय, जो जिनदेव ऐसें कह्या है, सो सत्य है। परन्तु उनका भाव आपकौं भासै नाहीं। बहुरि भाव भासं बिना निर्मल श्रद्धान न होय । जाकी काहू का वचनही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तौ शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है । बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताकौं अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानं। तातं भाव भासें प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतें वचनप्रमाण कीजिए है, तौ पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलें करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ प्रश्न—उपदेश तौ अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए ?

ताका समाधान—उपदेशविषैं केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिए हैं। तहाँ उपादेय हेय तत्वनिकी तौ परीक्षा करि लैना। जातैं इन विषैं अन्यथापनों भए अपना बुरा हो है। उपादेय-कौं हेय मानि लै तौ बुरा होय, हेयकौं उपादेय मानि लै तौ बुरा होय।

बहुरि जो कहोगे, आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतैं उपादेयकौं उपादेय जानैं, हेयकौं हेय जानैं, तौ कैसें बुरा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानें। यहु तौ मानि ले, जो मैं जिनवचन अनुसारि मानूं हूँ। परन्तु भाव भासे विना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषैं भी किंकर कौं किसी कार्यकौं भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानें, तौ कार्यकौं सुधारै, जो भाव न भासें तौ कहीं चूक ही जाय। तातैं भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय, तौ कहा करिए ?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तौ जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसें न होय तावत् जैसें कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककौं

ढूंढे। तैसें यह अपनी परीक्षा विषैं विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै, तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा न कहै, तौ ज्ञेयतत्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसें कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषैं झूठ न बोलै, सो अप्रयोजनविषें झूठ काहेकौं बोलै। तातैं ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानिए। तिनका यथार्थ स्वरूप न भासै, तौ भी दोष नाहीं। याहीतैं जैनशास्त्रनिविषै तत्वादिकका निरूपण किया,तहाँतौ हेतु युक्ति आदिकरि जैसें याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसें कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्व-निकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनकौं पहिचानना। बहुरि त्यागनें योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नमित्तादिक जैसें है, तैसें पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषें जिनके जानें प्रवृत्ति,होय,तिनकौं अवश्य जाननें। सो इनकीतौ परीक्षा करनी। सामान्यपने हेतु युक्तिकरि इनकौं जाननें, वा प्रमाण नयकरि जाननें, वा निर्देश स्वामित्वादिकरि, वा सत् संख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनैं, तैसें इनकौं सामान्य विशेषरूप पहचाननें। बहुरि इस जाननेंका] उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक, वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै, तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना। ऐसें इस जाननेके

अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र बाँचै है, कबहूं सुनै है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहूं प्रश्नोत्तर करै है, इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातैं अंतरंग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करतें यावत् साँचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्वनिका स्वरूप आपकौं न भासै, जैसैं पर्यायविषैं अहंबुद्धि है, तैसें केवल आत्मविषै अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भाव न पहिचानें, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमैं सम्यक्तकौं प्राप्त होगा। इसही भवमैं वा अन्य पर्यायविषैं सम्यक्तकौं पावेगा। इस भव मैं अभ्यासकरि परलोकविषैं तिर्यंचादि गतिविषं भी जाय तौ तहाँ संस्कारके बलतें देव गुरु शास्त्रका निमित्त विना भी सम्यक्त होय जाय। जातें ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय,तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तौ बाह्य निमित्त हैं, सो मुख्यताकरि तौ इनके निमित्तहीतें सम्यक्त हो है। तारतम्यतें पूर्वं अभ्यास संस्कारतें वर्तमान इनका निमित्त न होय तौ भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धांतविषै ऐसा सूत्र कह्या है—

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा" (तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतें हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतें भया कहिए। देवादिकका निमित्ततें होय, सो अधिगमतें भया कहिए। देखो तत्व-विचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तौ सम्यक्त होनेका अधिकार नाहीं। अर तत्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होनें पहलैं किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अंगीकार होय,पीछैं तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है। बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछैं तत्वप्रतीति न होनेतैं सम्यक्त तौ न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातैं देवादिककी प्रतीति करै है वा व्रत तपकौं अंगीकार करै है। काहूकैं देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहलैं पीछैं भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इस विना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घनें जीव तौ पहलैं सम्यक्त होय पीछैं ही व्रतादिककौं धारैं हैं। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसैं यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है। परन्तु याकैं सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाहीं। जातैं शास्त्रविषै सम्यक्त होनेतैं पहलैं पंच लब्धिका होना कह्या है—

पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते संतै तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालकौं प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषैं उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतैं मंदकषाय रूप भाव होंय, तहाँ तत्वविचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहाँ नरकादिविषैं उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसंस्कारतैं होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बंध अंतःकोटाकोटी प्रमाण ताके संख्यातवें भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धिकालतैं लगाय क्रमतैं घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतैं मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्य लब्धि है। सो ए च्यारौं लब्धि भव्य या अभव्यकै होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछैं सम्यक्त होय तौ होय, न होय तौ नाहीं भी होय। ऐसैं 'लब्धिसार' विषैं कह्या है*। तातैं तिस तत्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होनेंका नियम नाहीं। जैसे काहूकौं हितकी शिक्षा दई, ताकौं वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसैं है? पीछैं विचारतां वाकै ऐसैं ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषैं लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाहीं भी होय। तैसैं श्रीगुरु तत्वोपदेश दिया, ताकौं जानि विचारि करै, यहु उपदेश दिया सो कैसैं है। पीछैं विचार करनेतैं वाकै 'ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषैं लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाहीं होय। ऐसा नियम है। याका उद्यम तौ तत्वविचार करनें मात्र ही है। बहुरि पाँचवीं करणलब्धि

* लब्धि० ३

भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है । सो जाकै पूर्वै कही थीं च्यारि लब्धि ते तौ भई होंय अर अंतर्मुहूर्त्त पीछैं जाकें सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तौ इतनाही उद्यम हो है—जिस तत्वविचारविषैं उपयोगकौं तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय हैं। जैस काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीत होय जासी । तैसैं तत्वउपदेश ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी । बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताकरि निरूपण करणानुयोगविषैं किया है । सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं— अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तौ लब्धिसार शास्त्रविषैं किया है, तिसतैं जानना। यहां संक्षेपसौं कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहाँ करण नाम तौ परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होंय, सो अधःकरण है ❀। जैसें कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भये, पीछैं समय समय अनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसें द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होंय, तैसैं केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषैं ही होंय । ताकै तिसतैं समय समय अनन्ती विशुद्धताकरि बधते होंय । ऐसें अधःप्रवृत्तिकरण जानना । बहुरि जिसविषैं पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय, सो अपूर्वकरण है । जैसैं तिस करणके परिणाम

❀ लब्धि० ३५

जैसे पहलें समय होंय तैसें कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय, बधते ही होंय । बहुरि इहाँ अधःकरणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिन अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय । परन्तु यहाँ इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातें भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय । ऐसें ही जिनकौं करण माँडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालौं कै तौ परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय परन्तु ऊपरले समयवालौंकै तिस समय समान सर्वथा न होंय, अपूर्व ही होंय । ऐसें अपूर्वकरण* जानना । बहुरि जिस विषैं समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होंय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होंय । जैसें तिस करणका पहला समयविषैं सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैंही द्वितीयादि समयनिविषैं समानता परस्पर जाननी । बहुरि प्रथमादि समयवालोंतैं द्वितीयादि समयवालोंकै अनंत-गुणी विशुद्धता लिए होंय । ऐसैं अनिवृत्तिकरण‡ जानना । ऐसैं ए तीन

* समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु ।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं ॥ लब्धि ३६ ॥
तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ॥ लब्धि० ५१ ॥
करणं परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि,
असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि । धवला, १-९-८-४

‡ एगसमए वट्टंताणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा । धवला १-९-८-४ । एक्कम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति । ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ गो. जी. ५६

करण जाननें। तहाँ पहलें अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत अधःकरण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय, सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनंतवें भाग होय; ऐसैं च्यारि आवश्यक होंय—तहाँ पीछैं अपूर्वकरण होय। ताका काल अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग है। ताविषैं ए आवश्यक और होंय। एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकौं घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतैं स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागकौं घटावै, सो अनुभाग कांडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषैं क्रमतैं असंख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरनें योग्य करिए, सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसैं अपूर्वकरण भए पीछैं अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी संख्यातवें भाग है। तिसविषैं पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछैं अन्तरकरण❀ करै है।

❀ किमंतरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे ॥ जयध० अ० प० ६५३

अर्थ—अन्तरकरणका क्या स्वरूप है ? उत्तर—विवक्षितकर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके निषेकोंका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं।

अनिवृत्तिकरणके काल पीछैं उदय आवनें योग्य ऐसैं मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिकौं अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरणकरि पीछैं उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकौं उदय आवनेकौं अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातैं मिथ्यात्वका उदय न होनेतैं प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाहीं है। तातैं एक मिथ्यात्वकर्महीकौं उपशमाय उपशम-सम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछैं भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी ही होय जाय हैं।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसैं होय ?

ताका समाधान—जैसें किसी पुरुषकौं शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसैं ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछें अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषैं सन्देह भया। ऐसैं है कि ऐसैं है, अथवा 'न जानों कैसें है', अथवा तिस शिक्षाकौं झूठ जानि तिसतैं विपरीत भई तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वैं तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमैं शिक्षाका विचारतैं यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताकौं भूलि जैसैं पूर्वैं अन्यथा प्रतीत

थी तैसैं ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलैं तौ कीन्हीं, पीछैं न तौ किछू अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयतैं होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीतिका अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसैं अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसैं जीवकैं जिनदेवका तत्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकैं 'ऐसैं ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछैं पूर्वैं जैसें कहे तैसैं अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धानका अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपनैं दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषैं भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाहीं है। जातैं यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तौ अन्य विचारादिक कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरंग समयसम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाहीं। तातैं अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकौं निश्चय होय सकै नाहीं, केवलज्ञानविषैं भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषैं कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय, सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषैं पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। विशेष इतना–यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिकी सत्ता हो है सो तिनकौं उपशमाय प्रथमोपशम-सम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहूकै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। याकै करण न हो है। ऐसैं सादिमिथ्या-

दृष्टीकै मिथ्यात्व छूटैं दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकौं वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातैं ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसैं सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तौ मध्यम अन्तर्मुहूर्त्तमात्र उत्कृष्ट किंचित्ऊन अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तौ ग्यारवें गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत संसारमैं रुलै अर कोई नित्यनिगोदमैंसौं निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछैं अंतर्मुहूर्त्त-मैं केवलज्ञान पावै। ऐसैं जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तौ बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतैं बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तौ जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकौं भी ग्रहै है। निगोदादिविषैं भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाहीं।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमैं आवती नाहीं। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो है। तहाँ अनंतानुबंधीका तौ उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त-मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवल-ज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है—जैसैं काहूकौं सीख दई तिसकौं वह किछू सत्य किछू असत्य एकैं काल मानैं तैसैं तत्वनिका श्रद्धान

अश्रद्धान एकैं काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकौं तौ जिनदेव वा अन्य देव सर्वं ही वंदने योग्य हैं इत्यादि मिश्र श्रद्धानकौं मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं । यहु तौ प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिकका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तौ याकै तो देव कुदेव का किछू ठीक ही नाहीं। याकै तौ यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है ऐसैं जानना। ऐसैं सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया । यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है। याका प्रयोजन यह जानना, जो इन प्रकारनिकौं पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय, तौ ताकौं दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला बुरा तौ अपने परिणामनितैं हो है । औरनिकौं रुचिवान् देखिए, तो किछु उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातैं अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है । सर्वप्रकारके मिथ्यात्वभाव छोड़ि सम्यग्दृष्टी होना योग्य है । जातैं संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाहीं है । एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबंधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तौ बंध ही मिट जाय। स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागरकी रह जाय। अनुभाग थोरा ही रह जाय। शीघ्र ही मोक्षपदकौं पावै । बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहें अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं जैनमतवाले
मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामैं भया ऐसा
सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७।

आठवाँ अधिकार

उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिकौं मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उप-कार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करें हैं। तातैं इस शास्त्रविषैं भी उनहीका उपदेशके अनुसार उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातैं उपदेशकौं यथावत् न पहिचानें, तौ अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्तै, तातैं उपदेशका स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषैं उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषैं निरूपण किए होंय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिका जाविषैं निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेंका जाविषैं निरूपण होय,सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषैं निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

१–रत्नक० २,२। २–रत्नक० २, ३। ३–रत्नक० २, ४। ४–रत्नक० २, ५।

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषैं तौ संसारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महंतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होंय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो हैं। जातैं वे जीव सूक्ष्मनिरूपणकौं पहिचानैं नाहीं। लौकिक वार्तानिकौं जानैं। तहाँ तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषैं लौकिक प्रवृत्तिरूप निरूपण होय, ताकौं ते नीकैं समझि जांय। बहुरि लोकविषैं तौ राजादिककी कथानिविषैं पापका छुड़ावना वा पुण्यका पोषण है, तहाँ महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा सुनै हैं। परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापकौं छांड़ि धर्मविषैं लगावनेका प्रगट करै हैं। तातैं ते जीव कथानिके लालचकरि तौ तिसकौं बांचैं सुनैं, पीछैं पापकौं बुरा धर्मकौं भला जानि धर्मविषैं रुचिवंत हो हैं। ऐसैं तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेकौं यहु अनुयोगतैं 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषैं* किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान भया होय, पीछैं इस प्रथमानुयोगकौं बांचैं सुनैं, तौ तिनकौं यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसैं जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसैं यहु जानैं था। बहुरि पुराणनिविषैं जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकौं जानैं

* प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकार: प्रथमानुयोग:, जी. प्र. टी. गा. ३६१-२

था वा तिनके फलकों जानैं था। बहुरि पुराणनिविषैं तिन उपयोगनिकी प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया,सो निरूपण किया । सो ही तिस जाननेंका उदाहरण भया। ऐसैं ही अन्य जानना। यहाँ उदाहरणका अर्थ यहु जो जैसं जानैं था तैसैं ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातैं तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसैं कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषैं होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेंकरि सुभटपनविषैं अति उत्साहवान् हो है तैसैं धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषैं होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषैं अति उत्साहवान् हो है। ऐसैं यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषैं जीवनिकी वा कर्मनिकी विशेषता वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव धर्मविषैं उपयोग लगाया चाहैं,ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसैं कैसैं पाइए,इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषैं नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतैं विमुख होय धर्मविषैं लागै हैं । बहुरि ऐसे विचारविषैं उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है । बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषैं ही है, अन्यत्र नाहीं, ऐसैं महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकौं अभ्यासै हैं, तिनकौं यहु तिसका विशेष रूप भासै है।

जो जीवादिक तत्व आप जानैं हैं, तिनहीके विशेष करणानुयोगविषैं किए हैं। तहाँ केई विशेषण तौ यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिए व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनकौं जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगकौं अभ्यासै है। इस अभ्यासतैं तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसैं कोऊ यहु तौ जानैं था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके विशेष घनें जानें निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसें तत्वनिकौं जानैं था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्वनिके घनें विशेष जानैं तौ निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकानें उपयोगकौं लगाईए तौ रागादिककी वृद्धि होय, छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाहीं। तातैं ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषैं उपयोगकौं लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेंविषैं विरुद्ध है नाहीं। ऐसैं यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यकौं कारण सूत्र तिनका जाविषैं 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषैं गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषैं नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाईए है। जे जीव हित अहितकौं जानैं नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविषैं तत्पर

होय रहे हैं, तिनकौं जैसें वे पापकार्यकौं छोड़ि धर्मकार्यनिविषैं लागैं तैसें उपदेश दिया, ताकौं जानि धर्म आचरण करनेकौं सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्मका विधान सुनि आपतैं जैसा धर्म सधै तैसा धर्म-साधनविषैं लागै हैं । ऐसें साधनतैं कषाय मंद हो है । ताके फलतैं इतना तौ हो है, जो कुगतिविषैं दुख न पावैं अर सुगतिविषैं सुख पावैं । बहुरि ऐसे साधनतैं जिनमतका निमित्त बन्या रहै । तहाँ तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तौ होय जावै । बहुरि जीवतत्वके ज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकौं अभ्यासैं हैं, तिनकौं ए सर्व आचरण अपनें वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं । एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है । जातैं इनकै निमित्त नैमित्तिकपनों पाईए है । ऐसें जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकौं साधै हैं । तहाँ जेता अंशां वीतरागता हो है, ताकौं कार्यकारी जानैं हैं, जेता अंशां राग रहै है, ताकौं हेय जानैं हैं । सम्पूर्ण वीतरागताकौं परम-धर्म मानैं हैं । ऐसें चरणानुयोगका प्रयोजन है ।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है । द्रव्यानुयोगविषैं द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाईए है । जे जीवादिक द्रव्यनिकौं वा तत्वनिकौं पहिचानैं नाहीं, आपा परकौं भिन्न जानैं नाहीं, तिनकौं हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसें दिखाया जैसें याकै प्रतीति होय जाय । ताके अभ्यासतैं अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासैं,

तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावकौं पहिचाननेका अभ्यास राखैं तौ शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकौं अभ्यासैं। तिनकौं अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसें काहूनें किसी विद्याकौं सीख लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तौ भूलि जाय। तैसें याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तौ वह तत्वज्ञान रहै, न करै तौ भूलि जाय। अथवा संक्षेपपनैं तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टांतादिककरि स्पष्ट होय जाय तौ तिसविषैं शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतैं रागादि घटनेतैं शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसैं द्रव्यानुयोगका प्रयोजन जानना।

अनुयोगनिका व्याख्यान

अब इन अनुयोगनिविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोगनिविषैं जे मूलकथा हैं, ते तौ जैसी हैं तैसो ही निरूपिये हैं। अर तिनविषैं प्रसंग पाय व्याख्यान हो है, सो कोई तौ जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रंथकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसैं तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषैं इन्द्र आया, यहु कथा तौ सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तौ और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थ-कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै बचनालाप भया। तहाँ

उनके और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै हैं । बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखैं अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजनकौं पोषता निरूपै हैं। इत्यादि ऐसैं ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै । जैसैं धर्मपरीक्षाविषैं मूर्खनिकी कथा लिखी; सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकौं पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

यहाँ कोऊ कहै—अयथार्थ कहना तौ जैन शास्त्रनिविषैं सम्भवै नाहीं ?

ताका उत्तर—अन्यथा तौ वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै। जैसैं काहूकौं कह्या—तू ऐसैं कहियो, वानैं वे ही अक्षर तौ न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या। ताकौं मिथ्यावादी न कहिए, तैसैं जानना। जो जैसाका तैसा लिखनेंकी सम्प्रदाय होय तौ काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चिंतवन किया था, ताका वर्णन सब लिखैं ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिखैं तौ भाव भासै नाहीं। तातैं वैराग्यके ठिकानैं थोरा बहुत अपना विचारके अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहाँ प्रयोजन अन्यथा न भया तातैं याकौं अयथार्थ न कहिए, ऐसैं ही अन्यत्र जानना । बहुरि प्रथमानुयोगविषैं जाकी मुख्यता होय, ताकौं ही पोषै है। जैसैं काहूनें उपवास किया, ताका तौ फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातैं विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिस

कौं उपवासहीका फल निरूपण करैं, ऐसैं ही अन्यथा जाननें। बहुरि जैसें काहूनें शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्यधर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म उदयतैं वैसे कार्य भए तौ भी तिनकौं तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करैं। ऐसैं ही कोई पापकार्य किया, ताकौं तिसहीका तौ तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयतैं नीचगतिकौं प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताकौं तिसही पापका फल निरूपण करैं। इत्यादि ऐसैं ही जानना।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तौ योग्य नाहीं, ऐसे कथनकौं प्रमाण कैसैं कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषैं न लागैं वा पापतैं न डरैं, तिनका भला करनेंके अर्थि ऐस वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तौ तब होय, जब धर्मका फलकौं पापका फल बतावैं, पापका फलकौं धर्मका फल बतावैं। सो तौ है नाहीं। जैसैं दश पुरुष मिलि कोई कार्य करैं, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष भी किया कहिए तौ दोष नाहीं अथवा जाके पितादिकनें कोई कार्य किया होय, ताकौं एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिक किया कहिए तौ दोष नाहीं। तैसैं बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका फल भया, ताकौं उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तौ दोष नाहीं अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, याकौं एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तौ दोष नाहीं। उपदेशविषैं कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं

निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसें याकौं प्रमाण कीजिए है। याकौं तारतम्य न मानि लैंना। तारतम्य करणानुयोगविषैं निरूपण किया है, सो जानना। बहुरि प्रथमानुयोग विषैं उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसें जिन जीवनिकै शंका कांक्षादिक न भए, तिनकै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषैं शंका कांक्षा न किए ही तौ सम्यक्त न होय, सम्यक्त तौ तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तौ व्यवहारविषैं उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्तके कोई एक अङ्गविषैं सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसें उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अंग जानें सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो संशयादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय, परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जानें जैनधर्म अंगीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा गृही होय, ताकौं श्रावक कहिए। सो श्रावक तौ पंचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो है। परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याकौं श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषैं श्रेणिककौं श्रावकोत्तम कह्या, सो वह तौ असंयत था। परन्तु जैनी था, तातैं कह्या ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै वा कोई द्रव्यौं भी अतिचार लगावता होय, ताकौं मुनि कहिए। सो मुनि तौ षष्ठादि गुणस्थानवर्त्ती भए हो है। परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषैं मुनिनिकी संख्या कही, तहाँ सर्व ही भावलिंगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिंग धारनेंतें सबनिकौं मुनि कहे, ऐसेंही अन्यत्र

जानना। बहुरि प्रथमानुयोगविषैं कोई धर्मबुद्धितैं अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशंसा करिये है। जैसैं विष्णुकुमार मुनिनका उपसर्ग दूरि किया, सो धर्मानुरागतैं किया, परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था। जातैं ऐसा कार्य तौ गृहस्थधर्मविषैं सम्भवै अर गृहस्थ धर्मतैं मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्मकौं छोड़ि नीचाधर्म अंगीकार किया सो अयोग्य है। परन्तु वात्सल्य अंगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकौं ऊँचा धर्मछोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसैं गुवालिया मुनिकौं अग्नि करि तपाया, सो करुणातैं यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गकौं तौ दूरि करै, सहज अवस्थाविषैं जो शीतादिककी परीषह हो है तिस कौं दूर किए रति माननेका कारण होय, तामें उनकौं रति करनी नाहीं, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीतैं विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातैं याकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकौं धर्मपद्धति-विषैं जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसैं वज्रकरण राजा सिंहोदर राजाकौं नम्या नाहीं, मुद्रिकाविषैं प्रतिमा राखी। सो बड़े बड़े सम्यग्दृष्टी राजादिककौं नमैं, याका दोष नाहीं अर मुद्रिका विषैं प्रतिमा राखनेमैं अविनय होय। यथावत् विधितैं ऐसी प्रतिमा न होय, तातैं इस कार्यविषैं दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतैं मैं औरकौं नमों नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातैं वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकौं ऐसे कार्य करनें युक्त नाहीं। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थ चैत्या-

लय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसैं किए तौ निःकांक्षित गुणका अभाव होय, निदानबंध-नामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरगविषै है, तातैं पाप-हीका बंध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तौ पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिकौं लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। ऐसैं ही प्रथमानुयोगविषें अन्य कथन भी होय, ताकौं यथासम्भव जानि भ्रम-रूप न होना।

अब करणानुयोगविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है— जैसैं केवलज्ञानकरि जान्या तैसैं करणानुयोगविषै व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तौ बहुत जान्या परन्तु जीवकौं कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषैं हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसैं वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषैं उनका किछू भाव भासै, तैसैं संकोचन करि निरूपण करिए है।

यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनंतस्वरूप लियें वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषैं बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषैं अनेक रचना

हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है । बहुरि प्रमाणके अनंत भेद तहाँ सख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोगविषैं यद्यपि वस्तुके क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थकौं हीनाधिक ज्ञान होनेंके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषैं जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं,तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकौं एक जीवके निरूपै हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लियें व्याख्यान जानना। जातैं व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाहीं। बहुरि कहीं निश्चयवर्णन भी पाइए है । जैसैं जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतनें ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लैंना। बहुरि करणानुयोगविषैं कथन हैं, ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होंय, बहुरि जे न होंय तिनकौं आज्ञा प्रमाणकरि ही माननें। जैसैं जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तौ प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए ते आज्ञाहीतैं प्रमाण हो हैं। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोगविषैं छद्मस्थनिकी प्रवृत्तिके अनुसार वर्णन किया नाहीं। केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसैं केई जीव तौ द्रव्यादिकका विचार करै हैं वा व्रतादिक पालै हैं, परन्तु तिनकै अंतरंग सम्यक्त्व

चारित्रशक्ति नाहीं, तातैं उनकौं मिथ्यादृष्टि अव्रती कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनि-विषैं प्रवर्त्तैं हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं, परन्तु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातैं उनकौं सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति थोरी है, तौ वाकौं मंदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ थोरी है अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति घनी है, तौ वाकों तीव्रकषायी कहिए है। जैसैं व्यंतरादिक देव कषाय-नितैं नगरनाशादि कार्य करैं, तौ भी तिनकै थोरी कषायशक्तितैं पीत-लेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रयादि जीव कषायकार्य करते दीखैं नाहीं, तिनकै बहुत कषायशक्तितैं कृष्णादि लेश्या कहा। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तैं, तिनकै बहुत कषायशक्तितैं असंयम कह्या अर पंचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्त्तैं, ताकै मंदकषाय शक्तितैं देशसंयम कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तौ भी कर्माकर्षण शक्तिकी अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तौ भी शक्तिकी हीनतातैं स्तोक योग कह्या। जैसैं केवल गमनादिक्रियारहित भये, तहाँ भी ताकैं योग बहुत कह्या। वेंद्रियादिक जीव गमनादि करैं हैं, तौ भी तिनकै योग स्तोक कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जाकी व्यक्तता तौ किछू न भासै, तौ भी सूक्ष्मशक्तिके सद्भावतैं ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसैं मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाहीं, तौ भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसंज्ञा कही।

अहमिंद्रनिकै दुःखका कारण व्यक्त नाहीं, तौ भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुखका कारण व्यक्त नाहीं,तौ भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसें पाइए तैसें गुणस्थानविषैं निरूपण करै है, वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोगकै अनुसारि आप उद्यम करै, तौ होय सकै नाहीं। करणानुयोगविषैं तौ यथार्थ पदार्थ जनावनेंका मुख्यप्रयोजन है। आचरण करावनेंकी मुख्यता नाहीं। तातैं यहु तौ चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्त्तै,तिसतैं जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसें आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै, तौ कैसें होय? आप तौ तत्वादिकका निश्चय करनेंका उद्यम करै, तातैं स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसें अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्त्त विषैं ग्यारवां गुणस्थानसौं पड़ि क्रमतैं मिथ्यादृष्टी होय बहुरि चढ़िकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसें सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाहीं, तातैं करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तौ ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसैं भला होय, तैसें करै। बहुरि करणानुयोगविषैं भी कहीं उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकौं सर्वथा तैसें ही न मानना। जैसें हिंसादिकका उपायकौं कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास कौं कुश्रुतज्ञान कह्या,बुरा दीसै भला न दीसै ताकौं विभंगज्ञान कह्या सो इनकौं छोड़नेके अर्थि उपदेशकरि ऐसें कह्या। तारतम्यतैं मिथ्या-

दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान हैं। ऐसें ही अन्यत्र जानना । बहुरि कहीं स्थूल कथन किया होय, ताकौं तारतम्यरूप न जानना। जैसें व्यासतें तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपनैं किछू अधिक तिगुणी हो है ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताकौं सर्व प्रकार न जानना। जैसें मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेकौं पापजीव कहे, असंयतादिक गुणस्थानवालेकौं पुण्यजीव कहे सो मुख्यपनें ऐसें कहे, तारतम्यतैं दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है, ते यथासम्भव जानने। ऐसें ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने । ऐसें करणानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषैं किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोगविषैं जैसें जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तौ निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, सोई है । ताके साधनादिक उपचारतें धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिकका याविषैं निरूपण करिए है। जातैं निश्चय धर्मविषैं तौ किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाहीं, तातैं इस जीवकौं धर्मविरोधी कार्यनिकौं छुड़ावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषैं है । सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है । एक तौ व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका

ज्ञान नाहीं है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मकौं सन्मुख भए तिनकौं व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तकौं सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनकौं निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असंज्ञी जीव तौ उपदेश ग्रहणें योग्य नाहीं, तिनका तौ उपकार इतना ही किया और जीवनिकौं तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलतातैं निश्चयमोक्षमार्गकौं प्राप्त होय सकै नाहीं, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनकौं व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुड़ाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषें लगाया। जेता दुःख मिट्या, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तौ पापवासना ही रहै अर कुगतिविषें जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाहीं। तातैं परम्पराय दुःखहीकौं पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषैं जाय, तहाँ धर्मके निमित्त पाईए, तातैं परम्पराय सुखकौं पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय, तौ मोक्षमार्गकौं भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतैं छुड़ाय पुण्यकार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गकौं प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकौं निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषें प्रवर्ताए। श्रीगुरु तौ सर्वका ऐसा ही उपकार करें। परन्तु जिन जीव-निका ऐसा उपकार न बनें, तौ श्रीगुरु कहा करैं। जैसा बन्या तैसा ही

उपकार किया। तातैं दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहाँ व्यवहार उपदेशविषैं तो बाह्य क्रियानिहीकीं प्रधानता है। तिनका उपदेशतैं जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषैं प्रवर्त्तैं। तहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मंदकषायी होय जाय। सो मुख्य-पनें तौ ऐसें है। बहुरि काहूकै न होय, तौ मति होहु। श्रीगुरु तौ परिणाम सुधारनेंके अर्थि बाह्यक्रियानिकौं उपदेशैं हैं। बहुरि निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेशविषैं परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतैं तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया तौ सुधरै ही सुधरै। तातैं श्रीगुरु परिणाम सुधारनेकौं मुख्य उपदेशैं हैं। ऐसैं दोय प्रकार उपदेशविषैं व्यवहारही का उपदेश होय। तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु दया धर्मकौं ही मानना औरकों न मानना। बहुरि जीवादिक तत्व-निका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शंकादि पच्चीस दोष न लगावनें, निःशंकितादिक अंग वा संवेगादिक गुण पालनें, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यंजनादि अंगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिंसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अंगनिकौं पालनें इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवकौं विशेष धर्मका साधन न होता जानि, एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसैं भीलकौं कागलाका मांस छुड़ाया, गुवालियाकौं नमस्कार मन्त्र जपने

का उपदेश दिया, गृहस्थकौं चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जैसा जीव होय, ताकौं तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है, सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषैं रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतैं अरहंतादि बिना अन्य देवादिक झूंठ भासैं तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि संशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसैं ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेकौं कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातैं तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततैं होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मंदरागतैं श्रावकमुनिकै व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मंदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसैं यथार्थ कोई आखड़ी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो हैं वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषैं सांचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसैं दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषैं जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषाय रूप कार्य करनेंका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटैं तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना । जैसें जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनकौं पूजा प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगैं शोभादिक नृत्य गानादिकरनेंका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातैं इनिविषैं परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषैं परम्परा कषायपोषण हो है, तातैं पापकार्यनितैं छुड़ाय इन कार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानैं, तितना पापकार्य छुड़ाय सम्यक्त वा अणुव्रतादि पालनेका तिनकौं उपदेश दीजिए है । बहुरि जिन जीवनिके सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनकौं पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुड़ाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है । बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनकौं दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाहीं। तातैं तिनकौं किछू उपदेश ही नाहीं। ऐसा क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं कषायी जीवनिकौं कषाय उपजायकरि भी पापकौं छुड़ाईए है अर धर्मविषैं लगाईए है । जैसें पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाय तिनिकौं भय कषाय उपजाय पापकार्य

छुड़ाइए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकौं लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागतैं पाप करै है, धर्म पराङ्मुख रहै है, तातैं इन्द्रियविषयनिकों मरण क्लेशादिकके कारण दिखावनेकरि तिनविषैं अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिककौं अशुचि दिखावनेंकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिककौं धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिककौं मरण क्लेशादिकका कारण दिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपायतैं विषयादिविषैं तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषैं प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-करण पूजा दान शीलादिकतैं इस लोकविषैं दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है,पुत्र धनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसैं निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। ऐसैं ही अन्य उदाहरण जाननं।

यहाँ प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा?

ताका समाधान—जैसैं रोग तौ शीतांग भी है अर ज्वर भी है। परन्तु कोईकै शीतांगतैं मरण होता जानें, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै। ज्वर भए पीछें वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछें ज्वरके मेटनेका उपाय करै। तैसैं कषाय तौ सर्व ही हेयहैं,परन्तु कोई जीवनिकैं कषायनितैं पापकार्य होता जानैं, तहाँ श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यकौं कारणभूत कषाय होनेका उपाय करैं, पीछें वाकै सांची धर्मबुद्धि जानें, तब पीछें तिस कषाय मेटनेका उपाय करैं, ऐसा

प्रयोजन जानना। बहुरि चरणानुयोगविषैं जैसें जीव पापकौं छोड़ि धर्मविषैं लागैं, तैसैं अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कहीं अन्यमतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसें सूक्तमुक्तावली विषैं लक्ष्मीकौं कमलवासिनी कही वा समुद्रविषैं विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसैं ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ कोई उदाहरणादि झूठे भी हैं, परन्तु साँचा प्रयोजनकौं पोषैं हैं। तातैं दोष नाहीं।

यहाँ काऊ कहै कि झूंठका तौ दोष लागै। ताका समाधान – जो झूंठ भी है अर सांचा प्रयोजनकौं पोषै तौ वाको झूंठ न कहिए। बहुरि सांच भी है अर झूंठा प्रयोजनकौं पोषै तौ वह झूंठा ही है। अलंकारयुक्त नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूंठ सांच नाहीं, प्रयोजन अपेक्षा झूंठ सांच है। जैसें तुच्छशोभासहित नगरीकौं इन्द्रपुरीके समान कहिए है, सो झूंठ है। परन्तु शोभाका प्रयोजनकौं पोषै हैं, तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि "इस नगरीविषैं छत्रहीकै दंड है अन्यत्र नाहीं" ऐसा कह्या, सो झूंठ है। अन्यत्र भी दंड देना पाईए है, परन्तु तहाँ अन्यायवान् थोरे हैं, न्यायवानकौं दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनकौं पोषै है, तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि बृहस्पतिका नाम 'सुर-गुरु' लिखैं वा मंगलका नाम 'कुज' लिखैं, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूंठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थकौं प्रगट करै है, तातैं झूंठ नाहीं। ऐसैं अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिए है सो झूंठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका न

श्रद्धान करावना है नाहीं, श्रद्धान तौ प्रयोजनका करावना है। सो प्रयोजन सांचा है, तातैं दोष नाहीं है। बहुरि चरणानुयोगविषैं छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातैं तिसका आचरण न होय सकै। यहाँ आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसें अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि कार्यविषैं त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है—जिनवानी विषैं यहां त्रस कहे हैं। परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाहीं अर लोकविषैं जाका नाम त्रसघात है, ताकौं करै नाहीं। तातैं तिस अपेक्षा वाक त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषैं गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाहीं। जातैं त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषैं ही है। सो मुनि जिनवानीतैं जानै हैं वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै हैं परन्तु याकै प्रमादतैं स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाहीं। बहुरि लोकविषैं भूमि खोदना अप्रासुक जलतैं क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिके पीड़नेका नाम त्रस हिंसा है, ताकौं न करैं। तातैं मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसें ही अनृत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवां गुणस्थान पर्यन्त कह्या। अदत्त कर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवां गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरंगपरिग्रह

दशवाँ गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है। परन्तु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषैं जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै हैं नाहीं। तातैं अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसें मुनिके मूलगुणनिविषें पचइन्द्रियनिके विषयका त्याग कह्या सो जानना तौ इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अर विषयनिविषैं रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तौ यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपनें विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातें याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसें काहूनै त्रसहिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषैं वा लोकविषैं जाकौं त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादि जे त्रस देखिए हैं तिनिकी हिंसाका त्याग बनैं ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है; वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है; कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसैं अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषैं तौ केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमें सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसें कह्या?

ताका उत्तर—अविरत भी योगकषायविषैं गर्भित थे; परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरत कह्या है। तातैं तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं, परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावतैं मनअविरतिका अभाव कह्या, ऐसा जानना। बहुरि चरणानुयोगविषैं व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसें सम्यक्त्वीकौं पात्र कह्या, मिथ्यातीकौं अपात्र कह्या। सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तौ सम्यग्दृष्टि, जाकै तिनका श्रद्धान नाहीं सो मिथ्यात्वी जानना। जातैं दान देना चरणानुयोगविषैं कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करनें। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं वो ही जीव ग्यारवें गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्त्तमैं पहिलें गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसें निर्णय करि सकै? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं मुनि संघविषैं द्रव्यलिंगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं। सो प्रथम तौ तिनका ठीक होना कठिन है जातैं बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीकौं कोई चिन्हकरि ठीक पड़ै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै संशय होय, याकी भक्ति क्यों न करी। ऐसैं वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब संघविषै विरोध उपजै। तातैं यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तौ द्रव्यलिंगीकौं आपतैं हीनगुण-युक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसें करै?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है । तातें जैसें कोई धनवान् होय परन्तु जो कुलविषैं बड़ा होय ताकौं कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका सत्कार करै, तैसें आप सम्यक्तगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषैं प्रधान होय ताकौं व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है,ऐसा जानना । बहुरि ऐसें ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताकौं तपस्वी कहिए है । यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है, सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि चरणानुयोगविषैं बाह्यतपकी प्रधानता है । तातें तिसहीकौं तपस्वी कहिए है । याही प्रकार अन्य नामादिक जाननें । ऐसें ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान जानना ।

अब द्रव्यानुयोगविषैं कहिए है—

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसें होय, तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है । जातें या विषैं यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है । तहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है, तथापि तिनविषैं भेदकल्पनाकरि व्यवहारतैं द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है । बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है । बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेंकौं हेतु दृष्टांतादिक दीजिए है । ऐसें तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेंका उपदेश दीजिए है । बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान् करावनेके अर्थ जीवादि तत्वनिका विशेष युक्ति दृष्टांतादिकरि निरूपण कीजिए

है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसें होय तैसें जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसें होय तैसें आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपनें ज्ञान वैराग्यकौं कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषैं निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहाँ व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायकौं न करैं हैं अर बाह्य क्रियाकांडविषैं मग्न हैं, तिनकौ तहांतैं उदासकरि आत्मानुभवनादिविषैं लगावनेकौं व्रत शील संयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनकौं छोड़ि पापविषैं लगना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषैं लगावनेका नाहीं है। शुद्धोपयोगविषैं लगावनेकौं शुभोपयोगका निषेध कीजिए है।

यहाँ कोऊ कहै कि—अध्यात्म-शास्त्रनिविषैं पुण्य पाप समान कहे हैं, तातैं शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तौ पुण्यविषैं लगो वा पापविषैं लगो।

ताका उत्तर—जैसें शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे परन्तु चांडालतैं जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तैसें बंधकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापतैं पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मंदकषायरूप है। तातैं पुण्य छोड़ि पापविषैं लगना युक्त नाहीं ऐसा जानना। बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषैं ही मग्न हैं, तिनकौं आत्मश्रद्धानादि करावनेकौं "देहविषैं देव है, देहुराविषैं नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिकतैं

आपकौं सुखी करना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाहीं है। ऐसैं ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय, ताकौं जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना—जे केवल व्यवहारविषैं ही मग्न हैं, तिनकौं निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारकौं हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषैं सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिककौं बंधका कारण न कह्या, निर्ज्जराका कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टीकी महिमा दिखावनेकौं जे तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिककौं होनेसंतें भी श्रद्धानशक्तिके बलतैं मन्दबंध होने लगा; ताकौं तौ गिन्या नाहीं अर तिसही बलतैं निर्ज्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारतैं भोगनिकौं भी बंधका कारण न कह्या; निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्ज्जराके कारण होंय, तौ तिसकौं छोड़ि सम्यग्दृष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेकौं करै ? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलतैं भोग भी अपने गुणकौं न करि सकै हैं। या प्रकार और भी कथन होंय, तौ ताका यथार्थपना जानि लेना। बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातैं छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषैं तौ बाह्य-क्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषैं आत्म-परिणामनिकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए हैं:—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसैं तीन भेद कहे। तहां धर्मानुरागरूप

परिणाम सो शुभोपयोग, पापानुराग वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसें कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषें कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषें संक्लेश विशुद्ध परिणाम निरूपण किया है, सो विवक्षा यहाँ नाहीं है। करणानुयोगविषें तो रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशतें स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोग साधन कैसें करै। अर द्रव्यानुयोगविषें शुद्धोपयोग करनेही का मुख्य उपदेश है, तातें यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषें बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिकौं छुड़ाय आत्मानुभवनादि कार्यनिविषें प्रवर्त्तै, तिस काल ताकौं शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडें तिस अपेक्षा याकौं शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसें ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानादिविषें सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषें पाईए है। ऐसें ही अन्यत्र जाननें। तातें द्रव्यानुयोगके कथनकी करणानुयोगतें विधि मिलाया चाहै सो कहीं तो मिलै, कहीं न मिलै। जैसे यथाख्यातचारित्र भए तौ दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषें द्रव्यानुयोग अपेक्षा तौ कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतें शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसें ही अन्य कथन जानि लेंना। बहुरि द्रव्यानुयोगविष

परमतविषैं कहे तत्वादिक तिनकौं असत्य दिखवानेके अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी । तिनकौं असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना । ऐसैं ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान है । या प्रकार च्यारौं अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या । सो कोई ग्रन्थविषैं एक अनुयोगकी, कोई विषैं दोयकी, कोई विषैं तीन की, कोई विषैं च्यारोंकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है । सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना ।

अनुयोगोंमें पद्धति विशेष

अब इन अनुयोगनिविषैं कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाईए है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोगविषैं तौ अलंकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं अलंकारादिकतैं मन रंजायमान होय, सूधी बात कहैं ऐसा उपयोग लागै नाहीं जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनतैं उपयोग लागै । बहुरि परोक्ष बातकौं किछू अधिकताकरि निरूपण करिए, तो वाका स्वरूप नीके भासै । बहुरि करणानुयोगविषैं गणित आदि शास्त्रनिको पद्धति मुख्य है जातैं तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है । सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायतैं ताका सुगम जानपना हो है । बहुरि चरणानुयोगविषैं सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं यहाँ आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह

आचरण करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषें न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषें निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसें इन अनुयोगनिविषें पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धति लिए व्याख्यान इनविषें पाईए है।

यहाँ कोऊ कहै—अलंकार गणित नीति न्यायका तौ ज्ञान पंडित-निकै होय, तुच्छबुद्धि समझैं नाहीं तातें सूधा कथन क्यों न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपनें पंडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलंकारादि आम्नाय लिए कथन होय तौ तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनकौं पंडित समझाय दें। अर जे न समझि सकें, तौ तिनकौं मुखतें सूधा ही कथन कहैं। परन्तु ग्रन्थनिमैं सूधा कथन लिखें विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषें विशेष न प्रवर्त्तै। तातें अलंकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसें इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषें घने शास्त्र तौ इन च्यारौं अनुयोगनिविषें गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष वा मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषें पाईए हैं। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातें व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै—भाषारूप सूधा निरूपण करते तौ व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तौ अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश

विषैं और और है। सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं ऐसी रचना कैसैं करैं। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारतैं जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिकतैं उपकार भी बनैं। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषैं अनुरक्त हैं ते वैद्यकादिक चमत्कारतैं जैनी होय पीछैं साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करैं। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहाँ इतना है—ए भी जिनशास्त्र हैं, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषैं बहुत लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धितैं इनिका सहज जानना होय अर इनिकौं जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानैं, तौ इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। तातैं इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ गणधरादिक इनकी रचना काहेकौं करी?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी जैसैं बहुत धनवान् कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै तौ धन तौ तहाँ लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेतैं करै। तैसैं बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषैं लागै तौ बुद्धि

तौ तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसें करै ? बहुरि जैसें मंदरागी तौ पुराणादिविषैं शृङ्गारादि निरूपण करै तौ भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसें शृङ्गारादि निरूपै तौ पाप ही बाँधै। तैसें मंदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपैं तौ भी विकारी न होंय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषैं लगि जाय, तौ रागादिक बधाय पापकर्मकौं बाँधै, ऐसें जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अनुयोगोमें दोष-कल्पनाओंका प्रतिषेध

अब इनविषैं दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण करिए है—

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषैं शृङ्गारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करैं, तिनके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय, तातैं ऐसा कथन न करना था। ऐसा कथन सुनना नाहीं। ताकौं कहिए है—कथा कहनी होय, तब तौ सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलङ्कारादिकरि बधाय कथन करैं हैं, सो पंडितनिके बचन युक्ति लिए ही निकसैं।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेतैं सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेकौं किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनकौं बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाहीं। बहुरि पहलैं तौ भोग संग्रामादि ऐसें किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय।

सो जैसैं कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तौ प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है। अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै, तौ चैत्यालय बनावनेवालेका तौ दोष नाहीं। तैसैं श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृङ्गारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तौ है नाहीं, धर्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तौ श्रीगुरुका कहा दोष है?

बहुरि जो तू कहै—जो रागादिकका निमित्त होय, सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषैं लागै नाहीं। तातैं जैसैं बालककौं पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसैं सरागीकौं भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषैं रुचि कराईए है।

बहुरि तू कहेगा—ऐसैं है तौ विरागी पुरुषनिकौं तौ ऐसे ग्रंथनिका अभ्यास करना युक्त नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—जिनकै अन्तरंगविषैं रागभाव नाहीं, तिनके शृंगारादि कथन सुनें रागादि उपजै ही नाहीं। यहु जानें ऐसैं ही यहाँ कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुनें रागादि होय आवै, तिनकौं तौ वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—जहाँ धर्महीका तौ प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्मकौं पोषैं ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषैं प्रसंग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताकौं सुने भी जो बहुत रागी भया तौ वह अन्यत्र कहाँ

विरागी होसा, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करैगा जहाँ बहुत रागादि होय। तातैं वाकै भी पुराण सुने थोरा बहुत धर्म-बुद्धि होय तौ होय। और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषैं अन्य जीवनिकी कहानी है, वातैं अपना कहा प्रयोजन सधै है?

ताकौं कहिए है—जैसैं कामीपुरुषनिकी कथा सुन आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसैं धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुनैं आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—करणानुयोगविषैं गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनकौं जानि लिया 'यहु ऐसैं है' 'यहु ऐसैं है', यामें अपना कार्य कहा सिद्ध भया? कै तौ भक्ति करिए, कै व्रत दानादिकरिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनतैं अपना भला होय।

ताकौं कहिए है—परमेश्वर तौ वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाहीं। भक्ति करतैं मंदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषैं तिसतैं भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तौ कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं, अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होंय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातैं यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषैं उपयोग

थम्भै नाहीं, अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय, तौ तिस विचारविषैं उपयोगकौं लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है। अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातैं यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार भेद जानैं, तिनविषैं रागादिकरनेका प्रयोजन नाहीं, तातैं रागादि बधै नाहीं। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ तहाँ प्रगटै है, तातैं रागादि मिटावनेकौं कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तौ कथन ऐसा ही है, परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे. तिनमें कहा सिद्धि है ?

ताका उत्तर—तिनकौं जानें किछू तिनविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातैं पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है—ऐसैं है। तौ जिसतैं किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा पाषाणादिककौं भी जानैं। तहाँ इष्ट अनिष्टपनौं न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूकौं जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय, तौ अंतरंग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँतैं उपयोगकौं छुड़ाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिककौं जानैं है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटै ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषैं इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय, तौ रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषैं इस लोकसम्बन्धी कार्य किछू नाहीं तातैं रागादिकका कारण नाहीं। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहाँ राग होय, तौ

परलोकसम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यकौं जानैं तब पाप छोड़ि पुण्यविषैं प्रवर्त्तै, इतना ही नफ़ा होय। बहुरि द्वीपादिकके जानैं यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटैं उपयोगकी निर्मलता होय, तातैं यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषैं कठिनता घनी, तातैं ताका अभ्यासविषैं खेद होय।

ताकौं कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमैं आवै, तहाँ उपयोग उलझै नाहीं अर जानी वस्तुकौं बारम्बार जाननेंका उत्साह होय नाहीं, तब पापकार्यनिविषैं उपयोग लगि जाय। तातैं अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानैं, ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाहीं, ताका कैसें करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमैं तौ धर्म है नाहीं। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहाँ तौ पाप ही होय। तातैं धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

बहुरि केई जीव ऐसें कहै हैं—चरणानुयोगविषैं बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितैं किछू सिद्धि नाहीं। अपने परिणाम निर्मल चाहिएं, बाह्य चाहो जैसें प्रवर्त्तो। तातैं इस उपदेशतैं पराङ्मुख रहै हैं। तिनकौं कहिए हैं—आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातैं छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो हैं। कदाचित् बिना परिणाम हू कोई क्रिया हो है, सो परवशतैं हो है। अपनें वशतैं उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस

रूप नाहीं है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थनिका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटनेंके अर्थं बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषैं कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटैं बाह्य ऐसें अनुक्रमतैं श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसें श्रावक मुनिधर्म अंगीकार किए पंचम षष्ठमआदि गुणस्थानविषैं रागादि घटावनेंरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोगविषैं किया। बहुरि जो बाह्य संयमतैं किछू सिद्धि न होय, तौ सर्वार्थसिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तौ चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पंचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा ? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोड़ि काहेकौं संयम ग्रहैं। तातैं यहु नियम है—बाह्य संयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकैं हैं। तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेंकौं चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषैं व्रत संयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिककौं निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वछन्द होय पुण्य छोड़ि पापविषैं प्रवर्त्तैंगे, तातैं इनिका वांचना सुनना युक्त नाहीं। ताकौं कहिए है—जैसैं गर्दभ मिश्री खाय मरै, तौ मनुष्य तौ मिश्री खाना न छोड़ै। तैसैं विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वछन्द होय, तौ विवेकी तौ अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाकौं स्वछन्द होता जानै, ताकौं जैसैं वह स्वच्छन्द न होय, तैसैं उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषैं भी

स्वच्छन्द होनेंका जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातै जो नीके तिनकौं सुनै, सो तौ स्वछन्द होता नाहीं। अर एक बात सुनि अपनें अभिप्रायतें कोऊ स्वच्छन्द होय, तौ ग्रन्थका तौ दोष है नाहीं, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्म-शास्त्रका वाँचना सुनना निषेधिए तौ मोक्षमार्गका मूल उपदेश तौ तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसैं मेघ-वर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़, तौ तिसकी मुख्यताकरि मेघका तौ निषेध न करना। तैसैं सभाविषैं अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्त्तै, तौ तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनि-का तौ निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितें कोऊ स्वच्छन्द होय सो तौ पहलें भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पड़ै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामैं घनें जीवनिका घना बुरा होय। तातैं अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहैं है—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊँची दशाकौं प्राप्त होय, तिनकौं कार्यकारी है, नीचली दशावालोंको तौ व्रत संयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है।

ताकौं कहिए है—जिनमतविषैं तौ यहु परिपाटी है,जो पहलैं सम्यक्त होय पीछैं व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो

श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किएं होय। तातैं पहलैं द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टी होय, पीछैं चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय । ऐसें मुख्यपनें तौ नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपनें जाकैं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिए, ताकौं कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। जातें ऊँची दशावालौंकौं अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालौंकौं तहाँतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि जो कहौगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालौंकौं भासै नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानैं अर यहाँ मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं । अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेकौं पोषिए, सो तौ जिनमार्गका द्वेषी होना है । बहुरि जो कहौगे, अबार काल निकृष्ट है, तातें उत्कृष्ट अध्यात्मका उपदेशकी मुख्यता न करनी। ताकौं कहिए है–अबार काल साक्षात् मोक्ष होनेकी अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिकका होना अबार मनै नाहीं। तातें आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुड़विषैं (मोक्षपाहुड़में) कह्या है:—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए ।
लोयंते देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ।। ७७ ।।

याका अर्थ– अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकौं ध्यायकरि

सुरलोकविषैं प्राप्त हो हैं, वा लौकान्तिकविषै देवपणों पावैं हैं। तहाँ तैं च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि* तातैं इस कालविषैं भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए। बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषैं अध्यात्मशास्त्र हैं, तहाँ स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया, सो तौ कार्यकारी भी घना अर समझिमैं भी शीघ्र आवै। परन्तु द्रव्य-गुणपर्यायादिकका वा अन्यमतके कहे तत्वादिकका निराकरणकरि कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतैं विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमैं आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनकौं कहिए है—

सामान्य जाननेतैं विशेष जानना बलवान् है। ज्यों-ज्यों विशेष जानैं त्यौं-त्यौं वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ़ होय, रागादि घटैं तातैं तिस अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसैं च्यारौं अनुयोगनिविषैं दोषकल्पनाकरि अभ्यासतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र हैं, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जात इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाहीं। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानें जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाहीं। तातैं परम्परा कार्यकारी जानि इन का भी अभ्यास करना। परन्तु इनहीविषैं फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना। बहुरि

* यहाँ 'बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति में छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे मगर लिख नहीं सके।

वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतैं मोक्षमार्गविषैं किछू प्रयोजन ही नाहीं। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतैं विनाखेद इनिका अभ्यास होय जाय तौ उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तौ मति होहु, बिगार किछू नाहीं। ऐसैं जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अनुयोगोंमें सापेक्ष उपदेश

अब शास्त्रनिविषैं अपेक्षादिककौं न जानें परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसैं कथन किया होय, तहाँ तैसैं जानि लेंना। और अनुयोगका कथनकों और अनुयोगका कथनतैं अन्यथा जानि सन्देह न करना। जैसैं कहीं तौ निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कहीं भयका आठवाँ गुण स्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या। तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपनैं सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषैं शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषैं तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसें ही अन्यत्र जानना। पूर्वैं अनुयोगनिका उपदेशविधानविषें केई उदाहरण कहे हैं, ते जाननें अथवा अपनी बुद्धितें समझि लेनें। बहुरि एक ही अनुयोगविषैं विविक्षाके वशतैं अनेकरूप कथन करिए है। जैसैं करणानुयोग

विषैं प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमादके भेद कहे । बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं यहाँ प्रमादनिविषैं तौ जे शुभ अशुभ भावनिका अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है । सो सप्तम गुणस्थानविषैं ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातैं तिनिका तहाँ अभाव कह्या । बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है । बहुरि चरणानुयोगविष चोरी परस्त्री आदि सप्तव्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषैं कह्या, बहुरि तहाँ ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमाविषैं कह्या । तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं सप्तव्यसनविषैं तौ चोरी आदि कार्य ऐसैं ग्रहे हैं, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषैं अतिनिन्दा होय । बहुरि व्रतनिविषैं चोरी आदि त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिंद्य होय, ऐसा अर्थ जानना । ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतैं एक ही भावकौं अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है । जैसैं कहीं तौ महाव्रतादिक चारित्रके भेद कहे, कहीं महाव्रतादि होतैं भी द्रव्यलिंगीको असंयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तौ चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असंयमी ही है। बहुरि जैसैं पंच मिथ्यात्वनिविषैं भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषैं भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना । जातैं विनय करनें योग्य नाहीं तिनका भी विनय करि धर्म मानना, सो तौ विनय मिथ्यात्व है अर धर्मपद्धतिकरि जे

विनय करने योग्य हैं, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसें कहीं तौ अभिमानकी निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं मानकषायतैं आपकों ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तौ निंद्य ही है अर निर्लोभपनातैं दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशंसा योग्य है। बहुरि जैसें कहीं चतुराई की निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं मायाकषायतैं काहूका ठिगनेके अर्थं चतुराई कीजिए, सो तौ निंद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्यं करनेविषैं जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि एक ही भावकी कहीं तौ उसतैं उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कहीं तिसतैं हीनभावकी अपेक्षाकरि प्रशंसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना। जैसें किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तौ तिसतैं ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशंसा करी होय, तहाँ तिसतैं नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसें ही काहू जीवकी ऊँचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशंसा करी होय, तौ सर्वथा प्रशंसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लैना, ऐसें ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिएं किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थं समझना। बहुरि शास्त्रविषैं एक ही शब्दका कहीं तौ कोई अर्थं हो है, कहीं कोई अर्थं हो है, तहां प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थं जानना। जैसें

मोक्षमार्गविषैं सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषैं दर्शन शब्दका अर्थसामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषैं दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसैं सूक्ष्म बादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषैं छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषैं इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषैं ऋद्धि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाहीं ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषैं महीनताका नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। करणानुयोगके कथनविषैं पुद्गल-स्कंधके निमित्ततैं रुकै नाहीं ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है।

बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषैं तौ इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषैं स्पष्ट व्यवहार प्रतिभासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषैं आपविषैं अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसैं मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभाव न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावतैं अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसैं उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तौ अन्य निमित्ततैं मरण होय, ताका नाम उदीरणा है। अर दश करणनिका कथनविषैं उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या। तहाँ तौ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषैं दीजिए, ताका नाम उदी-

रणा है। ऐसें ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना । बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़ें अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै, तैसा अर्थ जानना । जैसें 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषें कर्मशत्रुकौं जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दकौं पूर्वं जोड़ें जो अर्थ होय, सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसें 'प्राण धारैं' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहाँ तौ इन्द्रियादि प्राणधारै, सो जीव है । बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय, तहाँ चैतन्यप्राणकौं धारै, सो जीव है। बहुरि जैसें समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहाँ आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थनिका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र कालका नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है । ऐसें अनेक अर्थनिविषें जैसा जहाँ सम्भवै, तैसा तहाँ अर्थ जानि लैंना। बहुरि कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कहीं रूढ़ि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहाँ रूढ़ि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना । वाका रूढ़िवाद अर्थ होय, सो ही ग्रहण करना। जैसें सम्यक्तादिककौं धर्म कह्या तहाँ तौ यहु जीवोंकौं उत्तमस्थानविषें धारै है, तातें याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्य-का नाम धर्म कह्या तहाँ रूढ़ि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जो शब्दका अर्थ होता होइ सो तो न ग्रहण करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना।

जैसें कहीं किसीका अभाव कह्या होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तौ तहाँ सर्वथा अभाव न ग्रहण करना । किंचित् सद्भावकौं न गिणि अभाव कह्या है,ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसें अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तौ यहु—'कषायका निषेध' सो तौ अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय हैं तातें नोषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसें ही अयन्त्र जानना। बहुरि जैसें कहीं कोई युक्तिकरि कथन किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलशा**विषैं‡ यहु कह्या–"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकौं न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होतैं ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषैं काहूके आवतैं ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसें कहिए—"जो यहु आया ही नाहीं अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें कहीं प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लैंना,तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। **ज्ञानार्णव**विषैं ऐसा है—"अवार दोय तीन सत्पुरुष हैं❀ !" सो नियमतें इतने ही नाहीं। यहाँ

---

‡ अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥
(जीव० २९)

❀ दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः।

'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिएं और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ ही हैं, तिनकौं यथासम्भव जाननें। विपरीत अर्थ न जानना। बहुरि जो उपदेश होय, ताकौं यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय, ताका अंगीकार करना। जैसैं वैद्यकशास्त्रनिविषैं अनेक औषधि कही हैं, तिनकौं जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तौ उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै। यहु औषधि औरनिकौं कार्यकारी है, ऐसा जानैं। तैसैं जैनशास्त्रनिविषैं अनेक उपदेश हैं, तिनकौं जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकौं ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशकौं न ग्रहे। यहु उपदेश औरनिकौं कार्यकारी है, ऐसा जानैं। यहाँ उदाहरण कहिए है—जैसैं शास्त्रविषैं कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहारका आधिक्य होय, तौ निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय, तौ व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै बहुरि पूर्वैं तौ व्यवहार श्रद्धानतैं आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट होय रह्या था, पीछैं व्यवहार उपदेशहीकी मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वैं तौ निश्चयश्रद्धानके वैराग्यतैं भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था,

आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षण परास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥२४॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

पीछें निश्चय उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै । ऐसें विपरीत उपदेश ग्रहें बुरा ही होय। बहुरि जैसें आत्मानुशासनविषैं ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था, तौ दोषमय ही क्यों न भया ❀।" सो जो जीव आप तौ गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशकौं अंगीकार करना। बहुरि आप तौ दोषवान् होय अर इस उपदेशका ग्रहणकरि गुणवान् पुरुषनिकौं नीचा दिखावै, तौ बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतें तौ किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातैं तुझतें तौ भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या—"तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवानकै किंचित् दोष भए भी निन्दा है, तौ सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषैं तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसें है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै, सो भी निगोद जाय ‡।" ऐसा षट्पाहुड विषैं कैसें कह्या है?

❀ हे चन्द्रमः किमितिलाञ्छनवानभूस्त्वं
तद्वान् भवेः किमित तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानुवन्नु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥ १४१ ॥

‡ जह जायरूवसरिसो तिलतुसमत्तं ण गहदि अत्थेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुअं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥ १८ ॥
(सूत्रपाहुड़)

ताका उत्तर—ऊँची पदवी धारि तिस पदविषैं न सम्भवता नीच कार्य करै, तौ प्रतिज्ञा भंगादि होनेतें महादोष लागै है अर नीची पदवीविषैं तहाँ सम्भवता गुण दोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं ऐसा जानना। बहुरि उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषैं कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भंडार है ॐ।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाहीं इस उपदेशतें वक्ता क्रोध किया करै, तौ बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे तौ श्रोता गुण ही मानैं,ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं, तिस औषधिको जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तौ दुःख ही पावै। तैसैं काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खींचकरि उपदेश दिया होय, ताकौं जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तौ बुरा ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसैं काहूकौं शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाहीं, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाहीं वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतें शास्त्राभ्यास छोड़ै अर आत्मानुभवविषैं उपयोग रहै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसैं काहूकै यज्ञ स्नानादिक हिंसातें धर्म माननेंकी

ॐ रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासंत जस्सणघणस्य।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥ १४ ॥

मुख्यता है, ताके अर्थं "जो पृथ्वी उलटै, तौ भी हिंसा किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावै अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतैं पूजनादि कार्य छोड़ै अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषैं उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तौ बुरा ही होय। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटैं भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै, तौ उल्टा रोग होय। तैसैं कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतैं हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होतें नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषैं लागै, तौ उल्टा बिगार ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसैं पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतें प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तौ उल्टा विकार बधै, याहीतैं समयसार विषैं प्रतिक्रमणादिककौं विष कह्या है।

बहुरि जैसें अव्रतीके करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकौं व्रती होयकरि करै तौ पाप ही बाँधै। व्यापारादि आरम्भ छोड़ि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय, सो कैसैं बनै? ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तौ महादोष उपजै। तैसैं ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपनें विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तौ महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण—जैसैं अपना अशुभविकार भी न छूट्या अर निर्विकल्प दशाकौं अंगीकार करै, तौ उलटा विकार बधै।

बहुरि जैसें भोजनादि विषयनिविषैं आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मकौं अंगीकार करै, तौ दोष ही उपजै । जैसें व्यापारादि करनेका विकार तौ न छूट्या अर त्यागका भेषरूप धर्म अंगीकार करै, तौ महादोष उपजै। ऐसें ही अन्यत्र जानना । याही प्रकार और भी सांचा विचारतें उपदेशकौं यथार्थ जानि अंगीकार करना । बहुरि विस्तार कहाँ ताईं करिए। अपनै सम्यग्ज्ञान भए आपहीकौं यथार्थ भासै। उपदेश तौ वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाहीं। तातें उपदेश तौ एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है। बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहाँ ही मुख्यता करै, तौ दोऊ उपदेश दृढ़ न होंय। तातैं उपदेशविषैं एक अर्थकौं दृढ़ करै । परन्तु सर्व जिनमतका चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथंचित्' है । तातैं उपदेश होय ताकौं सर्वथा न जानि लेना । उपदेशका अर्थकौं जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवकौं कार्यकारी है ? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछें अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसें आपकौं कार्यकारी होय तिसकौं तैसें आप अंगीकार करै अर जो उपदेश जाननें योग्य ही होय तौ ताकौं यथार्थ जानि ले । ऐसें उपदेशके फलकौं पावै।

यहाँ कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै, सो कहा करै ?

ताका उत्तर—जैसें व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमैं

समझै, सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफ़ा टोटाका ज्ञान तौ अवश्य चाहिए। तैसें विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमैं समझै, सो थोरा वा उपदेशकौं ग्रहैं परन्तु मुझकौं यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं, इतना तौ ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तौ इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपनें सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तौ प्रयोजनकौं तौ भूलै नाहीं, यहु तौ सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमैं अपना हितकी हानि होय, तैसें उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाहीं। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिएं जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहां कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य अन्य प्रकार न सम्भवै, तहाँ तौ स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषैं विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसें प्रथमानुयोगविषैं एक तीर्थंकरकी साथि हजारौं मुक्ति गए बताए। करणानुयोगविषैं छह महीना आठ समयविषैं छहसै आठ जीव मुक्ति जांय, ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषैं ऐसा कथन किया—देव देवाँगना उपजि पीछैं मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषैं उपजें। करणानुयोगविषैं देवका सागरौं प्रमाण देवांगनाका पल्यों प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसें मिलै ?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषैं कथन है,सो तौ तारतम्य लिएं है। अन्य अनुयोगविषैंकथन प्रयोजन अनुसार हैं। तातैं करणानुयोगका कथन तौ जैसें किया है, तैसें ही है। औरनिका कथनकी जैसें विधि मिलै, तैसें मिलाय लैंनी। हजारों मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए

बताए, तहाँ यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाहीं। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहाँ तिनकी साथ इतनें मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगें पीछें गए। ऐसें प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजें, पीछें देवांगना चयकरि बीचमैं अन्य पर्याय धरैं, तिनका प्रयोजन न जानि कथन किया। पीछें वह साथि मनुष्य पर्यायविषैं उपजें, ऐसें विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसें ही अन्यत्र विधि मिलाय लैनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसें कथननिविषैं भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कहीं नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषैं कहीं द्वारावतीविषैं जन्म कह्या, रामचन्द्रादिककी कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी। एकेन्द्रियादिक कौं कहीं सासादन गुणस्थान लिख्या, कहीं न लिख्या, इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसें मिलै?

ताका उत्तर—ऐसें विरोध लिए कथन कालदोषतैं भए हैं। इस कालविषैं प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तौ अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतैं कोई अर्थ अन्यथा भासै ताकौं तैसें लिखें अथवा इस कालविषैं केई जैनमतविषैं भी कषायी भए हैं सो तिननें कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसें अन्यथा कथन भया, तातें जैनशास्त्रनिविषैं विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत सो प्रमाणीक हैं कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-

आम्नायतैं मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसैं विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तौ जैसैं केवलीकौं भास्या है तैसैं प्रमाण है, ऐसैं मान लैंना। जातैं देवादिकका वा तत्वनिका निर्द्धार भए विना तौ मोक्षमार्ग होय नाहीं। तिनिका तौ निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तौ आपहीकौं भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा संशयादि रहै वा अन्यथा जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै, तौ मोक्षमार्गविषैं विघ्न नाहीं, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसैं नाना प्रकार कथन जिनमतविषैं कह्या, तैसैं अन्यमतविषैं भी कथन पाइए है, सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषैं ऐसे कथनकौं तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तौ नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीकौं पोषैं, तौ कोई दोष है नाहीं। अर कहीं कोई प्रयोजन पोषैं, कहीं कोई प्रयोजन पोषैं तौ दोष ही है। सो जिनमतविषैं तौ एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है,सो कहीं बहुत रागादि छुड़ाय थोड़ा रागादि करावनेंका प्रयोजन पोष्या है, कहीं सर्व रागादि छुड़ावनेंका प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कहीं भी नाहीं तातैं जिनमतका कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषैं कहीं रागादि मिटावनेका प्रयोजन लिए कथन करैं, कहीं रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करैं, ऐसैंही और भा प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करै हैं तातैं अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषैं भी एक प्रयोजन

को पोषते नाना वचन कहै, ताकौं प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बात करै, ताकौं बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषैं नाना प्रकार कथन है, सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाहीं। अन्यमतविषैं एक ही अपेक्षा लिए अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसें जिनदेवकै वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति पाइए है, तहाँ विरोध नाहीं। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषैं रागादिक नाहीं, तातैं दोऊ बात सम्भवै हैं। अर अन्यमतविषैं ईश्वरकौं साक्षीभूत वीतराग भी कहैं अर तिसहीकर किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करैं, सो एक ही आत्माकैं वीतरागपनों अर काम क्रोधादि भाव कैसें सम्भवै? ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कालदोषतें जिनमतविषैं एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषैं दोष नाहीं। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कोई कथन कर सकैं नाहीं। कहीं सौरीपुरविषैं, कहीं द्वारावतीविषैं नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काठें ही होहु परन्तु नगरविषै जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अब भी होता दीसै है।

आगमाभ्यास की प्रेरणा

बहुरि अन्यमतविषैं सर्वज्ञादि यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावैं, बहुरि तिनिविषैं परस्पर विरुद्ध भासै। कहीं तौ बालब्रह्मचारीकी प्रशंसा करैं, कहीं कहैं "पुत्र बिना गति ही होय नाहीं" सो दोऊ साँचा कैसें होय। सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइए हैं। बहुरि प्रमाणविरुद्ध

कथन तिनविषैं पाइए है। जैसें वीर्य मुखविषें पड़नेतें मछलीकै पुत्र हूवो,सो ऐसें अबार काहूकै होना दीसै नाहीं। अनुमानतें मिलै नाहीं। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए हैं। यहाँ सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए, सो तौ कैसें भूलें अर विरुद्ध कथनं माननेमैं आवै नाहीं, तातै तिनिके मतविषैं दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमतका ही उपदेश ग्रहण करने योग्य है । तहाँ प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहाँ पहिलें याका अभ्यास करना, पीछैं याका करना, ऐसा नियम नाहीं। अपनें परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतें अपनें धर्मविषैं प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना । अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसें रोजनामचाविषैं तौ अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिकौं खाते में ठीक खतावै, तौ लैंना दैंनाका निश्चय होय तैसें शास्त्रनिविषें तौ अनेक प्रकारका उपदेश जहाँ तहाँ दिया है, ताकौं सम्यग्ज्ञानविषै यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै, तौ हित अहितका निश्चय होय। तातें स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचनविषैं रमै हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकौं प्राप्त हो हैं । मोक्षमार्गविषैं पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान विना और धर्मका साधन होय सकै नाहीं। तातें तुझकौं भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं उपदेशस्वरूपप्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।

नवमा अधिकार

मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

शिवउपाय करतैं प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरन, नमौं शुद्ध शिवभूप ॥ १ ॥

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है–पहिलें मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिकौं तो दुःखरूप दुःख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीचमें उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताकौं जानि उपदेशकौं यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिकौं सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातें आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातें इसहीका उपदेश यहां दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है और नाहीं, ऐसा निश्चय कैसें होय सो कहिए है—

आत्माका हित मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषै और तो कोई अवस्था होहू, किछू आत्माका बिगाड़ सुधार नाहीं।

एक दुःखसुख अवस्थातैं बिगाड़ सुधार है। सो इहाँ किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाहीं। प्रत्यक्ष ऐसैं ही प्रतिभासै है। लोकविषैं जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाइए है—दुःख न होय सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय जेते करैं हैं, तेतें एक इस ही प्रयोजन लिये करैं हैं; दूसरा प्रयोजन नाहीं। जिनके 'निमित्ततैं दुःख होता जानैं, तिनिकौं दूर करनेका उपाय करैं हैं अर जिनके निमित्ततैं सुख होता जानैं, तिनिके होनेका उपाय करै हैं। बहुरि संकोच विस्तार आदिक अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी संयोग मिलै है परन्तु जिनतैं सुख दुःख होता न जानैं, तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाहीं। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाकौं सहि सकै, एक दुःखकौं सह सकता नाहीं। परवश दुःख होय तौ यहु कहा करै, ताकौं भोगवै परन्तु स्ववशपनं तो किंचित् भी दुःखकौं न सहै। अर संकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय, तिसकौं स्ववशपनैं भी भोगवै, सो स्वभावविषैं तर्क नाहीं। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवनें मैं ज्ञानादिक मन्द हो जाय परन्तु जड़ सारिखा भी होय दुःखकौं दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरनेमैं अपना नाश मानैं है परन्तु अपना अस्तित्व खोकर भी दुःख दूर किया चाहै है। तातें एक दुःखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय, सो ही सुख है। जातें आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका संयोग मिले

जाकै अंतरंगविषें आकुलता है, सो दुःखी ही है; जाकै आकुलता नाहीं, सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातैं रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिकौं और भांति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भांति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहाँ कै तौ आपकै रागादिक दूरि होंय, कै आप चाहै तैसैं ही सर्वद्रव्य परिणमैं तौ आकुलता मिटै। सो सर्व द्रव्य तौ याके आधीन नाहीं। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय, तैसैं ही परिणमैं, तौ भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तौ होय ही सकै नाहीं। जातैं कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाहीं। तातैं अपनें रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातैं रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तौ है नाहीं, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततैं भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय, सुखकी प्राप्ति होय। तातैं मोहकर्मका नाश हितकारी है। बहुरि तिस आकुलताकौं सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयतैं ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातैं याकै देखनें जाननेंकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानैं, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहाँ आकुलता होय। बहुरि अंतरायके उदयतैं इच्छानुसार दानादि कार्य न बनैं, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतैं आकुलताकौं सहकारी कारण है। मोहकै उदयका नाश भए इनिका

बल नाहीं। अंतर्मुहूर्त्तकरि आपै आप नाशकौं प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगटरूप निराकुल दशा भासै। तहां केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाकौं प्राप्त कहिए। बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततें शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतें शरीरादिकका संयोग आकुलताकौं बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतें रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतैं रागादिककौं कारण शरीरादिकका संयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाहीं। परन्तु पूर्वै आकुलताका सहकारी कारण था, तातैं अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माकों इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतैं किछू दुःख नाहीं तातैं इनके नाशका उद्यम भी नाहीं। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपैं आप थोरे ही कालमैं सर्व नाशकौं प्राप्त होय जाय हैं। ऐसें सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातैं आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै—ससार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होतैं भी जीव सुखी हो है, तातैं केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेकों कहिए?

सांसारिक सुख वास्तविक दुःख है

ताका समाधान—ससारदशाविषैं सुख तो सर्वथा है ही नाहीं, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा

दुःख हो है। सो पूर्वे बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातैं थोरे दुःखवालेकों सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतैं थोरे दुःखवाला आपकों सुखी मानैं है। परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तौ वाकों भी हित ठहराइए, सो भी नाहीं। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दुःख होय पीछें बहुत दुःख होइ जाय। तातैं संसार अवस्था हितरूप नाहीं। जैसैं काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो हैं, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपकों नीका मानैं। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थतैं यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाहीं है। तैसैं संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय,तब वह आपकों सुखी मानैं। लोक भी कहैं—सुखी है। परमार्थतैं यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुखी नाहीं। बहुरि सुनि, संसार दशाविषैं भी आकुलता घटैं सुखी नाम पावै है। आकुलता बधैं दुःखी नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतैं सुख दुःख नाहीं। जैसैं काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतैं वाकौं सुखी कहिए अर वह भी आपकौं सुखी मानैं। बहुरि काहू बहुत धनवान्कै किञ्चित् धनकी हानि भई, तहां किछू आकुलता बधनेतैं वाकौं दुःखी कहिए अर वह भी आपको दुःखी मानैं है। ऐसैंही सर्वत्र जानना। बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाहीं। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसैं काहूकै थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तौ वाकै आकुलता

थोरी है। बहुरि काहूकै बहुत घन है अर वाकै तृष्णा है, तौ वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूकों काहूनैं बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तौ आकुलता न हो है अर थोरी बातैं कहे ही क्रोध होय आवै, तौ वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसैं गऊकै बछड़ेतैं किछू भी प्रयोजन नाहीं परन्तु मोह बहुत, यातैं वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतैं घनें कार्य सधैं हैं परन्तु रणविषैं मानादिककरि शरीरादिकतैं मोह घटि जाय, तब मरनेंकी भी थोरी आकुलता हो है। तातैं ऐसा जानना—संसार अवस्थाविषैंभी आकुलता घटनें बधनेंहीतैं सुख दुःख मानिए है। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटनें बधनेंके अनुसार है बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दुःख नाहीं। कषायतैं याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतैं आकुलता घटै, तब सुख मानैं अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै,तब कषाय बधनेंतैं आकुलता बधै, तब दुःख मानैं। सो है तौ ऐसैं अर यह जानैं—मोकूं परद्रव्यके निमित्ततै सुख दुःख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातैं इहाँ ऐसा विचार करना, जो संसार अवस्थाविषैं किंचित् कषाय घटें सुख मानिए, ताकौं हित जानिए, तौ जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेंकरि अनन्तसुखपाइए ऐसी मोक्षअवस्थाकौं कैसे हित न मानिए ? बहुरि संसार अवस्थाविषैं उच्चपदकौं पावै,तौ भी कै तौ विषयसामग्रीमिलवानेंकी आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय,कै अपनें और कोई क्रोधादि कषायतैं

इच्छा उपजै, ताकौं पूरण करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाहीं, अभिप्रायविषै तौ अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेंके उपाय करै, सो प्रथम तौ कार्य सिद्ध होय नाहीं अर जो भवितव्य योगतैं वह कार्य सिद्ध होय जाय, तौ तत्काल और आकुलना मेटनेंका उपायविषैं लागैं। ऐसें आकुलता मेटनेंकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै, तौ नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषैं काहेकौं प्रवर्त्तै है ? तातें संसार अवस्थाविषैं पुण्यका उदयतें इन्द्र अहमिन्द्रादि पदकौं पावै तौ भी निराकुलता न होय, दुःखी ही रहै। तातैं संसार अवस्था हितकारी नाहीं।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषैं कोई प्रकारकी आकुलता रही नाहीं तातें आकुलता मेटनेंका उपाय करनेंका भी प्रयोजन नाहीं। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहै। तातैं मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वैं भी संसार अवस्थाका दुःखका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकौं भी विचारि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

पुरुषार्थसे ही मोक्षप्राप्ति सम्भव है

इहाँ प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनें है कि मोहादिका उपशमादि भए बनें है अथवा अपनें पुरुषार्थतें उद्यम किए बनें है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनें है, तो हमको उपदेश काहेकौं दीजिए है अर पुरुषार्थतें बनें है, तो उपदेश सर्व सुनें, तिनविषैं कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—एक कार्य होनेंविषैं अनेक कारण मिलें हैं। सो

मोक्षका उपाय बनैं है, तहाँ तौ पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलैं हैं। अर न बनैं है, तहाँ तीनौं हीं कारण न मिलैं हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषैं काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाहीं। जिस कालविषैं कार्य बनैं, सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहारं। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थतैं उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातैं आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतैं कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तौ अन्य कारण मिलैं ही मिलैं अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतैं कार्यसिद्धि होय अथवा नाहीं भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलैं तौ कार्यसिद्धिहोय,न मिलैं तौ सिद्धि न होय। सो जिनमतविषैं जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतैं मोक्ष होय ही होय। तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्षका उपाय करै हैं, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है, तौ यहु ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिलै हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाहीं अर कर्मका उपशमादि न भया है, तौ यहु उपाय न करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलैं नाहीं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है—उपदेश तौ सर्व सुनै हैं,कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ? सो कारण यहु ही है कि—जो उपदेश सुनिकरि पुरुषार्थ करै है, सो तो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै,सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तौ शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

द्रव्यलिंगीकै मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनों छोड़ि तपश्चरणादि करै हैं,तहाँ पुरुषार्थ तौ किया, कार्य सिद्ध न भया, तातैं पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाहीं।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तौ कैसें सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषें अनुरागी होय प्रवर्त्तै,ताका फल शास्त्रविषैं तौ शुभबंध कह्या है अर यहु तिसतैं मोक्ष चाहै है, तौ कैसें सिद्धि होय। यहु तौ भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तौ कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै ?

ताका उत्तर—सांचा उपदेशतैं निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है,तिसहीतैं भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तौ भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातैं निर्णय करतां परिणामनिको विशुद्धता होय, तिसतैं मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तौ कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तौ कर्महीका कारण है। याकै तौ ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतें निर्णय करनेकी शक्ति प्रगट भई है। जहाँ उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै है। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषैं उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तौ याहीका दोष है, कर्मका तौ किछू प्रयोजन नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व-चारित्रका तौ घातक मोह है, ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसें बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषैं उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तौ तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतें मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतें सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषैं कोई कर्मका दोष है नाहीं। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिन आज्ञा मानें तौ ऐसी अनीति सम्भवै नाहीं। तोकों विषय कषायरूप ही रहना है, तातैं झूंठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तौ ऐसी युक्ति काहेकौं बनावै। संसारके कार्यनिविषैं अपना पुरुषार्थतैं सिद्धि न होतो जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठे। सो जानिए है, मोक्षकौं देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। याका स्वरूप पहचानि ताकौं हितरूप न जानै

है। हित जानि जाका उद्यम बनें, सो न करै, यह असम्भव है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य; परन्तु द्रव्यकर्मके उदयतें भावकर्म होय, भावकर्मतें द्रव्यकर्मका बंध होय, बहुरि ताके उदयतें भावकर्म होय, ऐसें ही अनादितें परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसें होय सकै ?

द्रव्यकर्म और भावकर्मकी परम्परामें पुरुषार्थके अभावका प्रतिषेध

ताका समाधान—कर्मका बंध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ ऐसें ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततें पूर्व बद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादि होतें तिनकी शक्ति हीन अधिक हो है। कर्मउदयके निमित्तकरि तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततें नवीन बंध भी मन्द तीव्र हो है। तातें संसारी जीवनिकै कबहूँ ज्ञानादिक घनें प्रगट हो हैं, कबहूँ थोरे प्रगट हो हैं। कबहूँ रागादिक मन्द हो हैं, कबहूँ तीव्र हो हैं। ऐसें ही पलटन हुवा करै है। तहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहूँ तीव्र रागादिक होय, कबहूँ मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होतें तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषें ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतें बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषैं उपयोगको लगावै, तौ धर्मकार्यविषें प्रवृत्ति होय। अर निमित्त बनें वा आप पुरुषार्थ न करै, कोई अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषें उपदेश कार्यकारी है। विचार-शक्तिरहित एकेन्द्रियादिक हैं, तिनिकै तौ उपदेश समझनेका ज्ञान ही

नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषैं उपयोग लागै नाहीं। तातैं जो जीव विचारशक्तिसहित होंय अर जिनकै रागादि मंद होय, तिनकौं उपदेशका निमित्ततैं धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तौ ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषैं पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तौ धर्मकार्य करनेकौं समर्थ ही नाहीं, कैसें पुरुषार्थ करैं अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाहीं। तातैं विचारशक्तिसहित होय अर जिसकै रागादिक मन्द होंय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततैं तत्वनिर्णयादिविषैं उपयोग लगावै, तौ याका उपयोग तहाँ लागै, तब याका भला होय। बहुरि इसही अवसरविषैं भी तत्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतैं काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषैं प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषैं प्रवर्त्तै, तब अवसर तौ जाता रहै, संसारहीविषैं भ्रमण होय। बहुरि इस अवसरविषैं जो जीव पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयकरनेविषैं उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषैं आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तौ कर्त्तव्य तत्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतैं दर्शनमोहका उपशम तौ स्वयमेव ही होय। यामैं जीवका कर्त्तव्य किछू नाहीं। बहुरि ताकौं होते जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होतैं श्रद्धान तौ यहु भया—मैं आत्मा हूँ, मुझको रागादिक न करनें परन्तु चारित्रमोहके उदयतैं रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय,

तब तौ विषयादिविषैं प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तौ अपनें पुरुषार्थतैं धर्मकार्यनिविषैं वा वैराग्यादिभावनाविषैं उपयोगकौं लगावै है। ताके निमित्ततैं चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसें होतें देशचारित्र वा सकलचारित्र अंगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रकों धारि अपना पुरुषार्थंकरि धर्मविषैं परणतिकौं बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातें विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसैं क्रमतैं मोहका नाश होय, तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होंय, तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश करै, तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछे बिना उपाय अघातिया कर्मंका नाशकरि शुद्धसिद्धपदकौं पावै। ऐसैं उपदेशका तौ निमित्त बनें अर अपना पुरुषार्थ करै, तौ कर्मका नाश होय। बहुरि जब कर्मंका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थं न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितैं भी गिर जाय है। तहाँ तौ जैसा होनहार तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थं होय सकै, तहाँ तौ प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसें कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषैं पड्या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तौ वाका पुरुषार्थं किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। और पानीका जोर थोरा होय, तब तो पुरुषार्थंकरि निकसना चाहै, तौ निकसि आवै। तिसहीकौं निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। और न निकसै तौ होलें २ बहै, पीछें पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसेही यह जीव संसारविषै भ्रमै है। तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय, तब तौ याका पुरुषार्थं किछू नाहीं। ताकौं उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मंका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थंकरि

मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तैं,तौ मोक्षपावै;तिसहीकौं मोक्षमार्गकाउपदेशदीजिए है। अर मोक्षमार्गविषैं न प्रवर्त्तैं तौ किंचित् विशुद्धता पाय पीछैं तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायकौं पावै । तातैं अवसर चूकना योग्य नाहीं। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातैं श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गकौं उपदेशैं, तिसविषैं भव्य जीवनिकौं प्रवृत्ति करनी।

मोक्षमार्गका स्वरूप

अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है-जिनके निमित्ततैं आत्मा अशुद्ध दशाकौं धारि दुःखी भया,ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होतें केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए विना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसैं मुनि लिंग धारे विना तौ मोक्ष न होय परन्तु मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाहीं भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपनें तौ जाके भए कार्य होय अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्ध होय। जैसैं अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपनें मोक्ष पाइए है परन्तु भरतादिककै बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसैं हैं, जाके भए कार्य सिद्ध होय ही होय और जाके न भए कार्य सिद्ध सर्वथा न होय। जैसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तौ मोक्ष होय ही होय अर तिनके न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषैं अतिशयकरि नियमतैं मोक्षका साधक

जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना । इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषैं एक भी न होय, तौ मोक्षमार्ग न होय । सोई तत्त्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है—जो यहाँ "मोक्षमार्गः" ऐसा एक वचन कह्या है, ताका अर्थ यहु है—जो तीनों मिले एक मोक्षमार्ग है । जुदे जुदे तीन मार्ग नाहीं हैं ।

यहाँ प्रश्न—जो असंयतसम्यग्दृष्टीकै तौ चारित्र नाहीं, वाकै मोक्ष भया है कि न भया है ।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तौ नियम भया । तातैं उपचारतैं याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए । परमार्थतैं सम्यक्चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो हैं । जैसैं कोई पुरुषकै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातैं वाकौं व्यवहारतैं ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरकौं चल्या है", परमार्थतैं मार्गविषैं गमन किए ही चलना होसी । तैसैं असंयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातैं वाकौं उपचारतैं मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतैं वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी । बहुरि "प्रवचनसार"विषैं भी तीनोंकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है तातैं यहु जानना—तत्त्वश्रद्धान विना तौ रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाए विना तत्त्वश्रद्धानज्ञानतैं भी मोक्षमार्ग नाहीं । तीनों मिलें साक्षात् मोक्षमार्ग हो है ।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश अर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारा निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तौ 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय, जाकरि इनकौं पहिचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहाँ जाकौं पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषैं पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ अतिव्याप्तिपनौं जानना। जैसें आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषैं भी पाइए है, अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषैं भी पाइए है। तातैं यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै। बहुरि जो कोई लक्ष्यविषैं तो होय अर कोई विषैं न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषैं पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ अव्याप्तिपनौं जानना। जैसें आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवलज्ञान कोई आत्माविषैं तौ पाइए, कोईविषैं न पाइए, तातैं यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचानें स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै। बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ असम्भवपना जानना। जैसें आत्माका लक्षण जड़पना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है तातैं यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानें पुद्गलादिक भी आत्मा होय जांय।

अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै। ऐसैं अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय,सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषैं तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषै कहीं न पाइए, सो सांचा लक्षण है। जैसैं आत्माका स्वरूप चैतन्य है। सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषैं तो पाइए है, अनात्माविषैं कहीं न पाइए। तातैं यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा मानैं आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसैं लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या।

सम्यग्दर्शनका लक्षण

अब सम्यग्दर्शनादिकका सांचा लक्षण कहिए है—विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्वार्थ है। इनका जो श्रद्धान ऐसा ही है, अन्यथा नाहीं; ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्'पद कह्या है, जातैं 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहां प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातैं जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्वं' ऐसा तत्व शब्दका

समास होय है। बहुरि जो जाननेमैं आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय' ताका नाम अर्थ है। बहुरि 'तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः' तत्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं। जैसें कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय—यह जानपना है,यह श्वेतवर्णहै,इत्यादि। परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है,सो मैं आत्मा हूँ। बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतैं भिन्न जुदा पदार्थ है। ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान मात्र कार्यकारी नाहीं। बहुरि जैसें 'मैं आत्मा हूँ' ऐसें श्रद्धान किया परन्तु आतमा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। तातैं तत्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है, सो ही कार्यकारी है। अथवा जीवादिककी तत्व संज्ञा भी है, अर्थ संज्ञा भी है तातैं 'तत्वमेवार्थस्तत्वार्थः' जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कहीं तत्वश्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहैं वा कहीं पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहैं, तहाँ विरोध न जानना। ऐसें 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

तत्व और उनकी संख्या का विचार

यहाँ प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषैं सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकों जुदा जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थश्रद्धानका ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसैं सर्व पदार्थनिका जानना होय, तैसैं ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तो मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिनहीका यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्यनिकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ए दोय जाति जानें जीवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतैं भिन्न आपकों जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतैं भिन्न परकों जानैं, तब परद्रव्य-तैं उदासीन होय रागादिक त्याग मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातैं ए दोऊ जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोऊ जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितै संसारीक प्रयोजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्गविषैं कैसैं प्रवर्त्तै। तातैं इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसैं ए दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पांच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्व हैं। सो इन पांच पर्यायनिकों जानें मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकों पहिचानैं, तो ताकों हित मानि ताका उपाय करैं। तातैं मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका

उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचानें तो जैसें संवर निर्जरा होय, तैसें प्रवर्त्तें। तातें संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए है; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकों पहचानने चाहिए। जैसें क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकों पहिचानै तौ ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्तै। तैसें ही आस्रवका अभाव भए संवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधकों पहिचानें तौ तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तै। तातें आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसें इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनकों न पहिचानें तो मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषैं कैसें प्रवर्त्तै। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसें करै? ऐसें इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ मोक्षका प्रयोजन है तातें दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाहीं; ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं, तातें सात तत्वनिविषैं गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानें वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्तें, तातें मोक्षमार्गविषैं इनका श्रद्धान भी

उपकारी जानि दोय तत्व विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषैं इनकों नव तत्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतैं धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातैं चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, कुछ याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेंका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाहीं है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकों पहचानि आपकों वा परकों जैसाका तैसा मानैं। बहुरि आस्रवकों पहचानि ताकों हेय मानैं। बहुरि बंधकों पहचानि ताकों अहित मानैं। बहुरि संवरकों पहचानि ताकों उपादेय मानैं। बहुरि निर्जराकों पहचानि ताकों हितका कारण मानैं। बहुरि

मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परमहित मानैं। ऐसें तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतैं उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातैं तत्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कह्या है। अथवा काहूकै अभ्यास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्रायविषैं विपरीतपनों नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतैं अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषैं पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसें द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितैं तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषैं अहंकार वा पुण्यास्रवविषैं उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसें विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोई तत्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—"तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१-२॥" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसैं कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतैं यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्धयुपाय विषैं भी ऐसें ही कह्या है—

> जीवाजीवादीना तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
> श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि

तत्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषैं प्रगट हो है। पीछैं सिद्ध अवस्थाविषैं भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तिर्यंचोंकैं सप्ततत्व श्रद्धानका निर्देश

यहाँ प्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्वनिका नाम भी न जानि सकैं, तिनिकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषैं कही है। तातैं तत्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषैं अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान— जीव अजीवादिकका नामादिक जानों वा मति जानों वा अन्यथा जानों, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहाँ कोई सामान्यपनै स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करैं, कोई विशेषपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिकका नाम भी न जानैं हैं, तथापि उनका सामान्यपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै हैं। तातैं उनकों सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसें कोई तियँच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाहीं जानें परन्तु आपही विषैं आपो मानैं है, औरनिकों पर मानैं है। तैसैं तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नामादिक न जानैं परन्तु जो ज्ञानादिकस्वरूप आत्मा है तिसविषैं आपो मानैं है अर जो शरीरादिक हैं तिनकों पर मानैं है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसें सोई तियँच सुखादिकका नामादिक

न जानें है,तथापि सुख अवस्थाकों पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणकों पहिचानि ताका त्यागकों किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तातें तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानें, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाकों श्रद्धान करि ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताके त्यागरूप संवरकों किया चाहै है। बहुरि जो संसारदुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसें आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्याग शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है—जो जीवकी अजीवकी जाति न जानि आपापरकों न पहिचानें,तो परविषैं रागादिक कैसें न करै? रागादिककों न पहिचानें, तो तिनिका त्याग कैसें किया चाहै। सो रागादिक ही आस्रव हैं। रागादिकका फल बुरा न जानें, तो काहेकों रागादिक छोड्या चाहै। सो रागादिकका फल सोई बंध हैं। बहुरि रागादिक रहित परिणामकों पहिचानें है, तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानिकों पहिचानें है, तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है,ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्था का अभावकों न पहिचानें, तो संवर निर्जरारूप काहेकों प्रवर्त्तें। संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातैं सातों तत्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्धभाव होनेकी इच्छा उपजै है।

जो इनविषैं एक भी तत्वकाश्रद्धान न होय, तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातैं वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतें विशेषपनें तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतें सामान्यपनें तत्वश्रद्धानकी शक्ति प्रगट हो है। ऐसैं इस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

विषय कषायादिके समय सम्यक्त्वीकै तत्वश्रद्धान

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषैं सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषैं प्रवर्त्तै है तिसकालविषैं सप्त तत्वनिका विचार ही नाहीं, तहाँ श्रद्धान कैसें सम्भवै ? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतें वा सोवना आदि क्रिया होतें तत्वनिका विचार नाहीं, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसें कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूं, तिर्यंचादि नाहीं हूं। मेरै इस कारणतें रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगकों घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसें इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आतमा हूँ, पुगद्लादि नाहीं हूँ, मेरै

आस्रवतैं बंध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेंके कारणविषैं कैसें प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसें कोई मनुष्य कोई कारणके वशतैं रोग बधनेंके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसें सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतैं बंध होनेके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगें करेंगे। ऐसें सप्ततत्त्व का विचार न होतें भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है तातैं तहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

निर्विकल्प अवस्थामैं तत्त्वश्रद्धान

बहुरि प्रश्न—ऊँची दशाविषैं जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहाँ तो सप्त तत्त्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सा सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसें सम्भवै ? अर तहाँ निषेध सम्भवै है, तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषैं सप्ततत्त्वनिके विकल्पनिविषैं उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ़ कीन्हीं अर विषयादिकतैं उपयोग छुड़ाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातैं जहाँ प्रतीति भी दृढ़ भई अर रागादिक दूर भए

तहाँ उपयोग भ्रमावनेंका खेद काहेकों करिए । तातैं तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है । बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है । सो प्रतीतिका तो निषेध न किया । जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए । सो तो है नाहीं । सातों तत्वनिकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है । तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है ।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै है, तातैं तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सा हम मान्या; परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाहीं अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातैं तहाँ तिस लक्षणका अव्याप्तिपना आया ।

ताका समाधान—जैसें छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसें केवली सिद्धभगवान्कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है । जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहलें ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या । तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढ़पनो भयो । याहीतें परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या । जो पूर्वें श्रद्धान किया था, ताकों झूठ जान्या होता, तो तहाँ अप्रतीति होती । सो तो जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवान्कै पाइए है । तातैं ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतें भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान्कै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या । बहुरि पूर्व अवस्थाविषें यहु मानें थे-संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना । पीछें मुक्त अवस्था भए ऐसें मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारे मोक्ष भई । बहुरि पूर्वें ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष

जानें था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानें परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली कैं पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकों भी प्रतीति लिए जानें हैं तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं। तातें सम्यक्त्वगुणविषैं सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं। संसार अवस्थाको न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शनको तो मोक्षका मार्ग कह्या था, मोक्ष विषैं याका सद्भाव कैसें कहिए है ?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसें काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसकों होतें वह एक शाखा नष्ट न हो है तैसें काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होतें सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसें केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षण हीपाइए है तातें तहाँ अव्याप्तिपनों नाहीं है।

मिथ्यादृष्टिका तत्वश्रद्धान नाम निक्षेपसे है

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषै निरूपण है। प्रवचनसारविषैं आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातें सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषैं अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो

नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामैं तत्वश्रद्धानका गुण नाहीं अर व्यवहारविषें जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए, सो मिथ्यादृष्टीकै हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेंविषें उपयोग नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसें न होय? होय हो होय। ऐसें काई मिथ्यादृष्टीकै सांचा तत्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातें तिस लक्षणविषें अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाहीं है। जातें सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व ही है, वाका लक्षण इसतें विपरीतता लिए है। ऐसें अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषें तो पाइए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषें न पाइए ऐसा सम्यग्दर्शनका सांचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

सम्यक्त्वके विभिन्न लक्षणोंका समन्वय

बहुरि प्रश्न उपजै है—जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनैं नाहीं, जातैं कहीं परतैं भिन्न आपका श्रद्धानहीको सम्यक्त्व कहैं हैं। समयसारविषैं* 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलशा

---

* एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥

लिखा है, तिसविषैं ऐसा कह्या है—जो इस आत्माका परद्रव्यतैं भिन्न अवलोकन सो ही नियमतैं सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्वनिकी संतति छोड़ि हमारै यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीकों सम्यक्त्व कहै हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं ❀ 'दर्शन-मात्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेकों लिखते।

ताका समाधान—परतैं भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानकरि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है,तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका काहेकों उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेकों छांड़ै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपा-परका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्तानवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

❀ दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ॥ २१६ ॥

होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातों तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान सांचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसें तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसें शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचानें बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्धअवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतें हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातैं श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर ही है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबंधका अभावकरिसंवर निर्जरारूप उपायतें मोक्षपदकों पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है, तो शास्त्रनिविषैं आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसें कह्या?

ताका समाधान—जाका सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकै सातों तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापर का वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानकों या आत्मश्रद्धान होनेकों सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनें आपापरको जानि वा आत्माकों जानि कृतकृत्यपनों मानें, तो वाकैं भ्रम है। जातैं ऐसा कह्या है—'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'। याका अर्थ यहु—जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातैं प्रयोजन-भूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिकों भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीकों भावै है, ताकैं प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानकों कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातैं प्रयोजन तो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यहु प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतैं मानकों बधावै, रागादिक छांड़ै नाहीं, तब वाका कार्य कैसें सिद्ध होय। बहुरि नव तत्वसंततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वै नवतत्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया,पीछैं निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिलै ही नवतत्वनिका विचार नाहीं, ताकैं तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकैं पाइए है, तिनहीका त्याग करो। ऐसें आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं वा सप्त तत्व श्रद्धानविषैं सप्ततत्वनिका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है, तातैं तत्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कहीं शास्त्रनिविषैं अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—अरहंत देवादिकका श्रद्धान होनेतें वा कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकौं सम्यक्त्वी कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाहीं। जातें द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसें अणुव्रत महाव्रत होतें देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातें इन व्रतनिकौं अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इनकौं चारित्र कह्या। तैसें अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होतें तौ सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए विना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातें अरहन्तादिकके श्रद्धानकौं अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कह्या है। याहीतें याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाहीं। बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्वार्थ श्रद्धान होय ही होय। जातें अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आस्रवादिककी पहिचान हो है। ऐसें इनकौं परस्पर अविनाभावी जानि, कहीं अरहन्तादिकके श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाहीं अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातैं सम्यक्त्व होतैं अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषैं अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातैं तत्वश्रद्धानविषैं मोक्षतत्वकौं सर्वोत्कृष्ट मानैं है। सो मोक्षतत्व तौ अरहंत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणकौं उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातैं उनकौं ही सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरकौं न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण संवर निर्जरा हैं, तात इनकौं भी उत्कृष्ट मानैं है। सो संवर निर्जराके धारक मुख्यपनें मुनि हैं। तातैं मुनिकौं उत्तम मानै, औरकौं न मानै, सोई गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीकौं उपादेय मानै है, औरकौं न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसें तत्वार्थश्रद्धानविषैं गर्भित अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततैं याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततैं अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषैं देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहंतादिकका श्रद्धान करैं हैं, तिनिके गुण पहिचानें हैं अर उनकै तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं ?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान विना अरहंतादिकके छियालीस आदि गुण जानें है, सो पर्यायाश्रित गुण जानें है परन्तु जुदा जुदा जीव

पुद्गलविषैं सम्भवै तैसैं यथार्थ नाहीं पहिचानैं है। तातैं सांचा श्रद्धान भी न होय। जातैं जीव अजीवकी जाति पहिचानैं विना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिकौं वा शरीराश्रित गुणनिकौं भिन्न-भिन्न न जानैं। जो जानैं, तौ अपनें आत्माकौं परद्रव्यतैं भिन्न कैसैं न मानैं ? तातैं प्रवचनसारविषैं ऐसा कह्या है :—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जाति तस्स लयं ॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतकौं द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानैं है, सो आत्माकौं जानैं है। ताका मोह विलयकौं प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी सांचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्वका श्रद्धानविना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानैं। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंतका, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानैं, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सांचा तत्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्म श्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण करनेंका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषैं सांची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारचों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहाँ तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तौ यहु प्रयोजन है जो इन तत्वनिकौं पहिचानें तौ यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तैं। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानकौं मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषैं रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसैं तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतें सिद्ध होता जानि इस लक्षणकौं कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपकौं आप जानना। आपकौं आप जानें परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकौं मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातैं अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान सांचा तत्वार्थश्रद्धानकौं कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पित तत्वश्रद्धानकौं कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुड़ाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेंके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसैं जुदे२ प्रयोजनकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे हैं।

इहाँ प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषैं यहु जीव किस लक्षणकौं अंगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतैं विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारौं लक्षण युगपत् पाइए हैं। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिकौं विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकौं सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसें ज्ञानविषैं तौ नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषैं सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्वविचार करै है तौ भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसें ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणों है। तातैं सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषैं च्यारौं ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्वका उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास मात्र होंय, सांचे न होंय। जिनमतके जीवादिकतत्वनिकौं मानैं और को न मानै, तिनके नाम भेदादिककौं सीखै है, ऐसें तत्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातें करै अर वस्त्रादिकविषैं परबुद्धिकौं चितवन करै; परन्तु जैसें पर्यायविषैं अहंबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषैं परबुद्धि है, तैसें आत्माविषैं अहंबुद्धि, शरीरादि विषैं परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकौं जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकौं आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिककौं न मानैं है परन्तु तिनके स्वरूपकौं यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसें ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो हैं।

इननिषैं कोई होय, कोई न होय । तहाँ इनकै भिन्नपनों भी सम्भवै है । बहुरि इन लक्षणाभासनिविषैं इतना विशेष है जो पहिलें तौ देवादिकका श्रद्धान होय,पीछैं तत्वनिका विचार होय, पीछैं आपापरका चिंतवन करै, पीछैं केवल आत्माकौं चिन्तवै । इस अनुक्रमतैं साधन करै तौ परम्परा सांचा मोक्षमार्गकौं पाय कोई जीव सिद्धपदकौं भी पावै । बहुरि इस अनुक्रमका उल्लंघन करि जाकैं देवादिक माननेंका किछू ठीक नाहीं अर बुद्धिकी तीव्रतातैं तत्वविचारादिविषैं प्रवर्त्तै है तातैं आपकौं ज्ञानी जानैं है अथवा तत्वविचारविषैं भी उपयोग न लगाव है । आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है । अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपकौं आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी बातें हैं । मानादिक कषायके साधन हैं । किछू भी कार्यकारी नाहीं । तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकौं यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिकौं भी अनुक्रमहीतैं अंगीकार करना । सोई कहिए है :—

पहलें तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना छोड़ि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना । जातैं इस श्रद्धान भए गृहीत-मिथ्यात्वका तौ अभाव हो है । बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है । मोक्षमार्गका सहाई अरहंतदेवादि-कका निमित्त मिलै है । सो पहिलें देवादिकका श्रद्धान करना । बहुरि पीछैं जिनमतविषैं कहे जीवादिक तत्वनिका विचार करना । नाम लक्षणादि सीखनें । जातैं इस अभ्यासतैं तत्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय । बहुरि पीछैं आपापरका भिन्नपना जैसें भासै तैसें विचार किया

करै। जातैं इस अभ्यासतैं भेदविज्ञान होय । बहुरि पीछें आपविषें आपो माननेंके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातैं इस अभ्यास तैं आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमतें इनकौं अंगीकार करि पीछें इनहीविषैं कबहू देवादिकका विचारविषैं,कबहू तत्वविचार विषैं, कबहू आपापरका विचारविषैं, कबहू आत्मविचारविषैं उपयोग लगावै। ऐसें अभ्यासतैं दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् सांचे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय, जातैं ऐसा नियम तौ है नाहीं। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमैं होय जाय, तौ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाहीं भी होय परन्तु मुख्यपने घनें जीवनिकै तौ इस ही अनुक्रमतें कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनिकौं ऐसें ही अंगीकार करनें। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकौं मिलावै, पीछें घनें पुरुषनिकै तौ पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ न होय । याकौं तो उपाय करना। तैसें सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिकौं मिलावै, पीछें घनें जीवनिकै तौ सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ नाहीं भी होय। परन्तु याकौं तो जातैं कार्य बनें, सोई उपाय करना। ऐसें सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तौ अनेक प्रकार कहे, तिन विषैं तुम तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनकौं अन्य लक्षणविषैं प्रयोजन प्रगट भासै नाहीं वा भ्रम उपजै। अर इस तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाहीं। तातैं इस लक्षणकौं मुख्य किया है। सोई दिखाइए है—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनि-

कौं यहु भासै—अरहंतदेवादिककौं मानना, औरकौं न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीवका वा बंधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषैं सन्तुष्ट होय आपकौं सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतैं द्वेष तौ राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनकौं यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतैं ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेंविषैं सन्तुष्ट होय आपकौं सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेंका उद्यम न करै ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकौं यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतैं सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतना ही विचारतैं आपकौं सम्यक्त्वी मानैं स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै है। याकैं भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जान इन लक्षणनिकौं मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थ-श्रद्धान लक्षणविषैं जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहाँ सर्वका स्वरूप नीकै भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धानके भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेतैं रागादि

छोड़ मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उपजै है । तातैं तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तौ देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनकों भी भासै । बहुरि अन्य लक्षणनिविषैं तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनों विशेष बुद्धिमान् होय, तिनहीकौं भासै; तुच्छबुद्धीनिकौं न भासै तातैं तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया है अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होंय। तहाँ तत्वार्थनिका विचार तौ शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेकौं कारण हो है,अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातैं यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया । ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषैं पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाईए है,तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाइए है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्म-परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातैं यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकौं कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातैं कारणविषैं कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यव-

हार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका सांचा श्रद्धान है। तिसही निमित्ततैं याकै श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, देव गुरु धर्मादिकका श्रद्धान है सो व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसैं एक ही कालविषैं दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देव-गुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याके श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातैं यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाहीं अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातैं याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावकौं साक्षात् कारण भया नाहीं। कारण भए विना उपचार सम्भवै नाहीं। तातैं साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकैं न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानकौं परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाहीं, तथापि मुख्यपनें कारण है। बहुरि कारणविषैं कार्यका उपचार सम्भवै है। तातैं मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषैं देवगुरुधर्मका श्रद्धानकौं वा तत्वश्रद्धानकौं तौ व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कौं वा केवल आत्माके श्रद्धानकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषैं अरहंतादिककौं देवादिक मानैं, औरकौं न मानैं,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषैं तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषैं जीवादितत्वनिकौं विचारै,ताकौं तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसें मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकौं कारण तौ होंय, परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी सम्भवै है। तातैं इनिकौं व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपनें आत्माकौं अनुभवै,ताकै मुख्यपनें विपरीताभिनिवेश न होय। तातैं भेदविज्ञानीकौं वा आत्मज्ञानीकौं सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसैं मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीकै पाइए है। तातैं इनिकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपनें ए च्यारौं आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होंय, सांचे सम्यग्दृष्टीकै होंय। तहाँ आभासमात्र हैं सो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर सांचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातैं इनिकौं व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततैं जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषैं लिखै हैं—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है। सो कैसें है?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहीं, तातैं निश्चयकरि आत्माहीकौं सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या, ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं; अर अन्य निमित्तादिककी अपेक्षा आज्ञा-सम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं, सो आत्मानुशासनविषैं कहा है:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यांभवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातैं तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना—"मोकौं जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तौ कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्वैं जिनआज्ञा माननेतैं पीछैं जो तत्वश्रद्धान भया, सो आज्ञासम्यक्त्व है। ऐसैं ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतैं तत्वश्रद्धान भया होय सो मार्गसम्यक्त्व* है। बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषैं प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशदृष्टि सो उपदेशसम्यक्त्व है। मुनिके आचरणका विधानकौं प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

* मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति में ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोंके लक्षण लिखनेके लिये छोड़ा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोंके अनुसार दिये गये हैं।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकौं कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशमके बलतैं, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै,ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया,ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिकों संक्षेपपनेंतैं जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली संक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशांगवानीकौं सुन कीन्हीं जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्ततैं भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना। ऐसैं आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए हैं। बहुरि अंग अर अंगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताकौं अवगाह करि जो निपजी सो अवगाढ़दृष्टि है। यह **अवगाढसम्यक्त्व** जानना। बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकौं **अवगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है,ताकौं **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। ऐसैं दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए हैं। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १ औपशमिक २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहाँ उपशमसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व, दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहाँ मिथ्यात्वगुण-

स्थानविषैं करणकरि दर्शनमोहकौं उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकौं
प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है—अनादि
मिथ्यादृष्टिकै तौ एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है, जातैं
याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाहीं। जब जीव
उपशमसम्यक्त्वकौं प्राप्त होय, तिस सम्यक्त्वके कालविषैं मिथ्यात्वके
परमाणूनिकौं मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है,
तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातैं अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक
मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि
सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है,काहूकै एकही की
सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषैं तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता
पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी
की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणाम गए
होंय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातैं सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन
प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतीका उपशम हो है। उपशम कहा? सो कहिए
है। अनिवृत्तिकरणविषैं किया अंतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्वकाल
विषैं उदय आवनें योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके
परमाणु अन्यकालविषैं उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि
अनिवृत्तिकरणही विषैं किया उपशमविधानतैं जे तिसकालविषैं उदय
आवनें योग्य निषेक, ते उदीरणारूप होय इस कालविषैं उदय न
आय सकैं, ऐसे किए। ऐसैं जहाँ सत्ता तौ पाइए अर उदय न
पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतैं भया प्रथमोपशम
सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यन्त पाइए है। बहुरि

उपशमश्रेणीकौं सन्मुख होतें सप्तम गुणस्थानविषें क्षयोपशमसम्यक्त्वतें जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतिनिका उपशम हो है, जातें याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अंतरकरणविधानतें वा उपशमविधानतें तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि ग्यारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पडता कोईकै छठे पाँचवें चौथे गुणस्थान भी रहै, ऐसा जानना। ऐसें उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकाल विषें क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाईए है, तातें अन्तर्मुहूर्त कार्यमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछें दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसें उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। बहुरि जहाँ दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिविषै सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय पाइए है,ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातें समलतत्वार्थं श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त है। अन्य दोयका उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वगुणस्थानतें वा मिश्रगुणस्थानतें भी याकी प्राप्ति हो है। क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है—

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषें मिथ्यात्वका अनुभाग है। ताके अनन्तवें भाग मिश्रमोहनीका है। ताके अनन्तवें भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषें सम्यक्त्वमोहनी प्रकृति देशघातक है। वाका उदय होतें भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता

करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है । सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्त्तमानकालविषें उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा होना सो तौ क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषें उदय आवनें योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए है सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है,तातें समलतत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है । यहाँ जो मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानें हैं, उदाहरण दिखावनेंके अर्थि चलमलिन अगाढ़पना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिककीप्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषैं यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शंकादि मल लागै है सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्त्ता है इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषें जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानें हैं। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषें कोई प्रकार करि समलपनों हो है तातें यहु सम्यक्त्व निर्मल नाहीं है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका-एक ही प्रकार है। याविषें किछू भेद नाहीं है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वकों सन्मुख होतें अन्तमुंहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व-की प्रकृतिका लोप करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछें मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछें सम्यक्त्वमोहनीकी कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहाँ मिथ्यात्वमिश्रमोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशमसम्यक्त्व नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषें भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसें क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनों प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थानविषें कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकै याकी प्राप्ति हो है। कैसें हो है, सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि मिथ्यात्वके परमाणूनिकौं मिश्रमोहनीरूप परिणमावै वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र मोहनीआदिके परमाणूनिकौं सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरैं, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तौ ताकौं स्थितिकांडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्त्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतें इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतें निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रंजनाके अभावतैं वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतें उपजै तहाँतें सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसें क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसें तीन भेद सम्यक्त्वके हैं। बहुरि अनन्तानुबंधी कषायकी सम्यक्त्व होतें दोय अवस्था हो हैं। कै तो

अप्रशस्त उपशम हो है,। कै विसंयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतैं उपशम हो है, ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधीका प्रशस्त उपशम होय नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतिनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि; अनन्तानुबंधीनिके परमाणूनिकों अन्य चारित्रमोहनीकी प्रकृतिरूप परिणमाय तिनकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसंयोजन है। जो इनविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं तौ अनन्तानुबंधीका अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलैं अनन्तानुवंधीका विसंयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखैं हैं, कोई नियम नाहीं लिखैं हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषैं कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसंयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलैं अनन्तानुबंधीका विसंयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबंधीका विसंयोजनतैं सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषैं आवै तौ अनन्तानुबंधीका बंध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषैं आवै नाहीं, तातैं वाकै अनंतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी तौ चारित्रमोहकी प्रकृति है सो सर्व-निमित्त चारित्रहीकों घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसैं सम्भवै?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधीके उदयतैं क्रोधादिकरूप परिणाम हो हैं; कुछ अतत्व श्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्रहीकौं

घातै है, सम्यक्त्वकौं नाहीं घातै है। सो परमार्थतैं है तौ ऐसें ही परन्तु अनन्तानुबंधीके उदयतैं जैसें क्रोधादिक हो हैं, तैसें क्रोधादिक सम्यक्त्व होतैं न होंय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाईए है। जैसें त्रसपनाकी घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होतैं एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकौं भी त्रसपनाकी घातक कहिए तो दोष नाहीं। तैसें सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतैं अनन्तानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि अनन्तानुबंधीकै भी सम्यक्त्वका घातकपना कहिए तो दोष नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी भी चारित्रहीकौं घातै है, तौ याके गए किछू चारित्र भया कहो। असंयत गुणस्थानविषैं असंयम काहेकौं कहो हो?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंदकषाय की अपेक्षा नाहीं हैं। जातैं मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतैं वा मंदकषाय होतैं अनन्तानुबंधी आदि च्यारोंका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोंके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबंधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताकौं गए न होय। ऐसें ही अप्रत्याख्यानकी साथि प्रत्याख्यान संज्वलनका उदय होय, तैसा ताकौं गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि संज्वलनका उदय होय, तैसा केवल संज्वलनका उदय न होय। तातैं अनन्तानुबंधीके गए किछू कषायनिकी मंदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातैं कषायनिके

असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानतैं उत्तरस्थानविषैं मंदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषैं तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे, पीछैं केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछैं केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषैं प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातैं कषायनिकी मंदता होतैं भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतैं कषायका घटना चारित्रका अंश है, तथापि व्यवहारतैं जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय, तहाँही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषैं ऐसे कषाय घटैं नाहीं, तातैं यहाँ असंयम कहा है। कषायनिका अधिक हीनपना होतैं भी जैसैं प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषैं सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै है, तैसैं मिथ्यात्वादि असंयतपर्यन्त गुणस्थाननिविषैं असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहाँ प्रश्न— जो अनन्तानुबंधी सम्यक्त्वकौं न घातै है, तौ याके उदय होतैं सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकौं कैसैं पावै है?

ताका समाधान— जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताकौं मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषैं न भया। इहाँ मनुष्यहीकी आयु है। तैसैं सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वका नाशका कारण अनन्तानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताकौं सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषैं न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्वका ही काल है, ऐसा जानना। ऐसैं अनन्तानुबंधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतैं अवस्था हो है, तातैं सात प्रकृतिनिके उपशमादिकतैं भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसैं हैं।

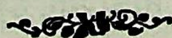
ताका समाधान–सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसें सम्यक्त्व मार्गणाकरि जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषैं आया होय, ताकौं मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातें अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसें संयममार्गणाविषैं असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषैं अभव्य कह्या, तैसें ही सम्यक्त्वमार्गणा विषैं मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकौं सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभावतें ही मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेंके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणा-विषैं मिथ्यात्व कह्या है। ऐसैं ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वका भेद नाहीं हैं। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना। यहाँ कर्मके उप-शमादिकतें उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाहीं। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततें स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जाननें। ऐसें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं। निःशांकितत्व, निःकांक्षि-तत्व, निर्विचिकित्सित्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृंहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहाँ भयका अभाव अथवा तत्वनिविषै संशयका अभाव, सो निःशांकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै रागरूप वांछाका अभाव, सो निःकांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषैं द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सित्व है। बहुरि तत्वनिविषैं वा देवादिकविषैं अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्म-धर्म वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपवृंहण है। इसही अंगका

नाम उपगूहन भी कहिए है । तहाँ धर्मात्मा जीवनिका दोष ढांकना, ऐसा ताका अर्थ जानना । बहुरि अपनें स्वभावविषें वा जिनधर्मविषें आपकौं वा परकौं स्थापन करना, सो स्थितिकरण अंग है । बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है । बहुरि स्वरूपविषें वा जिनधर्मविषें वा धर्मात्मा जीवनिविषें अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है । ऐसें ए आठ अंग जाननें । जैसें मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अंग हैं, तैसें ए सम्यक्त्वके अंग हैं ।

यहाँ प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए हैं अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातें निःशांकितादिक अंग सम्यक्त्वके कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—जैसें मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अंग कहिए है, तहाँ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषैं कोई अंग न होय । तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए है; परन्तु तिनि अंगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय । तैसें सम्यक्त्वके निःशांकितादि अंग कहिए है, तहाँ कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै निःशांकितत्वादिविषैं कोई अंग न होय । तहाँ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अंगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय । बहुरि जैसें बांदरेकै भी हस्तपादादि अंग हो हैं परन्तु जैसें मनुष्यके होंय, तैसें न हो हैं । तैसें मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशांकितादिक अंग हो हैं परन्तु जैसें निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकें होंय तैसें न हो हैं । बहुरि सम्यक्त्वविषें पच्चीस मल कहे हैं—आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढ़त्त, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होंय । कदाचित् काहूकै मल लागे सम्यक्त्वका नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना । बहु



ॐ

पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषैं साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखतं टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरंच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिंघजी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादतैं और साधर्मियों ने लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखें! अवार वर्तमान काल में अध्यात्म के रसिक बहुत थोड़े हैं। धन्य हैं जे स्वात्मानुभवकी वार्ता भी करै हैं, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम्॥

पद्मनन्दि पंच विंशतिका। (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषैं मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव में रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये हैं।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै हैं।

जीव पदार्थ अनादितें मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूप से विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षय तें आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातें आपापरका श्रद्धानविषें शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाहीं है अर जिनमतविषें कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानै है, अन्य मत विष कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाहीं मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाहीं। तातें स्वपर भेद विज्ञान को लिये जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पंचेन्द्री व छठा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा में कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रुति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकूं अयथार्थ भी जानैं तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातें जाननेविषें विपरीत रूप पदार्थनिकौं न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़ा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अंश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्तै है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। इसलिये सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषें सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तै। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसें पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषै प्रवर्त्तै है, उस कार्य को अपना भी कहे है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्य विषै प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कौं नाहीं विचारै है परन्तु अन्तरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाहीं । ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूं चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए । तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणमै, तथापि अन्तरंग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं । जो शरीराश्रित व्रत संयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय । सो ऐसे सविकल्प परिणाम होंय हैं । अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है:—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञान करै; नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै; पीछें परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है; तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषै अहंबुद्धि धारै है । मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते संते सहज ही आनन्द तरंग उठै है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै; तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्तै । दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय ।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो । सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है । सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा —तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेदि जुत्ति मग्गेण।

णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषैं समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानै। पीछें आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषैं नय प्रमाण नाहीं है, जातैं प्रत्यक्ष अनुभव है । जैसे रत्न की खरीद विषैं अनेक विकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाहीं, पहरने का सुख ही है । ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सों सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषैं केवल स्वरूप सन्मुख भया। जातैं वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषैं एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होंय तौ भी स्वरूप ध्यानी को कछु खबर नाहीं, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषैं किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषै है । इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकौं अतेन्द्रिय कहिए है जातैं इन्द्रीनका धर्म तौ यह है जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कौं जानै सो यहाँ नाहीं अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाहीं। तातैं जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषैं प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है । बहुरि इस स्वानुभवकौं मन द्वारे भी भया कहिए जातैं इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही हैं, और कोई ज्ञान नाहीं।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाहीं,सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातैं इन्द्रियका विषय मूर्त्तीक पदार्थ ही है । बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जातें मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषें एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं तातें याकौं मन द्वारै कहिये है।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषें सम्भवै है। तथा नाटक के कवित्तविषै कहा है—

दोहाः—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादित सुख ऊपजं, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषें प्रवर्त्ता नाहीं तातें स्वानुभवकौं मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने में अरु मन जनित कहने में कुछ विरोध नाहीं; विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा "जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातें मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्तं च तत्वार्थ सूत्रे—

"मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु।" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष संबंधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाहीं। चौथे गुणस्थान में सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातें सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है। वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातें तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाहीं है। सम्यक्त के तो तीन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातें वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषें प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाहीं हैं।

क्षायक सम्यक्तीकैं शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वानुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातैं सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; तातैं मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यथा:—"आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्" ।(तत्वार्थ सूत्र १–११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषैं प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।"

जो ज्ञान अपने विषयकौं निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक ही ज्ञेय कौं सम्पूर्ण न जान सकै तातैं परोक्ष है और अवधि मनःपर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकौं स्पष्ट नीके जानै तातैं एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकौं आप स्पष्ट जानैं तातैं सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मनः पर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातैं पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। बहुरि नेत्र आदिकतैं वरणादिककौं जानिए है, तातैं इनकौं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातैं जो एक वस्तु में मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं—१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए।

दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिये सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।

हेतु के विचार तें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।

हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगम तें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाहीं। बहुरि अवधि मनःपर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थकै है नाहीं, तातें अनुभवविषैं अवधि मनःपर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाहीं। बहुरि यहाँ आत्माकूं स्पष्ट नीके जानै है, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तौ सम्भवै नाहीं। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए हैं तैंसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असंख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भवै नाहीं।

यहाँ पर तो आगम-अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषै जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूं तैसा जान उस विषैं परिणामोंको मग्न करै है तातें आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मैं आत्मा ही हूं तातें मुझविषैं ज्ञान है; जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं। बहुरि जहाँ आत्मा नाहीं तहाँ ज्ञान भी नाहीं जैसे मृतक कलेवरादिक हैं। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तात अनु-मान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने मैं आया तिसहीकों याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषैं परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो हैं ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषैं जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषैं जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकौं जानने रूप प्रवर्ते था, वह निर्विकल्प दशाविषैं केवल आत्मा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषैं परिणमैं था सो केवल स्वरूप ही सौं तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषैं उसके अंश की भी जात नाहीं तातैं उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषैं भी आत्मा परोक्ष ही है तौ ग्रंथनविषै अनुभवकूं प्रत्यक्ष कैसे कहिये? कारण कि ऊपरकी गाथा विषैं ही "पच्चखो अणुहवो जम्हा" ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषै आत्मा तौ परोक्ष ही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तौ भासते नाहीं। परन्तु जो स्वरूपविषै परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादकौं वेदं है। जैसे कोई आंधा पुरुष मिश्री कौं आस्वादें है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाईं होय तिसकौं भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषें कहिए है "हमने स्वप्नविषैं वा ध्यान विषें फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाहीं परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाईं प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातैं तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसे अनुभवविषैं आत्मा प्रत्यक्ष की नाईं यथार्थ प्रतिभासै है, तातैं इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाहीं। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसौं विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं?

ताका समाधान—चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल में होय हैं और ऊपर के गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषै विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले हैं अर दोही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषै कोई विकल्प नाहीं तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यंजन, योग, संक्रमन रूप ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताईं मैथुन संज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषै निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताईं कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्यके जानने में आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानें अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषैं स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगादिक विषैं सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांत विषें प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वाङ्ग मिलता नाहीं। दृष्टांत है सो एक प्रयोजनकौं दिखावै है सो यहाँ द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), जलविन्दु, अग्निकण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमाशी का चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड ये सर्व

देश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकौं प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माकौं प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाहीं। सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले कै मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवें गुणस्थान वाले कै केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसौं जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तौ जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकौं निर्विकल्परूप जानै तैसें ए भी जानै सो तो है नाहीं, तातैं प्रत्यक्ष परोक्ष में विशेष जानना कह्या है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्व प्रकाशने।
भेद साक्षाद साक्षाच ह्यवस्तवन्यंतम् भवेत्॥
अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः १०५।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय तत्वों के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्षहै,श्रुतज्ञा[illegible] परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनों एक दूसरे से भिन्न नाहीं हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा [illegible] सत्य है; परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै नि[illegible] सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणमन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माकौं प्रत्यक्ष जानैं तो कर्मवर्गणाकौं प्रत्यक्ष क्यों न जानैं ?"

सो कहिए है—आत्माकौं प्रत्यक्ष तो केवली ही जानैं, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—सो दृष्टांत प्रदेशनकी अपेक्षा नाहीं, यह दृष्टांत गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व,स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुम हू जिनवाणीतें तथा अपनी परणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताईं लिखिये, जो बात जानिए सो लिखनेमें आवे नाहीं। मिले कछु कहिये भी, सो मिलना कर्माधीन, तातें भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममें रहना व अनुभवमें वर्तना। वर्तमानकालविषै अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका संस्कृतविषै है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषै है तथा और भी अन्यग्रन्थविषैं है। जो जानी है, सो सर्व लिखनेमें आवै नाहीं। तातें तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषैं मग्न रहना और तुम कोई विशेष ग्रन्थ जाने हों तो मुझकौं लिख भेजना। साधर्मीकै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाहीं परन्तु तुम सारिखे भाइनसौं परस्पर विचार है, सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाहीं तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फागुन बदी ५ सं० १८११

—टोडरमल

मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

मुद्रक—सन्मति प्रेस, गली [illegible]ञ्जस, दरीबा कलां, देहली ।